श्याम प्रकाशन, जयपुर

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सागर और सीपी

डॉ० घनश्याम अग्रवाल

प्रकाशक : श्याम प्रकाशन,
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003

मूल्य : पैंतीस रुपये

संस्करण : प्रथम, 1985

मुद्रक : कमल प्रिंटर्स
9/5866, गांधीनगर, दिल्ली-110031

अरघान (कविता संग्रह : 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—47000

क्या मैं अपने अनबूझे प्रश्नों का उत्तर पा सका ?

नहीं···शायद नहीं···। और पा सकूंगा या नहीं यह भी एक अनबूझा प्रश्न है।

'तो अनुराग ऐसा क्यों नहीं करते कि तुम ही कोई अपने प्रश्न का उत्तर ढूढ लो।'

मेरी एक अधूरी अनबूझी कहानी पढ़कर निशा मुझसे न जाने क्यों यह प्रश्न कर बैठी ?

प्रश्न ? एक अनबूझा प्रश्न ? जिसका उत्तर निशा ने कभी नहीं दिया। एक आभास देकर बादलों की ओट में छिप जाना भी जीवन का एक रहस्य है। परतु निशा यदि जीवन का रहस्य समझ गयी तो क्यूं नहीं उस रहस्य को व्यक्त कर देती ? उसे भी मेरे रहस्य को रहस्य बनाकर रखने में एक अजीब आनंद आता है। और मैं सोचता रहता हूं अब कितनी पहेलियां और बनेंगी जिनके लिए जीवन भी एक पहेली बनकर भटकता फिरेगा।

दूसरे की खुशी को अपनी खुशी समझ लेना यद्यपि कड़वा घूंट पीना है मगर फिर भी थोड़ा-सा संतोष तो मिल ही जाता है मगर बेचैनी जब आती है तो पहले से चिट्ठी नहीं लिखा करती।

गर्मी की छुट्टियां—मैं वैसे ही कहीं जाने में अपने को अस्त-व्यस्त अनुभव कर रहा था क्योंकि बाह्य वातावरण के सजाने संवर जाने से चेहरे की अभिव्यक्ति नहीं बदल जाती मगर जब देखा कि अगर इस बार अपने दोस्त के निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया तो फिर अपनी खैर नहीं और दोस्ती के बंधन भी मुझसे दूर हो जायें यह मुझे गवारा नहीं था। सो यह सोचकर कि चलो इस बहाने कुछ और भी काम कर आयेंगे एरोप्लेन से अपनी सीट बंबई के लिए बुक करवा आया इतवार के लिए।

लगभग ग्यारह बजे जब बंबई एरोड्रम पर उतरा तो अरविंद वहां पर

अपने दो-एक दोस्तों को लेकर पहुंच चुका था। गले मिलकर जब मिला तो एरोड्रम पर खड़े लोगों को अजीब लगा होगा। बरसों बाद अरविंद को अपनी बाहुओं में भेंटकर आज कितना आनंद अनुभव हो रहा था। जैसे कि जीवन की एक बहुत बड़ी अनुभूति को प्राप्त कर लिया है।

निशा की मुझसे यही पहली बार मुलाकात हुई थी और यह भी उन्होंने ही बताया था कि जहां से आप आ रहे हैं मैं वहीं की रहने वाली हूं और इस वर्ष यहीं यूनिवर्सिटी में एडमिशन लेने वाली हूं।

उस दिन निशा के कहने पर उनके घर जाने का वादा करके उनका निमंत्रण स्वीकार भी कर लिया था। और उनके माता-पिता से मिलकर जब काफी देर बातचीत होती रही तो मालूम पड़ा प्रायः गर्मियों में वे यहां सैर को आ जाते है। यह बंगला उन्होंने यहां इसीलिए लिया है वैसे वे यहां नहीं रहते। उनका बहुत बड़ा व्यापार है जो कि दूसरी जगह करते हैं। निशा इससे पहले कलकत्ता पढ़ती थी—कलकत्ता का नाम सुनकर मेरे सामने एक धुंधला-सा वातावरण छा गया और मेरा हृदय बैठने लगा''' मुझे निशा के प्रश्न के पूछे जाने पर एक विस्मय हो गया—

'तो अनुराग ऐसा क्यों नहीं करते कि तुम ही कोई अपने प्रश्नों का उत्तर ढूंढ लो?' इसका क्या मतलब है? मेरे सामने यह प्रश्न बार-बार लौट-लौटकर आने लगा। मैं अपने को सम्हाले हुए बात करता रहा। निशा के साथ डिनर भी लिया और लगभग दस बजे वापस गाड़ी चर्च गेट पर आकर रुकी, कल्पना महल का दरवाजा खुला'''मैंने दोनों हाथों से अलविदा ली, और निशा अपने घर लौट गयी।

मैं अभी तक विचारों के गहरे सागर में डूबता-उतराता रहा और सोचने लगा यह निशा कौन, कैसी, क्या यह मेरे अनबूझे प्रश्नों का उत्तर'''

'आ गये भाई अनुराग'—अरविंद भी अपने एक-दो दोस्तों से बातों में डूबा हुआ था और मेरा इंट्रोडक्शन अपने मित्रों से कराया'''सुबह से अरविंद के यहां कोई 50-60 दोस्तों से इंट्रोडक्शन पा चुका हूं जिनमें बॉय फ्रेंडस भी है और गर्ल फ्रेंडस भी। बंबई जैसे बड़े शहर में भी अरविंद के दोस्तों की कमी नहीं। इतनी फ्रेंडशिप, मिलते-मिलते भी नहीं थकता'''रात के ग्यारह बजे भी दोस्तों का तांता लगा हुआ है। और एक सप्ताह में मुझे

प्रयास (कविता संग्रह : 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

संख्या याद नही कितनो से मेरी भी गहरी दोस्ती हो गयी··· शायद अब अगर अगली बार बंबई आऊंगा तो मेरे सामने समस्या होगी कि मैं कहां ठहरूं—निशा भी उनमे से एक है। और जब अरविंद से निशा के बारे में कुछ पूछना चाहा तो कहने लगा अब तो तुम्हारी यूनिवर्सिटी से तुम्हारी ही स्टूडेंट बनकर आ रही है। पर हां अनु यह तो बताओ तुम्हारी मैरिज··· क्या हुआ पचासों आफर्स···

'हा बंधु, यही कि पचासो आफर्स अपने लिए एक काम्पलेक्स है जिसके बीच में फंसकर निकलना मुश्किल है। ऐसे प्रश्न जिनका कोई उत्तर नही। न उत्तर पाता हू, न ढूढ पाता हूं।'

'तू भी अनुराग बड़ा अजीब है? तेरी भी कहानी एक ऐसी कहानी है कि इच्छा होती है कोई···'

'यही न कि कोई उपन्यास लिख डाला जाय।'

उसके बाद बंबई से कई-कई यादे, कई उलझनें लेकर लौट आया। और आया तो मेरी प्रतीक्षा मे एक चिट्ठी पहले से इंतजार कर रही थी। लेटर में कोई संबोधन नही था, परंतु जब देखा अंत मे तो मैं सोच नही पाया मेरे आने से पहले बंबई से यह लेटर यहां कैसे आ पहुंचा? पत्र का मजमून कुछ ऐसा था—

आपसे मुलाकात हुई, एक अजीब मुलाकात जिसकी कि कोई उम्मीद नही थी। मेरे ख्यालों मे एक ऐसी ही कोई तस्वीर थी, आज देखकर अजीब सिहरन का अनुभव मुझे हुआ। आपको डिनर पर इन्वाइट किया, किस्मत से आपने बात मान ली; मगर जिस बात को पूछने के लिए आपको बुलाया था वह अभी तक मेरे मन मे दबी हुई है। लाख पूछने पर भी···

शर्म की ओट लग गयी, मगर दिल को फिर भी थोड़ा करार है कि अब तो रोज ही मिलना होगा क्योंकि अब आपकी यूनिवर्सिटी की स्टूडेंट हूं। एक हवस जो अब तक अधूरी है, पूरी होने की उम्मीद है। मेरे पास आपकी यादों का खजाना है। क्या आप वो ही हैं जिनकी नज्मे और गजलें धर्मयुग मे छपा करती है? ये पंक्तियां आपकी ही लिखी हुई हैं—

मेरी तो बात ही कुछ और है साकी
मेरे सपनों को भी तुम से मुहब्बत हो गयी है।

आपके खत का इतजार है। हा पत्र अधूरा है क्योंकि आपको क्या सबोधित करके खत लिखू मेरी समझ मे नहीं आता। इस गलती के लिए क्षमा करना।

आपकी—
'निशा'

पुनश्च—'निशा' मेरा नाम नही है, यह उपनाम है। वैसे मेरा नाम नसीम है···।

मैंने लेटर को तह करके लिफाफे मे बद कर दिया। मैंने उसका कोई उत्तर नही दिया। उत्तर क्यों नही दिया—इसका उत्तर मेरे पास भी नही है और जुलाई इसी प्रतीक्षा मे आ गयी। निशा आ चुकी थी···निशा को अब बहुत निकट से देख चुका था। अब उसका शब्दचित्र इस कहानी मे व्यक्त करना मेरे लिए असंभव नही था। निशा एक ऐसी लड़की है जिसके भोले मासूम चेहरे मे एक अनोखा आकर्षण है। मध्यम कद और सुडौल बदन। गेहुंए रंग पर दो कजरारी आखें जिन्हें देखकर बिहारी के अनियारे दीरघ दृगन का भ्रम हो जाता है, नाक-नक्श सलोने, काली अलकें और फिर सफेद साड़ी उसका आवरण। बोलने मे निशा का सानी मुझे दिखायी नही पड़ता। बड़े अदाज से एक-एक शब्द ढल-ढलकर निकलता है··· परतु वह मेरे लिए एक समस्या है। चेहरे से मुझे कई बार कुछ भ्रम हो जाया करता है और उसी विरोधाभास की दशा मे मैं अपने मार्ग को ढूंढा करता हू।

कभी-कभी इस जीवन के अन-पहचाने मार्ग पर ऐसे चेहरे दिखायी देते है, जिनका सम्पर्क प्रेम की विशिष्ट सीमा निर्धारित कर देता है और जिन्हें फिर भुलाकर भी नही भूला जाता। निशा को देखकर बीते जीवन की जब घटनायें लौटकर आने लगी तो जिस बात को भूल जाने के लाख प्रयास किये उसे फिर अपने सामने पाया। कहीं निशा उसका ही प्रतिरूप तो नही। यह बात रह-रहकर मन मे घर बनाने लगी और इसका उत्तर मैं सुनना भी चाहूं पर किससे ? निशा इसका उत्तर दे भी तो कैसे ?

नियति का राज बड़ा रहस्यमय होता है, उसका अतिक्रमण कर आगे बढ़ना मनुष्य के बस की बात नही। मन हर पल के अनुक्रम में ढलने लगा

प्रयाण (कविता संग्रह : 1984)
ी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

परंतु जीवन यूं ही गल-गलकर ढल जायं, यह जीवन की [illegible] तो नहीं। अन्योन्याश्रित जीवन अधिक सुंदर और आकर्षक होता है। उसके बिना चारों ओर नीरस वातावरण और बीहड़ जंगल दिखायी देता है। मैं अपने जीवन को इस तरह बिताना नही चाहता परंतु भाग्य की विडंबना भी अजीब है। और मेरी आंखों के सामने मेरी हथेली, उस हथेली पर आड़ी-तिरछी-सीधी रेखायें और उन रेखाओं में लिपटा हुआ मेरा भविष्य—मेरे भाग्य या मेरे भाग्य का कोई अधिकारी मेरे सामने घूमने लगता।

निशा को जब सबसे पहले देखा था तो मुझे देखकर ऐसा लगा था मानो कोई पूर्वजन्म का बंधन हो जिससे अपनत्व के बंधन दिखायी देते थे। निशा उसका उपनाम है, नसीम उसका असली नाम। उसके चेहरे से हिंदुत्व झलकता है और नाम से वह मुस्लिम परिवार की दिखायी देती है। यह एक उलझी पहेली थी। मेरे मन का मनोविज्ञान बार-बार इस बात का विश्लेषण करता परंतु अपनी सत्यता का कोई प्रमाण नही पा रहा था। निशा से जब एक बार यह पूछ बैठा तो वह अनमनी-सी बात को टाल गयी मानो इसका उत्तर न देना चाहती हो! मैं नहीं समझ पाया आखिर क्यों?

× × ×

निशा एक हिंदू परिवार की लड़की है। जब वह बहुत छोटी थी—एक नन्ही-सी बालिका तभी से वह अपनी मां की कोख से अलग हो गयी। और उसके पिता ने उसे अपने बहुत ही घनिष्ठ मित्र कासम अली खां को दे दिया। क्यों दे दिया अपने कलेजे के टुकड़े को, कैसे अलग कर दिया यह एक रहस्य है। हाथ की रेखायें इस रहस्य को नही बता सकतीं! निशा शायद उसका उपनाम इसीलिए है। यह नाम उसने अपने आप रखा है। उसके माता-पिता ने जिनके परिवार में पली उसका नाम नसीमबानू रख दिया और उसके बाद वह इसी नाम से जानी जाती है। उसका मासूम-सा बचपन इसी मुस्लिम परिवार में बीता, किशोरावस्था भी इसी परिवार की सीमाओं में चली गयी और अब निशा यौवन की सीढ़ी पर शबनमी अरमान-सा शबाब लिए बढ़ रही है उम्र की मंजिल पर। उसका बचपन नाज-नखरों में पला—मलमलों पर वह लोटी और आंखों के तारों के समान उसका लालन-पालन किया गया, आखिर क्यों नही, वह अब एक ऐसे अमीर परि-

वार में पहुंच गयी थी जहां उसकी एक छोटी-सी इच्छा के लिए सैकड़ों रुपये बहाये जा सकते थे। लेकिन पुष्प अपनी डाल पर ही सुहाना दिखता है। देवालय में उसे रख दिया जाय तो इससे देवालय की आभा क्षणिक द्विगुणित हो सकती है लेकिन पुष्प डाल से विलग होकर कितनी देर तक जीवित रह सकता है। शीघ्र ही मुर्झा जायेगा।

कासम अली निशा के पिता के बहुत ही घनिष्ठ मित्र हैं। आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व उनकी पहचान हुई थी और यह बहुत घनिष्ठता में बद गयी थी। जब भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था, हिंदुस्तान का विभाजन नहीं हुआ था, पाकिस्तान नाम की उस समय कोई अलग सत्ता नहीं थी तब से उनकी पहचान है। तब हिंदू और मुस्लिम एक थे—भाई-भाई थे, वे अपने राष्ट्र के लिए मिलकर कुरबान हो रहे थे, उस समय उनकी रगों में एकता का लहू था। एक-दूसरे पर मर-मिटने की भावना थी उसी समय की यह बात थी जब निशा को दिया गया था और अपनी मित्रता पर अपने दिल के टुकड़े को देने वाले की आत्मा एक ओर धन्य भी है तो दूसरी ओर मातृत्व की कोख एक ओर सूनी हो और दूसरी ओर हरी यह एक विडंबना भी। निशा जिसे अपनी कुछ भी सुध नहीं थी अपने माता-पिता को छोड़कर चली आयी। उसे यह कहानी पता है या नहीं यह भी एक रहस्य है परंतु अब निशा इसी परिवार की है इसमें कोई संदेह नहीं।

उसके बाद भारत स्वतंत्र हो गया, हिंदुस्तान का विभाजन हो गया। पाकिस्तान अलग राष्ट्र बन गया। और अब तक जो एक होकर हिंदुस्तान के लिए अपने को न्यौछावर करते थे, एक भाई के स्वर में अपनी एकता का नारा बुलन्द करते थे वे अब अलग तूती बजाने लगे। पाकिस्तान से हिंदुस्तान अलग क्या हुआ एक क्षण भर में दिलों का बंटवारा भी हो गया। 'हिंदुस्तान हमारा है', 'पाकिस्तान हमारा है' के नारे बुलंद होने लगे। एक धरती के दो टुकड़े हो गये। भाई-भाई ने मां के वक्ष को चीर दिया। हिंदू-मुसलमान के भेदभाव की धारा वेगवती होती गयी—जगह-जगह दंगे हुए, फसाद हुए। मां-बहनों पर अत्याचार हुए। जिंदे व्यक्ति खड़े-खड़े काट दिये गये, तन की होली जला दी गयी और आदमखोरों ने इज्जत लूटी परंतु जान नहीं बख्शी। ऐसा वातावरण कई दिनों तक चलता रहा···चलता ही

अरमान (कविता संग्रह : 1984)
·50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

रहा'''।

निशा के पिता के मन में यह भेद शायद नहीं—दोनों के मन में नहीं। यह भेद ऊपरी नहीं या अंदरूनी नहीं परंतु इतना अवश्य है कि अभी तक ऐसा कोई भेदभाव देखने में नहीं आया। निशा के सुख का वे हर तरह ध्यान रखते हैं, उसके लिए क्या नहीं—सब कुछ है लेकिन हर प्रकार के भौतिक सुख पा लेने से मन को राहत नहीं मिला करती। क्या निशा के जीवन में ऐसा कोई अभाव है ?

× × ×

यूनिवर्सिटी के वातावरण में जहां बहुत अच्छी मित्र मंडली मिल गयी थी वहां जिस एक साथी की कमी महसूस होती थी वह भी अब पूरी हो गयी थी। और यदि देखा जाय तो पुरुष के अभावों की पूर्ति नारी और नारी के अभावों की पूर्ति पुरुष में है। पुरुष जीवन में या नारी जीवन में अभाव वस्तुतः आता भी तब ही है जबकि उसके जीवन में अपने विपरीत रूपों की कमी होती है और उसको भावनाओं को कोई सम्मोहन हरदम नहीं मिल पाता। सो यह पूर्ति दोनों ओर पूरी हो रही थी।

मैं अक्सर अपने आपको नहीं समझ पाता और वैसे मनुष्य अपने को कब समझ पाया है, उसके अस्तित्व का ज्ञान सदा दूसरे ही किया करते हैं और उन दूसरों में भी वे जिन्हें वह अधिक प्रिय है। जब कभी मैं विचारों की गुत्थियों में उलझ जाता हूं तो ऐसा लगता है मैं कई दिनों से उदास हूं। इन विचारों में फँसे उलझ जाता हूं—तो क्या कारण है इसका निष्कर्ष नहीं निकल पाता और निशा जब कई घंटों और कई बार दिनों तक उदास देखती तो पूछ बैठती—आप आजकल बहुत उदास रहते हैं ? किस बात में खोये-खोये से हैं ? जिस बात को मैं खुद नहीं जानता उसे कैसे बताऊं कि यह कारण है। उसका बस यही उत्तर रहता—यूं ही। लेकिन निशा है कि कभी-कभी जिद कर बैठती है—नहीं अवश्य ही कोई बात है। निशा मेरी उदासी को दूर करने का प्रयास करती और इसमें वह सफल भी हो जाती। एक का दूसरे पर दायित्व कितना प्रभावकारी होता है इसका अनुभव मुझे हो पाता था निशा की अधिकारपूर्ण बातों को सुनकर। इतना जरूर है कि निशा की इन बातों से एक बड़ी राहत मिलती थी।

यूनिवर्सिटी मे निशा की एक अभिन्न मित्र थी—नाम था बिंदु। बिंदु और वह दोनो एक ही क्लास में पढ़ती हैं—क्लासफेलो। एक साथ क्लास में आना, एक ही बेंच पर बैठना, एक साथ बाहर जाना और फिर साथ घूमते रहना। दोनों को अलग तभी देखा जाता जबकि किसी को भी यूनिवर्सिटी नही आना होता था। बिंदु कैसी लड़की है ? अच्छी, बहुत अच्छी, एकदम सीधी। यू लड़कियां सीधी नही होती परंतु फिर भी वह साधारण से अच्छी है। बातचीत बड़े धीरे-धीरे करते हुए देखा उसे मैंने—जैसे तोल-तोलकर शब्द बोल रही हो। बिंदु का रंग यद्यपि कुछ अधिक गेहुंआ नही है तो सांवला भी नही, ठीक-ठीक है। निशा की तरह इकहरा बदन, मझला कद, न बड़ी न छोटी आखें, कानों मे छोटी-छोटी बालियां पहने हुए, बदन गठीला, उभरा हुआ, काले-काले बालों-सी असकायती लेकिन घटाओं-सी नहीं—ऐसा है बिंदु का रूप। निशा के रूप का कोई सानी नही और बिंदु भी उसके रूप पर मरती है यद्यपि एक लड़की दूसरी लड़की के सौंदर्य की बड़ाई नही कर सकती मगर बिंदु के मन में ऐसा ईर्ष्या का भाव नही कम से कम निशा के प्रति। दोनों हम-उम्र लड़कियां हैं। एक दिन बिंदु ने ही कहा था कि हम दोनों बचपन की दोस्त है। साथ-साथ खेले हैं, स्कूल में आठवीं कक्षा तक हम दोनो साथ पढ़े फिर निशा कलकत्ता चली गयी वहीं से उसने बी० ए० पास किया और अब वापस यहां आ गयी है और हम दोनो फिर मिल गये है। निशा मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय है। जब वह कलकत्ता थी तब हम खतो से ही मिला करते थे पर भगवान् ने दो बिछुड़े हुए फिर मिला दिये है। बिंदु की बातो मे भी आत्मीयता का बड़ा रस लगा…

वह एक मध्यम परिवार की लड़की है। इसलिए रंगीनियां उसके जीवन मे कम हैं। पर हां बातें अवश्य उसकी रंगीन है। क्या करे कोई ? अभावों की पूर्ति किसी तरह तो होनी ही चाहिए। कल्पना के महल यद्यपि सुंदर होते है परंतु सत्य नही। जिनसे आंखों में एक भावभीनी खुशबू तो दिखायी देती है मगर उसका अनुभव नही। परंतु मनुष्य के हृदय में संतोष ही सबसे बड़ी चीज है जो उसे किसी तरह मिलना चाहिए। घड़ी भर की ऐसी बातें इसके लिए पर्याप्त है। इसकी पूर्ति गीतों, कविताओं से भी हो जाती है। बिंदु भी इनकी शौकीन है और इनसे जी भी बहलाया करती है।

प्रयाण (कविता संग्रह : 1984)
1-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

इतना होने पर भी बिंदु सुखी है, उसे ये अभाव कभी खलते नहीं क्योंकि इस तन के लिए दो जून रोटी और वस्त्र चाहिए और मन के लिए एक अच्छा साथी। और ये एक गरीब की बेटी को भी मिल जाते हैं तो एक करोड़पति की संतान को भी। अधिक अच्छा नहीं अच्छा ही सही लेकिन मन की उत्फुल्लता पर कोई प्रतिबंध तो नहीं। दीवारों के भीतर की उमस और घुटन तो नहीं जिसमें घुट-घुटकर आदमी सब कुछ होते हुए भी मर जाता है और अपनी इच्छाओं की होली जला देता है। यही कारण है कि बिंदु के मुख पर कभी भी कोई ऐसे दुःख की शिकन देखने में नहीं आयी जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि उसके हृदय के भीतर कोई पीड़ा पैठ गयी है। पढ़ने लिखने में भी वह उतनी ही स्वतंत्र है। उसे किसी अच्छे विद्यार्थी से कोई दुश्मनी नहीं। जितना वह पढ़ पाती है उतना पढ़ती है और आगे बढ़ने का प्रयास करती है यही उसके जीवन की ओर उन्मुख होने की परिभाषा है। इसके बिना निशा भी उदास-सी रहती है, अपने दिल की हर बात कहने के लिए उसके पास एक ही मित्र है और वह है बिंदु और बिंदु की बातों से मैं निशा के बारे में हर बात का निश्चय निकाल लिया करता हूं।

× × ×

निशा को यूनिवर्सिटी आने के लिए पैदल नहीं चलना पड़ता, निश्चित समय से पहले उसकी कार कॉलेज के पोर्च में आकर रुकती है और उसे छोड़कर वापस चली जाती है। निशा जब कार से बाहर पैर रखती है तो इधर-उधर खड़े हुए लड़कों की नजरें एक साथ वहां आकर जम जाती हैं मगर निशा अपनी ही मस्ती में उतरकर सीधी लेडीज रूम में चली जाती है या कभी बेल हो जाती है तो क्लास की ओर मुड़ जाती है। उसको हरहमेशा नयी कार में आते देखा। परी-सी कार निशा को उड़ाकर लिए आती है और वापस संध्या को ला पहुंचती है। निशा को यहां तक कि कार का दरवाजा भी नहीं खोलना पड़ता, निशा के बैठते ही कार स्टार्ट हो जाती है और अपने पीछे गुब्बार बनाती हुई चली जाती है कुछ आसमान में कुछ दिमागों पर। बिंदु उसको रवाना कर पैदल-पैदल अपनी राह पकड़ती है। उसे कभी निशा के साथ कार में बैठकर जाते हुए नहीं देखा और शायद

निशा ने भी कभी उसे अपने घर को बुलाया भी नहीं हो आखिर परवशता अपनी स्वतन्त्रता के लिए कफन के समान ही है। निशा के पास सब कुछ होते हुए भी एक बंधन लगता है विचारों का। वह हर काम अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकती। उसके मन में अवश्य इस बात की घुटन है जो कि कभी-कभी उसकी बातों में अभिव्यक्त हो जाती है, उसकी आंखों में छलके आसू अतस को कचोट देते हैं, लेकिन असमर्थ···असमर्थ···। निशा कई घंटों बैठकर कई बातें किया करती है—ऐसी बातें जो एक-दूसरे के बारे में अधिक संबंधित नहीं पर हां उनका केवल मात्र संबंध होता! छुट्टियों में कहां जाना है ? वापस कब लौटेंगे ? घर कब तक रहेंगे ? यह कब तक और···और ऐसे ही कुछ प्रश्न मैं भी पूछ बैठता हूं···तुम घूमने कब जा रही हो ? हां इस बार तो घर आओगी न···अगर नहीं आयी तो झगड़ा हो जायेगा···एक अधिकार भरी वाणी से निशा को कहता चला जाता हू और एकात में बात करते-करते जब हृदय की आनंदावस्था में पहुंच जाता हू तो सोचता हू जीवन में कितना अभाव है। सब प्रकार के सुख होने के उपरात भी मन का एक कोना सूना है जिसके लिए किसी ऐसे कारीगर की जरूरत है जो बड़ी बारीकी से उस टूटे हुए कोने की पूर्ति कर दे जिसमें कि कोई पैबंद दिखायी नहीं दे जो कि हवाओं के थपेड़े खाकर खंडित हो गया है। मनुष्य के जीवन में भले ही हर प्रकार के ऐश्वर्य हों लेकिन उसको अपना एक ऐसा हमदम चाहिए जिसको वह अपने दिल के हर पूरे-अधूरे अरमानों का इतिहास बतला दे और दो घड़ी आंखों में आंखें डालकर जहा के सारे दु:ख-दर्दों को भूल सके। यह एकाकी प्रश्न नहीं···कुछ का नहीं···किन्हीं विशेषों के लिए नहीं···शाश्वत है···सत्य है। कुछ उभरकर आते हैं और कुछ आहत स्वरों में···कोई शब्दों में अभिव्यक्त करता है तो कोई हावभावों में। निशा के जितना निकट मैं जाता हू, मुझे ऐसा अनुभव होने लगता है कि निशा की गोद में आशाओं के असंख्य तारे टिमटिमा रहे हैं जिन्हें पाकर जीवन के सांझ और प्रात: एक साथ संवर सकते हैं। मगर जीवन की वास्तविकता सपनीली सान्निध्यता से दूर बहुत दूर है। जो नाव किनारे से चली है दूसरे किनारे बिना तूफान के पहुंच जायेगी—कहा नहीं जा सकता। कश्ती जानती है तूफान से कैसे संघर्ष

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

ई-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

होता है—माझी जानता है कश्ती पार ले जाने मे कितने तूफां आते है। तो क्या निशा भी एक ऐसी कश्ती है जो लहलहाते सागर में पड़ी है मगर जहां लहरें नहीं, जिसे पार जाने के लिए मांझी की प्रतीक्षा है'''मांझी मिला तो सागर ने तूफान का रूप धारण कर लिया जिससे माझी डरकर दूर हट जाय'''क्योंकि इस कश्ती पर उसका कोई अधिकार नहीं'''कोई संबंध नहीं। निशा के मौनालाप में कितना रहस्य है जीवन का और वर्तमान जीवन के प्रति कितना विरोधाभास। क्या और कोई इसे समझ पायेगा?

× × ×

वही यूनिवर्सिटी मे एक मित्र हैं—अभिन्न, घनिष्ठ। वैसे उनका नाम तो अमरेश है मगर मैं केवल अमर कहकर ही उन्हें पुकारता हू। उनके साथ मेरी अच्छी घुटती है इसलिए कि उनकी बातों मे एक अजीब मजा है। और फिर दिल से दिल मिले तो कब जुदा होता है। अमर से मेरी मुलाकात यूं नहीं हुई कि वे मेरे साथी थे मगर इसलिए कि उनमें मैंने अपने मित्र के अतिरिक्त बंधुत्व का भी भाव देखा। उनके साथ घूमना-फिरना, पिकनिक पर जाना या फिर डिपार्टमेंट मे बैठकर उनके साथ बातें किया करना और बातें करते-करते इतने निकट पहुंच जाना कि एक-दूसरे को दिल की बाते भी कह देना।

अमर अपने जीवन की कितनी ही कशमकश की अवस्थाओं को देखकर आये है। अमर जब छोटा था तभी से उसने अपने पिता के साथ काम करना शुरु कर दिया था। वैसे अमर के और भी दो भाई थे मगर विवाह के बाद दोनों अलग-अलग अपना घर बसाकर रहने लगे थे। अमर को अपने माता-पिता से विशेष लगाव था और छोटा होने के कारण उन्हें छोड़कर जा भी नही सकता था। हाईस्कूल तक अमर अपने पिता के आश्रय को पाकर पढ़ता रहा मगर उसके बाद की शिक्षा दिलाना गरीब परिवार के लिए आसान नही था। सो अमर को अपनी छोटी-सी उम्र मे ही इधर-उधर नौकरी के लिए भटकना पड़ा। परंतु नौकरी मिलना इस उम्र में आसान नहीं था। अत: दो ट्यूशन कर वह अपनी फीस और पुस्तकों के पैसे जोड़ पाता। खाने को तो जो घर से रूखा-सूखा मिलता उसी से

उसे संतोष करना पड़ता। इसी अभाव में उसका जीवन पलता रहा परंतु अमर ने भी कभी इस अभाव को अभाव के व्यग्र रूप में नहीं देखा नहीं तो जीना दूभर हो जाता। मन पर सतोष का एक परदा डालकर अमर अपने हर कड़वे घूंट को पी जाता और जीवन की नयी उपलब्धि पाने को दिलासा दे-देकर आगे बढ़ता। उसके पिता कहीं पर किसी आफिस में क्लर्क थे। मुट्ठी भर वेतन पाते जिससे घर का खर्च चलना भी मुश्किल होता। पिता होकर जब देखते कि वे अपने पिता के उत्तरदायित्व का भार भी नहीं उठा पा रहे हैं तो उनके मन में भी आत्मग्लानि उत्पन्न होती लेकिन क्या कर सकते थे। केवल अपने बेटे को प्यार भरी तरसी नजरों से देख लेते। इधर मां थी जिन्हें अपना बेटा बहुत प्यारा था। अमर भी अपनी मां की खुशी में अपनी खुशी समझता था। मां के लिए वह बहुत ही आज्ञाकारी पुत्र था। अपने पुत्र को बड़ा होते देखकर उसके मन में एक बहू लाने की इच्छा तीव्र हुआ करती थी और जब तक अमर बी० ए० में आया तब तक उसने गली-मोहल्लों की औरतों से मिल-जुलकर अमर के लिए लड़की भी देख ली थी और एक दिन उस लड़की को अमर को दिखाने घर भी बुला लाई थी।

अमर यद्यपि बी० ए० में आ गया था—कॉलेज की हवा में चार वर्ष बिता चुका था मगर कॉलिज की हवा का उस पर थोड़ा भी असर नहीं हो पाया था। बचपन से ही झेंपू था और उसका यह झेंपूपन अभी भी नहीं गया था। मित्रों में उठता-बैठता था मगर वह चुहलबाजी उसमें नहीं थी। सीधा-सादा और अपने आप में खोया अमर घर से निकलकर कॉलेज जाता और कॉलिज में बिना नागा के सारे पीरियड अटेंड कर सीधा ट्यूशन पर चला जाता और रात तक वह घर लौटता था। कॉलेज की किसी पार्टी में उसे नहीं देखा। कभी स्पोर्ट्स में उसने भाग नहीं लिया और न ही कभी किसी कल्चरल प्रोग्राम में। भाग लेता भी कैसे ? अगर यह सब करता तो अपने पढ़ने की फीस कहां से लाता—पुस्तकें कहां से खरीदता ? अपने जीवन की आशाओं के पौधों में पानी कैसे दे पाता ? उसके मन में बार-बार कई सपने उठते और उन्हें पाने के लिए उसके हाथ मचल पड़ते।

और ऐसी हालत में मां जब उस लड़की को घर ले आई तो अमर सिर

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

नीचा किये बैठा रहा। नजर उठाकर भी अमर ने उसे नही देखा। मा ने चाय लाकर रखी तो चाय की प्याली भी नीचे मुह किये ही पी गया। मा ही कुछ कभी-कभी पूछ लिया करती थी। और लड़की छोटे से लफ्जों मे उत्तर देकर चुप हो जाती। अमर हा या ना के अलावा कुछ बोल भी न पाता। और जब रात को अमर वापस लौटा तो मां से चुप न रहा गया, पूछ ही बैठी तुझे पसंद है न अमर यह लड़की। तेरे पिताजी ने भी इसे देखा था। तू बी० ए० की परीक्षा दे ले तेरा ब्याह किये देती हूं इससे'''। अमर फिर भी वही मूर्तिवत बना रहा केवल यह कहकर कि जो तुम्हें पसंद हो मां।

उन्ही छुट्टियों में अमर की शादी हो गयी। किसी तरह अमर इस बोझ को सहन करने के लिए नौकरी ढूढ़ लाया। एक सौ दस रुपये मासिक की क्लर्की की नौकरी उसे मिल ही गयी घर खर्च को चलाने के लिए मगर अमर को इस पर शांति नही थी। जीवन से जूझने वाला गिरकर भी उठता है और अपनी मंजिल पा ही लेता है। अमर भी उन्ही संघर्षों की आग में तपा हुआ है जिसने इस अवस्था तक आते-आते कई ठोकरें खाई है—कई उतार-चढ़ाव देखे है। कुलीगिरी से लेकर बाबूगिरी तक की है लेकिन अमर आज उन सभी बातो को एक याद बना चुका है और जब कभी स्मृति हो आती है तो रोमांचित हो उठता है। मेहनत के बाद जब कोई चीज मिलती है तो उसका लुत्फ कुछ और ही होता है। अमर को इस लुत्फ का पूरा अनुभव है और उसके इस मनोरंजक और प्रेरणादायक कथा-नक को सुनकर मुझे उससे और भी अधिक आत्मीयता हो जाती है। यही कारण है कि न अमर के मन में कोई चीज छिप पाती है और न मेरे ही मन मे।

× × ×

निशा हर घड़ी के बीतने के साथ-साथ जीवन के निकट आती गयी। और उसकी इस निकटता को पाकर मैं अपूर्व उन्माद का अनुभव करने लगा। मैं सोचने लगा निशा जैसा जीवनसाथी मिल जाय। मैं अपने स्वप्नों की दुनिया में उसकी कल्पना कर खो जाता। और मुझे लगता अब मां की आस पूरी हो जायेगी।

हर मां की तरह मेरी मां ने भी मेरे लिए बहुत पहले से कल्पना करना शुरू कर दी थी कि अनुराग बड़ा होगा, पढ़ेगा-लिखेगा, यही बड़ा प्रोफेसर बन जायेगा और दूल्हा बनकर एक दिन सुंदर सलोनी बहू ले आयेगा, घर की देहली सज जायेगी। बहू की पायलों की झकार से आंगन फिर भर जायेगा। घर की सारी तालियां उसे सौंप दूंगी। बहू घर की मालकिन बन जायेगी, अनुराग की फिर मुझे कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी और मैं फिर बैठी-बैठी बहू को देखा करूंगी—चांद-सी बहू।

यू घर भरापूरा है, भाई है, बहिनें हैं मगर फिर भी मां का मन बहू लाने को न जाने क्यों ललक उठता है। कहती है—बहू के बिना सारा घर सूना लगता है—बेटा। बहू लक्ष्मी होती है। उसके आते ही घर की रौनक बढ़ जाती है। तेरे छोटे भाई-बहिनों को भी तो भाभी चाहिए। कोई भी जल्दी से पसंद कर लेना।

पिताजी ने कभी इस बात के लिए इतना जोर नहीं दिया क्योंकि मां के मन में ममता होती है और पिता के मन में प्यार। पुरुष तो बाहर समय काट लेता है मगर मां को घर के लिए कोई चाहिए और वह बहू हो सकती है। यू पिताजी ने भी कई बार कहना चाहा मगर मेरा ही कुछ रुख देखकर कुछ नहीं कहा। मेरे मन की साध को ही मैं हर बार प्रकट करता रहा। मैंने कभी शादी को जीवन की मुख्य वस्तु नहीं माना। शादी तो सभी करते है—किसका उद्धार हुआ है, किसे मुक्ति मिली है। मुक्ति में मुझे यूं भी विश्वास नहीं। मरने के बाद मुक्ति केवल जीते-जी अपने आपको धोखा देना है। न किसी का मोक्ष हुआ है और न होगा। धर्म तो मनुष्य के मन में भय उत्पन्न करते हैं। यदि धर्म ही प्रधान होता तो अत्याचार क्यों होते? एक-दूसरे को लूटते-खसोटते क्यों? क्या हमारा धर्म हमे एक-दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष करना ही सिखाता है? क्या धर्म इंसान को इमान से जुदा करता है? हम धर्म के झूठे आदर्शों को लेकर अपने जीवन की वास्तविकता को मिटाने पर तुले हुए हैं। धर्म सिखाते है प्रेम, इंसान से प्रेम मगर इसे कौन समझता है। कई शादी के आफर्स आते और कई जगह जाता इसलिए कि मां को इससे थोड़ी शांति मिल जाती, मगर मैं जहा जाता वहां से निराश होकर लौटता। मैं यही सोचता इस प्रकार अजनबी, अन्जान और भावहीन मूरत से अपना

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
.-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गठबंधन करके क्या मैं अपनी साधना को पूरी कर पाऊंगा, क्या मेरा लक्ष्य पूरा हो जायेगा ? और इसी तरह समय बीतता गया। समय के साथ-साथ ये प्रश्न और भी बड़े बनकर आने लगे। मुझे मेरे लिए छोटा लगता मगर दूसरों के लिए यह प्रश्न बहुत बड़ा था।

निशा को देखकर मैं कई बीती बातों में उलझ गया था और उसे अपने हमसफर के रूप में कल्पित करने लगा था। निशा को देखकर मुझे अपने जीवन की एक याद और जाग आयी। एक सोया जख्म फिर उभर आया।

× × ×

उन दिनों मैं एम० ए० में था। पढ़ाई मेरे जीवन का उद्देश्य रहा है मगर मैं अपने बहुविकसित स्वरूप को समेटने में भी असमर्थ रहा हूं। यूनिवर्सिटी के हर प्रोग्राम में मैं अपने आपको फिट कर लेता था। वह चाहे ड्रामा हो या कवि सम्मेलन। वाद-विवाद हो या स्ट्राइक के लेक्चर। स्पोर्ट्स हों या दूसरे कंपीटीशन। सभी जगह मुझे जाने का चस्का लगा हुआ था और जब ढेर सारे सर्टिफिकेट और कप जीतकर वाद-विवाद में प्रतिद्वंद्वी से भी तालियां पिटवाकर और कवि सम्मेलन या मुशायरे में वाहवाही लूटकर होस्टल लौटता तो रेणु एकटक होकर मुझे देखा करती। मैं भी चुप बैठा रहता मगर रेणु की पलक घड़ी भर को भी न झपकती। मैं ही उससे कह उठता, 'क्यों रेणु—क्या देख रही हो ? मुझे तो तुम रोज ही देखती हो फिर भी···'

'···फिर भी एकटक होकर देखने को तुम्हें जी चाहता है अनुराग···। तुमसे न जाने कौन-सी डोर बंध गयी है।'

'तुम तो पगली हो गयी हो रेणु···'

'अनुराग, दिल की हर बात पागल हुआ करती है। तुम्हारी विजय होती है तो मेरा जी चांद को चूमने को मचल उठता है। सारे हॉल में तुम्हारी शायरी पर तालियां बजती हैं···मैं उनसे भी जी खोलकर तालीं बजाकर प्रशंसा कर लेती हूं···तुमसे मुलाकात हो गयी तो अच्छा भी हुआ और बुरा भी···।'

···और रेणु का रोज-रोज मेरे साथ उठना-बैठना··· घंटों वक्त की

गोद में बैठे बातें करना···ऐसी बातें जो एकदम नयी होती हैं···जिनके बारे में कभी सोचा भी नहीं जाता···उसका गीत गाना···मेरा सुनना, रेणु के जिद कर लेने पर दो-चार रुबाइयां सुना देना और उन रुबाइयों में उसका खो जाना···मुझे भी धीरे-धीरे दीवाना कर गये। रेणु यूं तो क्लासफेलो थी मगर क्लासफेलो के सही उत्तरदायित्व को उसने मेरे साथ निभाया। हर बार उसके शब्दों में मेरे प्रति असीम प्यार-दुलार ढुलक पड़ता और जब भी किसी भी काम को करता एक अजीब प्रेरणा मुझे उससे मिलती रहती।

दो वर्ष तक उसके साथ रहकर न जाने कितने सांझ और प्रातः बिताये। न जाने कितनी बार उसके हाथों से चाय बनवाकर पी। न जाने कितनी बार उसके मधुर कंठ से गीत सुने और वह थी जो अपना सब कुछ मुझी में समझकर अपने जीवन के हर अनुराग का भाव उंडेलती रही।

आज उस बात को बीते भी तीन वर्ष होने आये मगर मेरी आंखों के सामने वह बार-बार आ जाती है। कभी सपनों में आकर मुझसे बात करती है, मेरे टूटे हुए दिल को एक दिलासा देकर भोर होते ही न जाने कहां चली जाती है। रेणु न जाने क्यों तो जीवन में आयी और न जाने क्यों अकेला छोड़कर चली गयी। मुझे याद है जो भी एक बार उससे मिल लेता था, उसे कभी नहीं भूलता था। गोरा चम्पई रंग था उसका जिस पर उभरे हुए कपोल और लाल-लाल होठों के बीच मोती से सफेद दांत। काली अलकें और मुख पर डोलती लट। इकहरा बदन, एक अजीब मस्त चाल। मगर इस सबसे ज्यादा आकर्षण था उसकी बातचीत में, उसके व्यवहार में। रूप से ज्यादा कीमत आदमी के व्यवहार की होती है और जिसके पास दोनों चीजें हों तो फिर कहना ही क्या। नारी के पास लज्जा हो, प्रेम हो फिर क्या चाहिए। रेणु के निकट आकर मुझे उसमें ये सब गुण दिखायी दिये थे। और रेणु मुझमें अपने से अधिक गुण न जाने कौन-सी दृष्टि से देखकर, मेरे लिए अपने आपको हार चुकी थी। मैं कई दिनों अपने अल्हड़पन में उसके दिल की बात को नहीं समझ पाया था और जब समझ पाया तब तक रेणु अनन्त के न जाने किस आगन में अपने लिए कुटीर बना चुकी थी। मैं यही सोचता रहा रेणु ने मुझे कितना स्नेह दिया। मुझसे बिना कुछ चाहे वह सदा समर्पण

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

के पुष्प अर्पित करती रही, अब भी आती है. उसके कंठ की वाणी अब भी मुझे सुनायी देती है, अब भी उसके कहे अनुसार अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ने को कदम उठाता हूं। कहीं उसको खोकर जो गुनाह किया, दुबारा फिर कोई गुनाह न कर बैठूं। अब तो उसकी एकमात्र याद स्मृतियों में बसी हुई है। उसे भी देखकर मेरे मन में एक विचार उठा था—मां की इच्छा थी यह तसवीर है और आज निशा को देखकर एकदम सारी बुद्धि झोंका खा उठी है। दबे हुए जख्म आज फिर उभर आये हैं। मुझे फिर लगता है, मा की इच्छा की यह पूर्ति है। मैं अपने आपको संभाल न पाया और मन में उसे पाने की चाह जाग उठी। सोचा अब किसी तरह इस प्रश्न का कोई उत्तर मिल ही जायेगा।

× × ×

यदि एक ओर निशा को देखकर बीती घटनाएं उभर आती थी तो उसे देखकर बड़ा संतोष भी मिलता था। हूबहू रेणु-सी यह सजीव प्रतिमा जिसमें हर अदा वही थी, हर बात वही थी और कभी-कभी मुझे उसे देखकर रेणु का भ्रम हो जाया करता था।

मैं एकटक होकर उसे देखता रहता था मानो किसी को वर्षों से बिछड़ी हुई अपनी प्रिय वस्तु मिल गयी हो। उसे जितना देखता उतनी ही प्यास और बढ़ती जाती थी। उसकी भोली नजर इस तरह दिल में घर कर गयी थी मानो यह सब उसी के लिए हो। उसकी एक स्मित से जीवन में एक अनोखी बहार छा जाती। न जाने मन के किस कोने से आत्मीय भाव आकर उससे अपना अटूट संबंध बना बैठा और नयनों-नयनों से सम्भाषण कर बैठे। निशा से रोज ही मुलाकात होती। शायद ही ऐसा कोई दिन होता कि न मिल पाते हों।

निशा पढ़ने में बहुत ही स्मार्ट है। मुझे अपने मित्र का कमेंट बार-बार याद आता था—तुम खुद समझ जाओगे और कहोगे है कोई स्टूडेंट। वास्तव में उस जैसी स्टूडेंट पाकर मैं कितना खुश हुआ था जो अब मेरे लिए एक स्टूडेंट ही नहीं रह गयी थी और भी कुछ थी मगर मैंने यह कभी जाहिर नहीं होने दिया। निशा अक्सर मुझसे मिला करती थी। अपनी पढ़ाई की कठिनाइयों को जब भी समय मिलता आकर पूछ जाती थी। साथ

में यूं तो विंदु भी हुआ करती थी मगर वह थोड़ी घड़ी भर ठहरकर कभी दो बात और कर जाती थी। उसके मन में मेरे प्रति सहानुभूति और श्रद्धा इतनी अधिक उत्पन्न हो गयी थी कि उसके हमदर्दी के शब्द सुनकर मैं अपने हर दुःख-दर्द को भूल जाता था। इतनी दूर आकर एक अनजान नगर मे इस तरह दिल का कोई हमदर्द मिल जाये यह दिल के लिए भाग्य की ही बात होती है और मैं अपनी किस्मत के बारे में सोचा करता। मेरी उदासी, मेरी खामोशी उसके एक ही प्रश्न से दूर हो जाती पर मैंने अपने मन की बात को आदर्श के झूठे बंधनों मे बंधे होने के कारण कभी नहीं कहा और न ही निशा अपनी लज्जा के आवरण से बाहर निकल पायी। एक-दूसरे की मौन भाषा को केवल मन-ही-मन समझकर अनुमान लगा लिया करते थे मगर लब पर कई बार सोचकर भी कोई बात नही आ पाती थी।···एक-दूसरे के सामने होते ही सारी बात कपूर की तरह उड़ जाती थी।

× × ×

निशा से इतना घुल-मिल गया था मगर कभी भी निशा को घर न बुला पाया। मुझे दुनिया वालों का कभी विश्वास होते हुए भी ऐसी जगह विश्वास न रहता। वे किसी को सुखी रहते हुए फूटी आंखो नही देख सकते। चरित्र के वृथा बंधनों के समाज को रौंदने का ठेका इन ठेकेदारो ने ले रखा है यद्यपि चरित्र नाम की इन लोगों मे कोई चीज नहीं मगर फिर भी अंगुली उठाना, आख भीचकर बकना और चिल्लाना इन लोगो का काम है। इंसान दूसरे के दामन मे झांकने से पहले अपने दामन के धब्बों को देख ले तो कितना अच्छा हो, मगर अपने को कौन बुरा कहता है? अपनी बुद्धि तो सबको ज्यादा दिखती है चाहे उसका दिवाला ही क्यो न निकल गया हो। कीचड़ उछालना तो इस समाज के सफेद-पोशों का काम है। इसी से दूर रहने के लिए हर तरह के प्रतिबंधों को डालकर चुप बैठे रहना ही उचित समझा।

न ही निशा ने कभी इसी डर से अपने यहां का निमंत्रण दिया। वस्तुतः हमारे यहां की समाज-व्यवस्था मे न जाने ऐसी कौन-सी दुर्व्यवस्था रह गयी है जिसने मानव प्रेम को खा डाला है। खुदा के बनाये हुए इंसान

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
·50, गोरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

को आज बांट-बांटकर इंसानियत के ऊंचे मंदिर से गिरा दिया है। एक मानव के रास्ते से हटकर तेरे-मेरे की राहों का निर्माण करा दिया है। हम अपनी कमजोरियों को आज अपना आदर्श बना बैठे हैं और ये ही आदर्श हमें पतन के मार्ग पर ले जा रहे हैं···पता नही हम इंसान भी रह पायेंगे या नही। मानव की संकुचित कुत्सित प्रवृत्तियां कब मिटेंगी कुछ नही कहा जा सकता। सभ्यता के नाम पर आज इंसान कितना बर्बर हो गया है। समाज के मुंह में तो सांप की तरह दो जीभ हैं—विश्वास करो तो यहां सदा विश्वासघात होते देखा है—घर बसाते नही उजाड़ते देखा है।

इसी समाज की आशंकाओं से मन कई बार घबरा जाता था मगर पुरुष यदि घबरा जाये तो पुरुषार्थ क्या। यद्यपि मन अत्यन्त ही भावुक है मगर फिर भी इस तरह के दोषों से प्रतिकार लेने बार-बार शेर की तरह दहाड़कर उठता। यदि इनका अंत न किया जाये समय पर तो ये सब कुछ नष्ट कर देंगी। और इसी भावधारा में बहकर समाज के वृद्धों के खिलाफ कई बार कटु शब्द कह देता। वे नयी पीढ़ी पर कुढ़ते और कुढ़कर चुप रह जाते। आज सारे राष्ट्र में परिवर्तन चाहिए, आज एक महान क्रांति की जरूरत है जो आदि से अंत तक कमियों को नष्ट करती हुई नया निर्माण करती चले। राष्ट्र का निर्माण पुरानी परंपराओं पर नही हो सकता है। निर्माण के लिए सदा नयी नींव खोदी जाती है। पुरानी नींव पर नया महल नही खड़ा किया जा सकता। पुराने सांचे में मनुष्य को फिट नही करना है वरन् उसके अनुसार नये सांचों का निर्माण करना है। तभी हमारा वास्तविक परिवर्तन होगा, तभी नया सौंदर्य पनपेगा, तभी बुद्धि का विकास होगा। और इस विचारधारा ने इस तरह अपना घर कर लिया कि रह-रहकर झूठे अस्तित्व को मिटाकर नये अस्तित्व को कायम करने को खून खौल उठने लगा।

× × ×

यूनिवर्सिटी में मुझे आये अब लगभग डेढ़ वर्ष हो गया था। आते ही यहां के वातावरण में मैंने अपने को एडजस्ट कर लिया था। वही पुरानी कॉलेज की आदत यहां भी आकर उभर गयी थी। यद्यपि कुछेक की दृष्टि में यह भले ही प्रशंसात्मक नही था मगर खेलते-कूदने और विभिन्न प्रवृत्तियों

मे भाग लेने से विकास ही होता है। मैं बिना किसी की तरफ ध्यान दिये अपनी इच्छाओं के अनुसार लगा रहता। आते ही यूनिवर्सिटी के मैदानों में मैं अपना वही कॉलेज जीवन का अधिकार जमा चुका था। यहां आकर मन की उमस तो निकल ही जाती है। एक स्पोर्ट्समैन की भावनाएं भी उभर आती हैं। हिल-मिलकर काम करने की इच्छाएं यहां से अधिक आसानी से प्राप्त हो जाती है। मिलकर उठना-बैठना-खेलना मुझे अच्छा लगता। यही कारण था कि यूनिवर्सिटी क्लासेज से निकलते ही मैं आदर्श का भारी चोगा उतारकर अपने को हल्का अनुभव करने लगता हूं। कभी टेनिस के हाथ मार लेता तो कभी क्रिकेट के चौके उड़ा देता।

एक दिन ऐसा ही हुआ। प्रोफेसर्स और स्टूडेंट्स का मैच—चारों ओर एक भीड़-सी जमा थी और जब पैविलियन से पैरों में पैड हाथों में ग्लव्ज और बैट लेकर उतरा तो तालियों की आवाज में 'विश यू बेस्ट आफ लक' के कई स्वर सुनायी पड़े। उनमें मैं वो आवाज भी सुन पाया था जो मेरी चिरपरिचित आवाज थी। मैंने आकर अपनी पोजीशन जमाई, बालिंग शुरू हुई और फिर जो बाल पीटना शुरू किया तो हर बालर हार चुके। हर बाल पर तालियां बजती उसके चौगुने उत्साह से मैं बैटिंग किये जा रहा था। और जब पिच से नॉट आउट आया तो बालर्स की रोनी शक्लों के साथ मैं घिर गया था भीड़ में और मुझे एक क्रिकेटर के रूप में देखा जाने लगा था।

उस दिन की अभूतपूर्व सफलता के बाद यूनिवर्सिटी का कोई मैदान मेरे हाथ से नहीं बचा। मुझे इसमें बड़ा आनंद आता था और जब कभी रात को कैफीटेरिया में शतरंज की बाजी जमती तो दूसरों के बीच में अपनी राय दे देता था। स्टूडेंट्स मेरे हो चुके थे और मैं उनका।

इन्हीं वर्षों में रंगमंच की थाप भी दी थी और कवि सम्मेलनों और मुशायरों के माहौल में अपने, शायरी को पीने और पिलाने के शौक भी बिखरा बैठा। लड़के-लड़कियों को कॉलेज की उम्र में शेर-शायरी का बहुत शौक रहता है। इसी शौक से कई मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करते और क्लास में नहीं तो क्लास से बाहर एकाध शेर सुन ही लेते। यहां कवि सम्मेलनों में मुझे कोई निराशा नहीं होती। उसी प्रेरणा और उत्साह से

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
1-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मेरा कंठ फूट पड़ता था और सामने बैठे हुए श्रोतागणों के बीच मेरी नजर ठहर जाती थी।

इन्हीं दिनों मालूम पड़ा कि निशा को भी इसका बहुत शौक है। अक्सर निशा मुझसे कोई-न-कोई नयी रुबाई सुन लेती थी और हर बार नयी चीज सुनाने के लिए कोई-न-कोई नये जजबात मेरी कलम से ढल जाते थे। निशा को ये रुबाइयां इतनी अच्छी लगी कि उसने इन्हें अपनी डायरी में उतारकर रख लिया, जब भी अकेले में जी चाहता, पढ़ लेती। कुछ तो उसको याद भी हो गयी थी। वही बार-बार कहा करती, 'इनका संग्रह छपवा दीजिये—बहुत ही बेहतरीन है—इतनी सारी लिख रखी है फिर भी क्यों नहीं छपवाते हैं—मैं कहती हूं छपवाइये न इन्हें!'

'निशा ये तो मेरे अपने लिए है। तुम कहती हो तो तुम्हें भी सुना देता हूं और फिर मैं बड़ा शायर तो हूं नहीं जो कि···'

'ठीक है बस! आप अपनी नजर में बड़े नहीं हैं मगर दूसरों की नजर में···सच आप इन्हें छपवा के तो देखिये···'

मैं निशा की इस बात पर हंस उठता···और कह उठता, 'तुम भी निशा क्या हो—मैं कोई उमर खय्याम तो हूं नहीं···तुम्हारी नजर में हो सकता हूं मगर दुनिया की नजरों में?'

'उसमें भी होंगे आप। आपकी ये चीजें पढ़कर लगता है एक दिन···।'

'निशा जो हूं तुम्हारे सामने हूं। तुम कहती हो तो जरूर छपवाऊंगा। मैं तो जब जी चाहता है—लिख देता हूं, जब तरन्नुम फूटती है गा लेता हूं। इससे मन को आनन्द मिलता है। दिल को राहत मिलती है।' मगर निशा ने अपने शौक को कभी प्रकट नहीं किया, यह नहीं बताया कि वह खुद भी लिखती है।

निशा के दिल में एक कवियित्री की आत्मा छिपी हुई है। वह जजबात को पहचानती और उनकी कद्र करती है। एक दिन उसकी लिखी हुई दो-चार रुबाइयां हाथ पड़ गयी तो सारा राज खुल गया। निशा फिर लाख छिपाकर भी नहीं छिपा सकी। मैं उससे सुनाने को कहता मगर वह सुनाती नहीं थी सिर्फ लिखकर दे जाती और कहती थी आप इन्हें सुधार भी दीजिये—बहुत-सी गलतियां रह गयी हैं।

बाद फिर मुझे कलकत्ता छोड़ना पड़ा। यद्यपि उस समय अरविंद ने कई कसमें दिलाई थी मगर कई ऐसी मजबूरियां आ जाती हैं कि मनुष्य को अपनी प्रिय वस्तु भी छोड़नी पड़ती है। वह तो अलग होने की बात थी अगर खोने की नौबत आती तो शायद मैं अरविंद पर अपने को लुटा देता। मगर जुदाई भी बड़ी दर्दनाक होती है। रेलवे स्टेशन पर जब अरविंद छोड़ने आया था तो कितना गले लगकर रोया था। ट्रेन चलने पर बराबर आंखें प्लेटफार्म पर खड़े अरविंद पर जमी हुई थी जो आंखों से आंसू बहाता हाथ हिला रहा था। जब तक कि ट्रेन इतनी दूर न ले आयी कि सारा वातावरण ओझल हो जाये तब तक मैं खिड़की में से एकटक उधर झांकता रहा'''। आंसुओं ने बहकर आज उस मित्रता के प्रेम को और भी प्रगाढ़ बना दिया था। उसके बाद अरविंद के पत्र बराबर आते रहे थे और बिना किसी देरी के मैं भी पत्र लिखकर अरविंद से मिल लिया करता था। इन पत्रों में अक्सर हमारी साथ बितायी हुई जिंदगी की यादों का वर्णन होता और कुछ वर्तमान की बातें और कभी-कभी भविष्य की सुखद कल्पनाओं को भी सजा लिया करते थे। अरविंद कलकत्ता ही पढ़ता रहा। मेरे आने के बाद उसने होस्टल छोड़ दिया और फिर अपने चाचा के पास आकर रहने लगा था। एम० ए० करने के बाद वह वापस बंबई चला आया था और घर पर अपने पिता के साथ व्यवसाय करने लगा था। इस बीच उससे एक बार और मिला था। तब तो जाना ही था उस समय उसकी सगाई होने वाली थी। लड़की पसंद करने के लिए अरविंद ने मुझे बुलाया था। पता नहीं अरविंद को क्या जिद थी कि लड़की पसंद करूं तो मैं, दरअसल मेरी पसंद पर उसे नाज था और मैंने भी उसके लिए वो चीज पसंद की थी कि उसके बाद अरविंद के पिता ने भी एक बार मजाक में कह दिया था—'बेटा अनुराग, अगर तुम मेरे दोस्त होते तो तुम्हारी चाची के लिए मैं तुम्हारी ही पसंद मानता।' अरविंद ने यूं तो कई और भी लड़कियां देखी थीं मगर अब उसने यह रिश्ता मंजूर कर लिया था और उन्हीं दिनों उसकी शादी भी हो गयी थी। अरविंद को एम० ए० की डिग्री के साथ यह डिग्री भी मिल गयी थी—एक जीवन की डिग्री। और जब अरविंद की बारात लौटी थी तो सबसे पहले मैं ही जाकर अपनी भाभीजी

से मिला था। अरविंद भी क्या है—उसी समय कह उठा—'यही तो है मेरे जिगर का अनुराग जिसने मेरे लिए तुम्हें पसंद किया है। मेरी जिंदगी का हमजोली। अब तक इसी के साथ तो बिताये हैं दिन' और मैं यही कहकर अपने डब्बे में जा बैठा था 'अच्छा भाभीजी और कोई तकलीफ हो तो देवर हाजिर है।'

अरविंद ने एक मीठी चुटकी भरते हुए कहा—'अभी से भाभी की दलाली···'

उसके बाद तो भाभीजी से बहुत ही गहरी पहचान हो गयी···कई घंटे अनुराग और भाभी के साथ उन दिनों बिताये थे। जब भी फिर अनुराग की चिट्ठी आती भाभीजी अपनी ओर से दो पंक्तियां अवश्य ही लिखती थी मगर हर बार अब वे मुझसे यही शिकायत करती थी कि उनके लिए एक सहेली ढूंढ लूं। अरविंद भी यही कहता था, मगर वह मेरी भावुकता को समझकर अवश्य एक ऐसी तलाश में था, उसने यह तलाश की भी और मुझे उससे मिलाया भी। अगर अनु भाई तुम कुछ नही करोगे तो फिर तुम्हें मेरी पसंद माननी पड़ेगी। मैं भाभीजी को आश्वासन दे और फिर अपनी धुन में खो जाता।

× × ×

निशा को देखकर बार-बार मेरे मन की सोई बातें जाग उठती थी। मैं इतना जानता था कि इस मंजिल पर मेरे कदम नही उठना चाहिए मगर फिर भी जो आकर्षण पहले दिन बधा वह ऐसा बंधा कि असीम अनंत होकर बढ़ता ही गया। मैंने लाख समेटने की कोशिश की मगर हर बार असफल रहा। सोचता था भाग्य की रेखाएं इसी पथ पर आकर मुस्करायेंगी। विधाता को भी यही मंजूर है। होनहार होनी सोचकर चुप बैठ जाता मगर दूसरे ही क्षण फिर विचारों में एक द्वन्द्व उपस्थित हो जाता और कई आशंकाएं उठ-उठकर विचलित करने लग जाती। यदि इस मंदिर में आकर पुष्प न चढ़ा सका तो क्या होगा? पथ के अंत तक पहुंच-कर भी यदि मंजिल को नही पा सका तो क्या होगा? यदि सारी भावनाएं कुचल गयी तो किस नींव पर सारे जीवन का मकान खड़ा होगा और समाज की आड़ी-तिरछी रेखाएं बुद्धि के सामने कौंध जाती। मैं इसी कशमकश में

कई दिन और महीने घिरा रहा मगर केवल एक ही बात बार-बार रह-रह-कर सामने आती थी जिधर कदम उठे हैं वे पीछे नहीं लौटने चाहिए। संघर्ष करो और विजयश्री को पा लो। बिना संघर्ष की आग में तपे इंसान नहीं बनते हैं। यही अवसर है समाज को बदलने का। नया निर्माण करने का। और सभी अनजानी प्रेरणाएं आकर कर्म करने को आगे बढ़ाती। मन की निष्ठा और भी मजबूत होती गयी और इस मार्ग पर अकेला बढ़ता ही गया।

यह बात मैंने कभी किसी पर अभिव्यक्त नहीं होने दी। जब तक स्वयं दृढ़ निश्चय न हो जाये आत्मविश्वास को बहकाना बुद्धिमानी नहीं है। मैं अपने उस लक्ष्य की ओर आशा और विश्वास के साथ बढ़ता रहा। मुझे एक नयी ज्योति दिखायी देती! मेरा विश्वास और भी अधिक बलवान होता जाता। मन की आशंकाएं धीरे-धीरे मिटने लगी। मुझे इस दुर्गम मार्ग पर लगता कोई मेरी ओर मुस्कराता, वरण करने के लिए चला आ रहा है—समर्पण—आत्मसमर्पण का भाव लेकर। मेरे सफर का हमसफर मेरे मार्ग पर है, और फिर घड़ी भर में वह सारा धूमिल वातावरण मिट जायेगा। चारों ओर एक आलोक ही आलोक बिखर जायेगा जिसमें हम अपने नये जीवन का निर्माण करेंगे। जीवन में श्रद्धा आकर एक नयी छटा का संचार करेगी। मुझमें न जाने कहां से एक अदम्य साहस की रेखा आकर छा गयी। नये जीवन-दर्शन की परिभाषाएं मेरे विचारों में अंकुरित होने लगी। बुद्धि अपना नया श्रृंगार करने लगी। भावनाएं यौवन की पींगों पर झूलने लगी।

× × ×

अमर मेरी इस विचारधारा से यद्यपि प्रभावित था मगर फिर भी उसकी ओर से कोई प्रेरणा नहीं मिल पाती थी। अमर अक्सर मेरी इन बातों को सुनकर मुस्करा देता या और कह उठता था—अनुराग इंसान कल्पना तो बहुत कुछ करता है मगर उसे सब वस्तुएं उपलब्ध नहीं हो जाती और जब उपलब्धि नहीं होती तो दुःख इंसान को खाये जाता है।

अमर से यहां मेरी विचारधारा भिन्न हो जाती थी। यद्यपि अमर अनुभवी व्यक्ति था मगर मैं अमर के साथ कोरा भाग्यवादी बनना नहीं

वे भारतीयों की तरह किसी नैतिक झूठे बंधन को लेकर नहीं चलते। वर्तमान जीवन की हर उपलब्धि और जीवन की हर इच्छा की पूर्ति ही उनका मूल उपदेश या जीवन का दर्शन रहता है। पवन इसी दर्शन से प्रभावित था और इसीलिए वह कभी अपने पिता से भी समन्वय नहीं कर पाया। हमेशा विद्रोह की भावना उसकी बुद्धि में घर किये हुए थी। शादी करने के बाद भी पवन यू का यू बना रहा। अमर कई बार उसको अपने उपदेश दिया करता मगर पवन के आगे वे सभी बातें पवन की ही तरह उड़कर चली जाती। इसी अस्थिरता के कारण मैं कभी-कभी कोई बात पवन को नहीं बताता था और वही बात भूले-भटके जब उसे मालूम पड़ जाती थी तो वह मन-ही-मन कुढ़ा करता था और बात ही बात में व्यंग्य कस दिया करता था। मुझे उसके ये व्यंग्य सुनकर लगता था पवन कुछ ईर्ष्या करने लगा है मगर मैं फिर भी मानव स्वभाव समझकर उसका कोई प्रत्युत्तर न देकर रह जाता था। मेरी और पवन की बातों में कई जगह साम्यता रहती थी मगर विरोध की जगह फिर मौन ही रहता था। पवन में मुझे जो बात लगती थी वह यही थी कि उसके मन में एक ऐसी ही दूसरों की तरह दरार पड़ गयी थी और कभी-कभी जब उसे भी किसी के व्यक्तिगत जीवन के टाके उधेड़ते देखता तो फिर अप्रत्यक्ष रूप से कुछ कह ही देता था लेकिन कहने का अर्थ उससे दूरी नहीं होता था हमारी दोस्ती में फिर भी कोई खार नहीं आता था। यदि एक भी अपनी बुद्धि से समझौता कर ले तो झगड़ा या मनमुटाव नहीं होता और जब कभी ऐसी बात आती तो दोनों में से कोई भी इस समझौते को अपना लेता किंतु अक्सर ऐसा मुझे ही करना पड़ता।

× × ×

मैं अपना अधिकतर समय यूनिवर्सिटी में ही व्यतीत करता था। यू तो दिन भर में तीन से अधिक पीरियड कभी ही होते थे मगर कुछ तो एडजस्टमेंट ही ऐसा था कि लगभग साढे तीन बजे तक रहना लाजिमी था। पहले पीरियड के बाद दो का बीच में अंतराल और फिर इस समय लाइब्रेरी में बैठकर मैगजीनों के पन्ने पलटता, कुछ नयी किताबें सरसरी निगाह से देख जाता था या फिर मूड आने पर कुछ लिखने लग जाता। सोचता था घर

है, जीवन-भर विद्यार्थी बने रहकर सीखते रहने में ही जीवन की सार्थकता है। पढ़ना और पढ़ते ही रहना यही जीवन का मेरा लक्ष्य रहा है। इसी व्यवसाय में रहकर यह इच्छा जीवित रह सकती थी। इसीलिए दूसरी कई नौकरियां प्राप्त होने पर भी छोड़कर इसे अपना लिया था। जो लोग यहां आकर भी इसे नहीं समझते वे इस पेशे के लायक नहीं हैं। उनका लक्ष्य केवल पैसा कमाकर किसी तरह जिंदगी बिता देना है। उस वातावरण में वृद्ध भी अपने को युवक समझता है वहां यूं ही आकर समय बिता देना साधारण प्राणी के काम समान है। इसीलिए इन सब विषाक्त वातावरणों से हटकर अपने अध्ययन में लगा रहता, या हजारों विद्यार्थियों के मध्य अपनी कहानियों और कविताओं के विषय ढूंढ़ता रहता।

पवन हमारे मित्रों में से ऐसा ही था। उसके मन में नित नये कौतुक उठा करते थे। सरकारी नौकरी में आकर जहां उसके शरीर का खट-पटियापन कम हो गया था वहां उसकी बुद्धि का खटपटियापन चालू हो गया था। जहां बैठता वहां बातों के गोले छोड़ना ही उसका पहला काम था। दो-चार को आड़े हाथों लेना उसका रोज का काम था। दूसरा काम-धाम तो उसका स्वर्गधाम में था।

पवन से मेरी बहुत पहले की मुलाकात नहीं थी, वह तो अमर का अच्छा-खासा मित्र था। दोनों यदि कहा जाय तो एक-दूसरे के अर्द्ध थे। एक-दूसरे के बिना दोनों अधूरे थे। दोनों दिखने में एक-दूसरे के कंट्रास्ट थे। अमर छः फुटा था तो पवन ढाई फुटा। अमर की चौड़ाई सूतों में थी तो पवन की फुटों में मगर दोनों किसी सर्कस के हास्य अभिनेता से कम नहीं थे। दोनों में थोड़ा अंतर भी था। अमर के जीवन में जहां थोड़ी गंभीरता थी वहां पवन हर बात को हंसी में उड़ा दिया करता था। अमर हर बात सोच-सोचकर कहता था तो पवन बिना विचार किये चिल्ला दिया करता था।

पवन मस्त और फक्कड़ स्वभाव का प्राणी है—हंसी का गुलदस्ता। कहीं आधा-पौना घंटा उसके साथ बैठ जाइये दिमाग का सारा बोझ हलका हो जायगा। चिंता उसको बहुत ही कम है। दुनिया उसकी तरफ से जहन्नुम में जाय उसे खाने-पीने को मिल जाना चाहिए। जहां से उसे उपलब्धि हो

बात करना कुछ और है और बात का प्रयोग करना कुछ और। जिसकी नींव ही रेत से बनी हो भला कभी उस पर दीवार खड़ी रह सकती है।

पवन के मन में इनके प्रति खूंखार भावना जाग उठती और उसका जी करता सबको लाइन से खड़ा करके थ्री नाट थ्री से शूट कर दिया जाय। पवन में सिपाही का खून भी दौड़ता था और उसका बस चलता तो वह पूरी की पूरी सरकार के इन खूटों को उखाड़ फेंकता। परंतु वह असमर्थ था। जिसको गृहस्थी के खूटे से बांध दिया जाय वह तो फिर गाय हो जाता है। पवन की भी ऐसी ही हालत थी। वह भी बहस करके और साधारण-तया दूसरों की तरह दो गाली देकर चुप रह जाता और फिर अपने धंधे में लग जाता। ऐसी सरकार में जीना दुर्लभ है मगर जिसने जन्म लिया है वह मर तो नहीं सकता। जीना ही पड़ता है। गधे पर कितना ही बोझ लादा जाय सब उसे सहन करना ही पड़ता है और जब बेवकूफों की जमात बोझ बनकर सर पर बैठी है तो सभी कुछ सहना ही पड़ेगा। जो गरीब था वह और भी गरीब होता जा रहा था, जो अमीर थे उनकी तिजोरियां और भी भरती जा रही थी और मध्यम वर्ग पिसता जा रहा था। एक ही झटके में सरकार के तख्ते हिल गये थे। और देश की जनता के आगे हाथ फैला चुकी थी। चारों ओर एक द्वंद्व मच रहा था और लोगों के दिमागों में क्रांति की भावना जन्मती जा रही थी। और जब इस बहस से भी मन ऊब जाता तो मैदानों की खुली हवा में निकल जाता और सृष्टि नियता की तरह पैरों से फुटबाल को घुमाते, ठोकर मारते और अपनी विजय पर मुस्कराते खिलाड़ियों के बीच जाकर घड़ी भर के लिए बुद्धि के परदे को इस तरह धो डालता मानो इस पर किसी प्रकार के छींटे पड़े ही नहीं।

× × ×

इधर मैं अपनी मस्ती में घूमा करता, पढ़ता, पढ़ाता और कहानियां लिखा करता। मगर जब घर से पिताजी के या माताजी के पत्र आते तो बस उसमें एक यही जिक्र होता कि मैंने अपनी शादी के बारे में क्या सोचा है? मैं हर पत्र का उत्तर दो लाइन में देकर चुप हो जाता परंतु हर पत्र दिन पर दिन क्रोध भरा आने लगा और उत्तर देना आवश्यक हो ही गया।

अकेले बैठकर भी क्या करूंगा। इसी बीच कई विद्यार्थियों से मिलना हो जाता। जो क्लास में नहीं समझ पाते वे यहां आकर अपना काम निबटा जाते। इसे जब तक मेरा मूड होता, मैं भी बुरा नहीं मानता था और उन्हें समझा दिया करता था। और फिर अगर कुछ काम नहीं होता तो बैठकर इधर-उधर की गप्प लगा लिया करते थे या फिर राजनीति के दो-चार दांव-पेंच डिस्कस कर लिया करते थे। मुझे ऐसा अनुभव होता था कि हिंदुस्तान में राजनीतिज्ञ ज्यादा हैं, और जितने ज्यादा राजनीतिज्ञ हों, उतनी ही देश की बर्बादी होती है। लेक्चर देना, जनता को भड़काना, बहकाना, उद्घाटन करना इन लोगों का खास पेशा है। यदि एक खाता है तो दूसरा उसके विरोध में चिल्लाता है और जब उसके भी पेट में कुछ पड़ जाता है तो वह भी उसी जमात में शामिल हो जाता है। जितने भी चिल्लाते हैं, अभी उनके पेट खाली हैं, जिनकी तोंद आगे निकल चुकी है उन्होंने खूब जमकर देश की सेवा के नाम पर अपना घर भरा है। दूसरों की हेल्थ के लिए इन लोगों ने खाया है। रिश्वतखोरों को समाप्त करने के लिए इन्होंने रिश्वतों से अपने घरों को भर लिया है। इन आदमखोरों को लेकर अक्सर जनता में बहस छिड़ जाती है मगर इनके खिलाफ बोलने का अर्थ होता है सीखचों में बंद होना या फिर दो जून रोटी भी नसीब न कर पाना। तानाशाही के बादशाह समाप्त हो गये और स्वतन्त्रता के बादशाह पैदा हो गये। पहले कम-से-कम एक राजा का हुक्म होता था अब दस हो गये। जिधर देखो उधर चप्पल फटकारते, जनता पर झूठा रौब जमाते हुए निकल जाते हैं। एक बार चुनाव जीतने के बाद तो मानो जनता की किस्मत इनके हाथ में है, जिसको चाहा उसको बनाना-बिगाड़ना फिर तो इनके हाथ में। छंटे-छंटाये अव्वल नंबरी मारपीट कर, खून-खराबी कर इन कुर्सियों पर आकर बैठते हैं और फिर अपनी विजय पर सफाचट मूछों पर ताव देते हैं। जहां खड़े होते हैं, वहां नैतिक उच्चता की बात करते हैं और वे ही रात को कोठे झांकते फिरते हैं या फिर ... की जेबों में पैसा डालकर जनता के रुपयों पर जनता की इज्जत खराब करते फिरते हैं। ऐसे नेताओं को लेकर अक्सर ... करती थी लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकल ...

में बांध ले। जहां आकर्षण नहीं वहां उस व्यक्ति को कभी सौंदर्य और प्रेम दिखायी नहीं देगा और फिर यह आवश्यक नहीं कि जो आपको पसंद है, प्रिय है और आपके लिए सुंदर है वह दूसरों के लिए भी वैसा ही हो।

इसी की खोज में पचासों आफर्स देखे और सब जगह से एक ही मौन उत्तर लेकर आया और हर बार उन्हीं प्रश्नों की बौछार सुनी जिन्हें सुनकर मेरी आंखों से आंसू बह पड़ते।

मैं सदा से कोमल और भावुक रहा हूं। कठिनाइयों से घबराता नहीं मगर उनके अत्याचारियों के व्यवहार पर आंसू छलक पड़ते। मेरा मन सदा से प्रेम, सहानुभूति और विश्वास का भूखा रहा है। जहां से मुझे मित्रता मिली, प्रेम मिला, विश्वास मिला वहां पर अपने आपको लुटा बैठा हूं उसे चाहे जग मेरा भोलापन कहे या पागलपन पर इसके न मिलने पर सदा एकांत में मेरी आंखों ने आंसू बहाये है।

× × ×

अरविंद मेरे मन की हरेक बात को जानता था और मेरी हर इच्छा के साथ उसकी हमदर्दी थी। वह चाहता था कि उसके दोस्त के माथे पर सेहरा बंधे मगर सेहरा बंधकर जीवन की कशमकश उत्पन्न हो जाय यह वह कभी गवारा नहीं कर सकता था। एक-दो बार तो वह भी मेरे साथ इधर-उधर गया था। एक वही था जिसे मैं अपने मन का सारा दर्द खोल-कर बता दिया करता था। पिताजी ने यद्यपि अरविंद को भी इस बारे में मुझे समझाने को कहा था मगर अरविंद आधुनिक विचारधारा का था और शादी के नाम पर बलिदानी उसे तनिक पसंद न थी। क्योंकि जिसके लिए बलिदानी की जायेगी वे सारी उम्र तो बैठे रहने के नहीं फिर थोड़ी-सी बात के लिए उम्र भर के वास्ते क्यों ढोल गले में लटकाया जाय? मां की इच्छाएं बार-बार आकर खड़ी हो जाया करती थी लेकिन एक इच्छा के लिए जिंदगी का सौदा भी तो नहीं किया जा सकता। यही कारण था कि अरविंद ने मुझे कभी दबाव नहीं डाला और मुझे अरविंद पर पूरा विश्वास था कि वह कभी मेरे लिए कांटे नहीं बोयेगा। मेरी हरेक आदत को अच्छी तरह जानता था और यद्यपि उम्र में मुझसे छः महीने बड़ा था फिर भी मेरी इज्जत किया करता था और मेरी कही बात को उसने कभी नहीं टाला।

मैंने वैसे कभी अपने बारे में सोचा ही नहीं और न ही कभी कोई प्रयास किया लेकिन अबकी बार तो मजबूर होकर इस पर विचार करना पड़ा। अक्सर मैं मित्रों की इस संबंध में राय लेता किंतु अपने विचार पिताजी को बताते हुए एक शंका भी उत्पन्न हो रही थी क्योंकि मुझे विश्वास था कि मेरे और पिताजी के विचारों का कभी समन्वय नहीं हो सकता। इसी बीच कई आफर्स पर और भी लड़कियां देखी पर कहीं से भी मैं, जिस रूप में उनकी बड़ाई की जाती, उतनी ही निराशा लेकर लौटता और जब देख आता तो यही प्रश्न होता लड़की पसंद आ गयी?

और मेरे 'नहीं' कहते ही सारे घर में एक विपरीत वातावरण बन जाता।

—आखिर क्यों पसंद नहीं?

—आखिर क्या कमी है? दूसरा प्रश्न

—तो क्या स्वर्ग से परी उतरकर आयेगी? तीसरा प्रश्न और व्यंग्य होता।

मैं इन प्रश्नों को एक कड़ा घूंट पीकर सुन लेता और बिना कोई उत्तर दिये मौन बैठा रहता परंतु जब हर बार यही प्रश्न आते तो मेरा एक ही लंबा उत्तर होता कि जब भी जो भी पसंद होगी खुद हां कह दूंगा। क्यों पसंद नहीं इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। किसी लड़की में कोई कमी नहीं है। हरेक पूर्ण है, सुंदर है, सब कुछ है मगर जिसके प्रति मेरे मन में आकर्षण नहीं उसके लिए मैं हां नहीं करूंगा—कभी नहीं करूंगा। इससे अधिक अपनी विचारधारा मैंने कभी नहीं बतायी थी।

इस उत्तर को सुनकर किसी को संतोष नहीं होता वरन् मेरी ओर एक विशिष्ट शंका की दृष्टि से देखा जाता। मैं भी सबके प्रश्न और उत्तरों को चुप होकर एक कान से सुनता और दूसरे कान से निकाल देता परंतु ये सब बातें मुझे अकेले में बहुत सताया करतीं। मैं यही सोचा करता था यहां अपने भी बेगाने हैं, कोई मन की बात को नहीं समझता न समझने की कोशिश करता है। भावनाओं का मजाक उड़ाया जाता है। किसी को सुंदरता का मानदंड मालूम नहीं। दुनिया की हर चीज किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे सुंदर और हसीन तभी हो सकती है यदि वह उसे अपने आकर्षण

अंत में मजाक भरा वाक्य लिख बैठी—तभी तो कहती हूं कि इस मन की टीस के लिए कोई नीड ढूढ लो, मगर भाभी की कौन सुनता है—क्योंजी ? अगर कहो तो—तुमने मेरी शादी में जो मेरी सहेली देखी थी उससे बात चलवाऊं ? पिछली बार जब पीहर गयी थी तो तुम्हारा जिक्र चला था। उसने तुम्हें देखा था और पूछती थी जीजाजी के साथ जो थे वो कौन थे। मैंने उसे आपकी सारी बातें बता दी है। आप यू मत समझ लेना कि भाभी अपनी सहेली की वकालत कर रही है। मैं कभी आपको 'फोर्स' नहीं करती केवल उसका जिक्र किये देती हू। जिस तरह आप इनके दोस्त है उसी तरह वह मेरी बचपन की सहेली है। उसके साथ ही खेली और बड़ी हुई हूं। हम हमेशा साथ-साथ एक ही स्कूल में पढ़ते थे, एक ही विषय रखते थे और जब भी पास हुए एक ही डिवीजन में। मेरे साथ उसने भी बी० ए० किया है और अब वह एम० ए० कर रही है। पढ़ने का उसे बहुत शौक है। कॉलिज लाइफ में उसे बड़ा आनंद आता है। बड़े ही मजे की लड़की है—चुलबुली। मुझे तो उसकी हमेशा याद आती रहती है मगर हम लड़कियों के भाग्य ही ऐसे है। शादी के बाद तो बचपन की हर बात स्वप्न बन जाती है। उसके पिता कंपनी के डायरेक्टर है। मुझे तो वह बहुत ही अच्छी लगती है—आपकी मैं नही कह सकती। नाम उसका 'शैलू' है। इस बार गर्मियों में उसको बबई बुलवाया है आप भी आ जाइये तो मुलाकात हो जाय। आप जल्दी ही खत का उत्तर देना। और हां अगली कहानी कब छपेगी—?

पत्र को पढ़कर मुझे शशि भाभी का एक स्वतन्त्र रूप दिखायी दिया। शशि भाभी की आगे वाली बातें भी पढ़कर सोचने लगा, भाभियां अपनी दलीलें पेश करने में बड़ी चतुर होती हैं। शादी होते ही उनमे एक अजीब परिवर्तन हो जाता है। सारी की सारी चतुराई उनकी निखर उठती है। उन्होंने मेरे उत्तर की बहुत प्रतीक्षा की किंतु मैं कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाल पा रहा था और इसीलिए उत्तर देने में असमर्थ रहा।

× × ×

उन्हीं दिनों आदर्श व्याख्यान माला के अंतर्गत मेरा लेक्चर था। बहुत मना करने पर भी मुझे समिति के अध्यक्ष की बात माननी पड़ी थी। मना यू करता रहा था कि वहां सभी प्रौढ़ विचारक और वृद्ध उम्र के व्यक्ति

शशि भाभी भी बड़ी मस्त थी मुझे और अरविंद को देखकर तो वे भी यही कहती थीं, 'इनके' कोई छोटा भाई नहीं है तो क्या, 'तुम' क्या 'कम' हो।

शशि भाभी लखनऊ की रहने वाली है और मैं तो उन्हें 'लखनऊ की अदा' कहकर ही चिढ़ाया करता हूं। बिलकुल अरविंद के कद की हैं क्योंकि अरविंद भी कोई लंबा नहीं है, मगर अरविंद से ज्यादा मजाकी हैं। लखनऊ यूनिवर्सिटी से ही उन्होंने बी० ए० किया। बी० ए० करने के बाद उनकी शादी हो गयी इसलिए आगे पढ़ना उन्होंने बंद कर दिया। यद्यपि उनका पढ़ने का शौक खत्म नहीं हुआ है। घर पर ही वे विभिन्न पुस्तकें पढ़ा करती हैं। रईस खानदान की लड़की हैं मगर गरूर उनमें बिलकुल नहीं है। क्रोध करते हुए मैंने उन्हें जब तक रहा नहीं देखा। घूमने-फिरने, खेलने का भी उन्हें शौक है। कभी-कभी ताश का शौक भी वे फरमा लेती हैं। भाभी को कहानियां पढ़ने का बहुत शौक है और अक्सर वे अपने फालतू समय में कई पत्र-पत्रिकाओं में छपी कहानियां पढ़ डालती हैं। एक दिन मेरी कहानी पढ़कर तो एक समीक्षा भरा लंबा-चौड़ा पत्र लिख दिया। कहने लगी—देवरजी आपकी कहानी पढ़ी ! पहले तो सोचने लगी कि अनुराग आप ही है या और कोई मगर जब इन्होंने कहा तो एक बार कहानी पढ़ने के बाद दुबारा पढ़ी। सच देवरजी कहानी तो बहुत अच्छी लगी लेकिन कहानी के थीम में दुःख भरा हुआ था। कहानी का दुखांत पढ़कर मैं कुछ विचार करने लगी। आखिर कहानी के नायक को अपनी भावनाओं का गला क्यों घोटना पड़ा ? अपने जख्म को छिपाकर भी उसने दुनिया को मुस्कानें लुटायीं मगर एक बात पूछूं—अनुजी—यह सब ठीक है कि बलिदान एक आदर्श है, चरित्र की मौलिक महानता है परंतु उस बलिदान का मूल्य क्या ? समाज में उस मौन बलिदान को कौन जान पाया ? क्या ऐसे छोटे-छोटे बलिदान हमारे जीवन का, समाज का निर्माण कर सकते हैं ? इनसे कोई लाभ नहीं फिर भी आपने उस आदर्श को पालकर मानव मन की स्वाभाविक भावना को कफन उढ़ाया है। कहानी को पढ़कर ऐसा लगा कि कहानी की टीस कहानीकार के मन के किसी कोने में छिपी बैठी है—वैसे कहानी रोचक और सुंदर थी, भावनात्मक अधिक है—और फिर

शन कैसा लगता है ?

मैं अपने आपको थोड़ा अव्यवस्थित अनुभव कर रहा था किंतु फिर भी शिष्टता के नाते उनके प्रश्नों के मुझे उत्तर देना चाहिए थे। मुझे इस जगह ने अपने आकर्षण में बांध ही रखा था अत: यहां की प्रशंसा स्वाभाविक ही थी। मैंने कहा सबसे अच्छी चीज मुझे यहां लगी यहां की शाम। एक अजीब प्रकार की मदहोशी लेकर यहां की संध्यायें आती हैं जिनमें उदास चेहरे भी खिल उठते हैं और रात को चलती हुई मस्त हवायें और ठंडक भरी रातें मेरे जीवन का एक अंग बन गयी हैं। आगे पढ़ने के लिए रिसर्च तो कर ही रहा हूं। कभी-कभी कुछ लेख आदि भी लिख लिया करता हूं। लिखने की बुरी लत-सी पड़ गयी है। जब तक कुछ लिख नहीं लेता चैन नहीं पड़ता है। जहां तक मेरे प्रोफेशन का प्रश्न है मुझे यह बहुत ज्यादा पसंद है। और फिर मेरी बचपन से यही एक इच्छा थी कि मैं प्रोफेसर बनूं। ईमानदारी और शांति का यही एक व्यवसाय है। अध्ययन और अध्यापन दोनों ही चलते रहते हैं। हर वर्ष नयी-नयी पीढ़ी के संपर्क में आकर एक नयी शक्ति और स्फूर्ति मिलती है। जीवन की विविध गतिविधियां खेल-कूद से लेकर चिंतन और मनन तक सभी यहां प्राप्त हो जाती हैं। और मुझे तो जीवन की वास्तविक अनुभूति यहां प्राप्त होती है। मैं पैसों के आगे अपनी शांति और हृदय की पवित्र आनंद अवस्था को प्रधानता देता हूं। राजनीति से मुझे नफरत है। शासकीय पद मैं इसीलिए स्वीकार नहीं करता और खासकर तो मुझे इसमें लिखने का और लिखने के लिए पर्यटन का खूब समय मिलता है।

और जब इतना कहकर मैं चुप हो गया तो अपना छुटा हुआ प्रश्न पूछ ही बैठे, 'और मैरिज—?'

'मैंने अभी तक इस पर कोई विचार ही नहीं किया, जब भी कोई कहीं अच्छा साथी देखूंगा तो शायद···'

वे मुस्करा दिये···

घर की गली आ गयी थी अत: चौरास्ते में ही उतर गया और नमस्ते कर विदा ली···

'आप जरूर आइये घर। निशा के हाथ कहलवा दीजिये', कहते-कहते

उपमा बड़ी ही गंभीर लड़की है। साधारण ऊंचाई से भी छोटी है और बदन इतना दुबला है मानो लिमिकल खाकर किसी विशेष फैशन के लिए इतनी पतली देह बनायी गयी है। रंग बिलकुल साफ है, नाक-नक्श सलोने है, बाल कुछ भूरापन लिए हुए जिन्हें बस बीच मे मांग निकालकर संवारती है। वेश-भूषा उपमा की सलवार, कमीज और दुपट्टा है। इसका कारण है एक तो वह दिल्ली रह चुकी है अत. पंजाबी ड्रेस का प्रभाव है दूसरा उसे अन्य ड्रेसेज जचती भी नहीं। यही उसके बदन पर फबती है और स्मार्ट भी लगती है। कभी-कभी फंक्शंस पर उसे साड़ी पहने हुए भी देखा। उम्र में वह लगभग बीस की होगी पर बीस की कोई नही कह सकता अभी वह और भी छोटी लगती है। बातों मे वह समझदार है, तौर-तरीके उसे खूब आते है। कभी भी कोई बात पूछने आती है तो एक ही वाक्य में प्रश्न पूछकर और उत्तर सुनकर चली जाती है। न जाने क्यों वह मुझसे शर्माती है, कभी निशा के साथ आती है तो निशा की ओट मे छिपी रहती है और आंखें झुका लेती है।

वह यहां इसी वर्ष आयी है किन्तु निशा की बहुत अच्छी फ्रेण्ड बन गयी है। दोनों पास-पास ही रहती है, रोज मिलती हैं, रोज साथ घूमती हैं और आपस मे घंटों बैठकर बातें किया करती हैं। दूर रहकर चैन नही पड़ता तो फोन पर ही बातें होने लगती है।

मैंने देखा उपमा यद्यपि अत्यधिक भावुक नही किन्तु दिल की बात फौरन समझ लेती है। आंखो की बेकरारी देखकर दिल की गहराई तक वह पहुंच जाती है। निशा के मन की बात भी उसने जान ली और अक्सर उसे छेड़ा करती है। जब भी निशा इधर-उधर देखती उपमा का मीठा-सा प्यार भरा व्यंग्य छूट पड़ता—'जनाब की निगाहें किसके लिए बेकरार हैं।' और फिर खुद ही उसके लिए मार्ग बता देती इधर नहीं उधर। निशा उसकी इस बात से कभी नाराज नही होती। इससे उसके मन में एक मीठी गुदगुदी उत्पन्न हो जाती जिससे एक अनोखा सुख मिलता था। वह इसे अपने तक ही सीमित रखे हुए थी। उपमा के लिए निशा को छेड़ने का एक अच्छा मसाला मिल गया था। और जब भी दो लड़कियां मिलती हैं प्रायः एक-दूसरे के चाहने वालों को लेकर बातें किया करती है और ठीक भी है

उनकी कार आगे निकल गयी…।

मैं उनकी इस आत्मीयता पर विचार करने लगा।

× × ×

ज्यूं-ज्यूं समय बीतता गया निशा जीवन की अभिन्न बनती गयी। उसे देखकर मुझे ऐसा लगता निशा के बिना जीवन सूना है और इससे दूर होकर जीवन में एक नीरसता महसूस होने लगती। मेरा मन बड़ी आतुरता से हर घड़ी उसकी प्रतीक्षा किया करता और जब तक उसको देख न लेता था बेचैनी छाई रहती थी। जिस दिन न मिल पाता उस दिन उदास पवन की तरह जीवन में शिथिलता दिखायी देती और चारों ओर लड़कियों के समूह में आखें उसे खोजा करती। निशा मेरी इस बात को अवश्य जान गयी थी कि मैं उसे कितना चाहता हू। और मेरी उदासी को दूर करने कोई न कोई काम लेकर वह मेरे पास आ ही जाती थी। कभी भी जब भी वह मुझे खाली बैठा हुआ देखती, अकेला देखती, आकर दो घड़ी बात कर जाती थी या किसी और अपनी फ्रेंड्स के साथ आकर मेरा दीदार कर जाती थी। निशा के मन में भी मेरे लिए बेचैनी रहा करती थी। मुझे खुश देखकर उसे जितना सुख मिलता था शायद वह अपने सुखी रहने में भी अनुभव नही करती थी। मेरी उदासी उसके लिए बेचैनी हो जाया करती थी और सदा की तरह वह यही प्रश्न किया करती थी, 'आप आज उदास है? आप उदास रहते है तो मुझसे नही रहा जाता। कुछ काम नही होता है। किसी भी क्लास में नही पढ़ा जाता और हरदम आपका खयाल आता रहता है।'

'कुछ नही निशा—यू ही कभी-कभी मुझे उदासी आ घेरती है। मै भी नही समझ पाता मै क्यों उदास रहता हू। यह उदासी कैसे दूर करूं इसका भी उत्तर नही खोज पाता। परंतु तुम्हारे एक ही प्रश्न से सारा भार हल्का हो जाता है।' मैं अपने आपको विश्व का सबसे सुखी आदमी महसूस करने लगता हूं। मेरी आखों मे एक नयी चमक आ जाती है, होंटों पर नयी फसल-सी मुस्कान फूट पड़ती है। निशा मुझे देखा करती और फिर मुस्कराकर लजाकर चली जाती।

यूनिवर्सिटी में निशा की एक और साथिन थी नाम था उसका उपमा।

सवारती है जिसमे जुही के फूल महकते रहते हैं तो फिर आतुरता को रोके नही रोक पाता।

यूनिवर्सिटी मे शायद उसके रूप का कोई सानी नहीं रखता था। ऐसी बात नही थी कि कोई और लड़की सुदर न थी मगर निशा का कोई जवाब नही था इसीलिए वह प्राय: सबके आकर्षण का केन्द्र थी। स्टूडेण्ट्स तो उसके साथ तनिक बात करने में भी गर्व का अनुभव करते थे। जिधर से वह निकल जाती थी मै देखता था सबको एक बार अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी।

केवल रूप की मूर्ति ही कहना निशा की पूर्णता नही थी। जैसा उसका बाह्य सौन्दर्य था, निशा का आन्तरिक सौन्दर्य भी उतना ही प्रबल था। उसकी सौन्दर्य की परख भी तेज थी। सौन्दर्य का बोध उसे और भी अधिक लावण्यमय बना देता था क्योंकि निशा का ड्रेस पहनने का तरीका और कलर का मेचिंग बहुत ही सुदर होता था। लबी वेणी पीछे की ओर हिलती-डुलती या कभी आगे की ओर पड़ी हुई मन को लूट लेती थी। घने और काले बाल किसी काली घटा से कम नही। आंखो में उसके एक अजीब मस्ती है। न जाने कितने समुन्दरो की गहराई उसमे छाई हुई है। नारी का आधा आकर्षण उसकी निगाहों की खुमारी में छिपा रहता है। बड़ी-बड़ी आंखो मे काजल और कनखियों पर पतली-सी रेखाएं जिनमें मछलियों-सी चंचलता और चातक-सी प्यास सब एक मिलकर अपना नया ससार बनाये हुए है। जिसमे एक सम्मोहन भाव है जिसे देखकर चित्रलेखा की स्मृति ताजा हो जाती है। मुखड़ा नीचे ठोड़ी के पास बड़ा-सा काला तिल सुन्दरता की खान लिए हुए है जिसमे बंधा सो बधा फिर निकलने को जी नही चाहता। इन सबके साथ अलकों का भाल पर झुके रहना और गोरे ललाट पर लाल रग की छोटी-सी बिंदी हजारों रूप के घड़ों को उलटती है। इस रूप के पीछे उसका प्यार भरा दिल, समर्पण भरा दिल जिसने निश्छल रूप से अपनी मन की भावनाओं को अस्पष्ट अव्यक्त शब्दो मे व्यक्त किया। जिसके हृदय मे अपनत्व का भाव दिखायी दिया। जिसके प्रति स्वत: ही एक आकर्षण का भाव जागृत हुआ, जिसे अपना कहने और अपना बनाने की इच्छा तीव्रता से उठी, जिसके मन में मैंने अपने जीवन की वास्तविक मूरत देखी वह निशा

मन की बात दूसरों के मुख से सुनकर जो आनन्द मिलता है वह कहा नहीं जा सकता। निशा उपमा की कही हुई बातें मुझे कह जाती थी और मुझे कभी-कभी छेड़ने को कह जाती थी मैं अब आपके पास नहीं आऊंगी सब देखते हैं…।

× × ×

निशा का यह कहना सिर्फ कहना ही होता। उसने मुझे कभी सताया नहीं। इतना अवश्य था कि कभी जब मुझसे नहीं रहा जाता तो उसके आने के पहले ही उसको बुला लिया करता था। कुछ ही दिनों में मैं ऐसा अनुमान लगा सका कि निशा की दूसरी फ्रेंड्स यह जान गयी हैं कि निशा को प्रो० अनुराग बहुत चाहते हैं और जब भी उनका कोई काम होता वे उसे ही भेज दिया करती थी। इस बहाने कुछ अधिक देर और अधिक बार उससे मिलना हो जाता था। मेरे लिए वह एक रूप में क्लास की प्रतिनिधि बन गयी थी।

उम्र के साथ-साथ निशा पर भी शबाब छाता जा रहा था। अंग-अंग में अनोखा आकर्षण उसमें भर गया था। बिहारी की नायिका और विद्यापति की राधा वह दिखने लगी थी। उसकी आंखों में हर एक भोली अदा और एक अजीब खुमार था जिसे पीकर मस्ती छा जाती और लुट जाने को जी चाहता था। उसके बदन का गठन कुछ ऐसा था कि उसे हर प्रकार का परिधान फब जाता था। हर रंग के कपड़े उसके उभरे हुए अंगों पर चटककर खिलते थे। कपड़ों के नकली फूलों के डिजाइन भी वहां आकर हंसते-इतराते दिखायी देते थे। शलवार-दुपट्टे में वह किसी हंसते हुए गुलाब से कम नहीं दिखती। स्कर्ट में उसके पैरों की कोमलता यूं निखर उठती मानो किसी शिल्पी ने मर्मरीन पिंडलियों का निर्माण किया है। अक्सर वह यही ड्रेस पहनती है। मगर मुझे निशा साड़ी में एक कल्पना लोक की परी लगती है और मेरी कलम भी उसके रूप पर फिसल पड़ती—

'हर रंग में तेरा शबाब मुस्कराता है ऐ साकी,
तू तसव्वुर की जहां में वो बेहतरीन कलम है।'

इस लिबास में लिपटी निशा मेरी आंखों में सदा बसी रहती है। सफेद साड़ी उस पर खूब फबती है। और जब कभी वह मांग डालकर अपनी वेणी

बहुत दिनों तक उनकी शक्ल ही नहीं देखी थी क्योंकि वे छः-सात बजे जब तक मैं उठता था, भजन-पूजन करके अपनी दुकान पर चले जाया करते थे। हालांकि काम उनको कुछ नहीं करना पड़ता था फिर भी सेठ मौजूद हो तो मुनीम आदि कामचोरी नहीं करते हैं। यही सोचकर वे दस समय तक तो दुकान पर पहुच जाते थे। उनके घर मे कोई ज्यादा आदमी नही थे। चार उनके लड़के-लडकिया थी जो बड़े हो चुके थे और सभी स्कूल जाते थे। उनकी सबसे बडी लड़की जिसका नाम था मीना उस समय हाईस्कूल के आखिरी वर्ष में पढ़ती थी। सबसे पहले मेरी मुलाकात इसी से हुई थी जब वह एक दिन बिना किसी परिचय के कुछ गणित के सवाल और कुछ चौपाइयो के अर्थ पूछने आयी थी। और मैंने उसकी कठिनाइया हल करने की बजाय उससे बात करना शुरु कर दिया था। उससे पूछा था—तुम्हारा नाम क्या है? कहा पढ़ती हो? और फिर उसने बताया के वह मेरे पास आज कैसे चली आयी। कहने लगी इधर से आपको किताबे लिए हुए जाते रोज देखती थी तो सोचा आप भी पढते होगे। एक दिन चाची से पूछा तो उन्होंने बताया आप बी० ए० मे पढते है। मैंने सोचा कभी कोई कठिनाई होगी तो पूछ लूगी।

मै उसकी इस सादगी से मन-ही-मन मुस्करा उठा। फिर मैंने पूछा ये 'चाची' कौन है तो कहने लगी 'आप जिनके मकान मे रहते है!' मै समझ गया और सोचने लगा तब तो मीना की मा भी जान गयी होगी क्योकि औरतों के मुह से एडवरटाईजमेण्ट जरा जल्दी होता है। मीना से पूछने पर मेरा अन्दाज ठीक ही निकला। उसकी मा भी मेरे बारे में सुन चुकी थी। और फिर तो एक के बाद सारी गली मे मेरा नाम सभी जानती थी। बच्चे भी मुझे जानने लगे थे क्योंकि गली मे गिल्ली-डंडा या क्रिकेट खेलते हुए बच्चे तो सभी मुझे जानते थे और जब कभी उनके साथ मै भी उनका हम-उमर बन खेलने लगता था तो वे मुझे ही सब कुछ मानकर हर मेरी बात मान लिया करते थे। गली मे यद्यपि बात बहुत कम से होती थी मगर नाम से सभी परिचित हो गये थे। बड़े लोगो मे मै खुद इसलिए नही जाता था कि अभी छोटा था—लड़का ही तो था। प्रायः गली मे सभी छोटे-छोटे बच्चे मुझे भाई साहब कहकर पुकारते थे। और मीना ने मुझे अनु भैया

एक अच्छी अध्येता के रूप में मेरे सामने आयी। निशा के इस रूप लावण्य को देखकर समय बीतने लगा किन्तु मन की कमजोरियों से या झूठे बाह्य आदर्शों में बंधे रहने के कारण कभी अपनी अभिलाषा को न तो मैं ही व्यक्त कर सका और न ही वह नारी सुलभ लज्जा में बंधी कुछ कह सकी।

मन में अक्सर इन झूठे आदर्शों के बोझ को उतार फेंक देने की इच्छा बलवती हो उठती और जी चाहता जहां आनन्द नहीं उसे अपनाने से क्या लाभ। यदि आदर्श यथार्थ जीवन को सुखमय नहीं बना सकता तो ऐसे आदर्श को दफना देना ही बेहतर होता है। मनुष्य जो कुछ करता है अपनी आत्मा के सुख के लिए। उसे दु.ख देकर भला कब हम अपने काल्पनिक ईश्वर को सुख दे सकते हैं। भौतिक जीवन में रहकर कर्म करना ही वस्तुतः ईश्वर की प्राप्ति है। कर्म के माध्यम से जीवन का उन्नयन करना यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। ईश्वर मूलरूप में कुछ नहीं वह तो हमारे कर्मों को जागृत बनाये रखने के लिए एक भयमान है। और फिर से जीवन की उपलब्धि की ओर कदम बढ़ जाते।

निशा को पाने की आतुरता कोई बाह्य चेष्टा नहीं थी, किन्तु यह तो पूर्वापर संबंध थे जो इस जीवन के आकर्षण में बंधकर अभिव्यक्त हुए थे। दीपक की बाती धीरे-धीरे और भी अधिक प्रगाढ़ होती गयी।

× × ×

बिंदु यद्यपि निशा की अति निकट की मित्र थी किंतु कभी भी निशा ने अपने मन की बात उसे नहीं कही थी। बिंदु भी शायद कभी इस बात को नहीं समझ पायी सिवा इसके कि निशा के मन में 'अनुराग' के प्रति बड़ी श्रद्धा है। कभी-कभी अवश्य वह चेहरे के भाव को पढ़ने का प्रयास करती और निशा को उदास या कभी बहुत अधिक प्रसन्न देखकर कुछ पूछ बैठती थी—जो मुझे मालूम पड़ जाता था।

बिंदु के प्रति मेरे मन में एक आत्मीय भाव उत्पन्न हो चुका था—न जाने क्यों? बिंदु को देखकर दरअसल मुझे अपनी पांच वर्ष पहले की घटना याद हो आती थी। उस समय मैं बी०ए० में पढ़ता था। जहां मैं रहा करता था वहीं पड़ोस में एक बहुत ही पुरानी पीढ़ी के सेठ रहा करते थे। नाम था उनका बिहारीलाल। यद्यपि मैं उनके पड़ोस में ही रहता था किंतु मैंने

मा मानती ही नही थी किन्तु जब भी कभी कोई नयी चीज घर पर बनती एक प्लेट भरकर मीना मेरे लिए ले आती थी—या कभी घर ही बुला ले जाती थी। हाईस्कूल पास करने के बाद मीना कॉलेज मे आ गयी थी और साल भर तक मेरे साथ ही कॉलेज जाती थी। उसके बाद उसकी शादी हो गयी थी—उसकी शादी मे मैं गया था, उसने बहुत-बहुत लिखा था और मुझे देखकर सब घर भर के लोग खुश हुए थे। उसे विदा करते हुए मेरी आखो मे भी आसू छलक आये थे। उसकी शादी को तीन साल हो गये। उसकी चिट्ठिया आती रहती है जिनमे हमेशा कानपुर आने का निमत्रण देती है और हर राखी के त्यौहार पर स्नेह भरी राखी भेजकर भाई-बहन के बधन को और भी अधिक मजबूत बना देती है।

बिंदु को देखकर मुझे मीना की स्मृति हो आती है। बिलकुल मीना जैसा ही रूप-रग, वैसी ही चाल-ढाल, वैसा ही बात करने का ढग और जिस तरह मीना को अपने दिल की हर बात कह दिया करता था, बिंदु से भी एक दिन कह उठा। बिंदु ही थी जो कि निशा के मन की बात का पता लगाकर मुझे कह सकती थी। इसी विश्वास को लेकर एक बद लिफाफा निशा के लिए बिंदु को दे दिया जिसका उत्तर लाने के लिए बिंदु को ही कहा। बिंदु बद लिफाफे का रहस्य अवश्यम्स मझ गयी होगी किंतु मुझे उस बात को फिर पलटकर छिपाना पड़ा। परतु बात आखिर फिर कभी छिपकर भी नही छिपी रह सकी।

× × ×

लिफाफा निशा के पास पहुच गया।

निशा ने बड़ी आतुरता से लिफाफा देखा और उसके अदर क्या लिखा है इसके लिए उसके मन मे कई विचार उठे जब तक कि उसने उसे पढ़ न लिया।

पढ़कर उसे अपने विचारो से साम्यता लगी। शत-प्रतिशत उसके मन मे उठी समस्याए पत्र से मेल खाती होगी। उस पत्र को पढ़कर निशा मन-ही-मन प्रसन्न हुई, कभी झुझलाहट भी—यह क्या? और फिर उसी रात को बार-बार पढ़ा भी और सोते समय सिरहाने रख लिया, बार-बार उसे यही खयाल आया और सोते-सोते फिर उठकर उसे पढ़ा और फिर उसे

बहकर पुकारना शुरू कर दिया था। मीना उस समय लगभग पन्द्रह-सोलह की होगी। ऐसा मेरा अनुमान था। उसमें एक अजीब चंचलता थी, और कभी-कभी तो वह ऐसी शरारत कर बैठती थी कि मुझे उस पर प्यार भरा गुस्सा आ जाता था। एक दिन ऐसा ही हुआ कि उसने मेरे कमरे में आकर सारी कमीजें उलटकर रख दीं। जल्दी में मैं पहनकर किताबें लेकर निकल गया। और जिस समय मैं घर से निकला तो वह अपने दरवाजे पर खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी जैसे ही मैं उसके पास से निकला—खिलखिला-कर हंस पड़ी और बोली अरे अनु भैया कमीज उल्टी कब से पहनना शुरू कर दी है? मैंने सोचा मजाक कर रही होगी किन्तु उसने दुबारा कहा—और जब मैंने देखा तो ठीक ही था। मैं कमरे में पहुंचा और फौरन सीधी कर आया। संध्या को आकर देखा तो सभी कमीजें उलटी थीं। मैं मीना की चालाकी समझ गया और आते ही उसके कान उमेठे तो कहने लगी—'इसीलिए तो कहती हूं कि अनु भैया तुम पूरे फिलासफर हो।' अब भी कभी चिट्ठी आती है तो कहीं-न-कहीं यह शब्द अवश्य जोड़ देती है। इसके बाद तो एक दिन मीना की मां और पिता से भी मेरी पहचान हो गयी। मां उसकी बड़ी ही सीधी थी और उसके बाद से उन्होंने मुझे तो अनुराग बेटा कहकर पुकारना शुरू कर दिया। मुझे भी उनके हृदय में मेरे प्रति ममता का भाव दिखायी दिया और अपनी मां से दूर रहकर भी कभी उसकी कमी महसूस नहीं कर पाया। उनके पास बैठकर कई इधर-उधर की बातें सुना करता था। बिहारीलालजी भी सीधे-साधे व्यक्ति थे और 'कभी कुछ जरूरत हो तो कहना कुछ तकलीफ मत पाना' कहकर अपना बड़प्पन और प्यार जता दिया करते थे। इससे अधिक मैंने शायद ही उनसे कभी कोई बात की होगी पर इतना अवश्य था कि मैं इस सारे परिवार से इतना अधिक घुल-मिल गया था कि इसे अपना ही मानने लगा। आज भी इस परिवार से वैसे ही संबंध हैं, जब भी जाता हूं वहीं ठहरता हूं।

जितने दिन यानी कि दो वर्ष जब तक बी० ए० किया मुझे मीना का साथ मिलता रहा और मीना के व्यवहार से मैं अपने आप में बड़ा भाई का स्वरूप सदा देखता रहा। छोटी बहन के रूप में मीना मेरी हर तरह से देखभाल करती थी। वार-त्योहार तो मुझे खाना खिलाये बिना मीना को

कही एक छोटा-सा नकारात्मक उत्तर सुनकर टुकड़े-टुकड़े न हो जाय, बस इसी आशका से मैं···'

'लेकिन आप ऐसा क्यों सोचते हैं सर···ऐसी आशंकाएं आप क्यों करते है। आपको मेरी कसम आप अब कभी किसी को···'

और इस अधूरे वाक्य को छोड़कर निशा चली गयी। एक ऐसा उत्तर जो कोई उत्तर नही था, जिसमे कही ठहरने की ठौर नही थी, जिसमे आशा की किरण अवश्य थी किंतु मन को ढाढ़स नहीं था, जिसमें विश्वास खोजने का प्रयास करता था किंतु फिर भी दिलासा नही दे पाता था और यह सोचकर कि कही यह सब अभिनय तो नही डर-सा जाता था। मन में एक साथ कई विचार उठकर विचलित कर जाते थे परंतु फिर भी मैं अपने आपको बाह्य रूप से संभाले हुए आगे बढ़ता रहा।

बिंदु ने इस बीच कई बार मेरे मन की बात जानना चाही, लिफाफे का रहस्य बार-बार उसके मन मे प्रश्नवाचक चिह्न बनाता रहा परंतु मुझे हर बार निशा की दी हुई कसम याद आ जाती थी और आखिर मैं सारी बात को बिंदु के आखिरी प्रश्न पर पलट गया। और लिफाफे की बात को यूं बना बैठा—कि लिफाफे में कुछ नही था केवल निशा से यह जानना चाहा था कि वह अगर अपनी कुछ कविताएं दे दे तो कोई गीत-संग्रह छपवा दिया जाय। पता नही क्यो नही चाहती वह। कहती है मेरे गीत भी कोई गीत है ये तो यूं ही···। बिंदु के मन मे शक अवश्य रह गया कि मैं कोई बात छिपा गया हूं परंतु फिर भी उसने संतोष कर लिया केवल यह कहकर कि क्या इतनी-सी बात में वह गुस्सा कर रही थी, कौन बड़ी बात है इसमें···।

'बात तो कुछ नही थी बिंदुजी पर निशा नही चाहती तो कोई बात नही···खैर छोड़िये भी अब इन बातों को···।'

बिंदु मेरा आह भरा अंतिम वाक्य सुनकर मेरी ओर भोली नजरों से देखती हुई चली गयी।

× × ×

इन्हीं दिनों अरविंद और भाभी बड़ी मिन्नतों के बाद कुछ दिनों के लिए घूमने के लिए चले आये। अरविंद आज इतने दिनो की पहचान और

फुरसत नहीं मिलती।'

'अरे चलो भी भाभी ! ये तो सब यूं ही चलता है। आओ चाय तैयार हो गयी है पहले नाश्ता हो जाये फिर···और इसका क्या है दो रोज आप ठीक कर देंगी फिर वही ढर्रा···'

'तो फिर मेरी बात क्यू नहीं मान लेते···'

'वो तो सब ठीक है भाभी मान लूंगा। पहले चलो उधर अरविंद भाई टेबल पर बैठे-बैठे सोच रहे है कि कब प्याली होठों से लगे···। आज बड़े महीनों बाद मिले हैं तो चाय तो आपके हाथ से ही पियेंगे···'

चाय के तीन प्याले, जो खाली थे भाभीजी के गोरे-गोरे हाथों का स्पर्श पाकर झलक उठे। और अरविंद ने चाय का सिप लेते हुए पूछा—'सुनाओ जनु कैसी गुजर रही है ?'

'भाई जान तुम तो जानत हो अपने को किसी भी प्रकार की चिंता नही। यहा तक कि कभी घर की भी चिंता नहीं। बस कभी जब बीती बातें याद आ जाती है तो तुम जानते ही हो बेचैन हो उठता हूं। उस समय मुझसे नही रहा जाता। उन्हें भुलाने को या तो पिक्चर चला जाता हू या कभी दोस्तों के साथ घूमने निकल जाता हू। और कभी जब अकेला पड़ जाता हूं तो फिर गीत वह पढता है, कोई रुबाई इस मन की डाल पर नयी कलिका की तरह खिल उठती है, उससे थोड़ा भार हलका हो जाता है। तुम तो जानते हो किस मस्ती से कलकत्ता मे दो साल गुजारे है जिसे देखकर सब ईर्ष्या किया करते थे। वही रहने का ढग, वही मौज और मस्ती अपनी अब भी है अरविंद। यहा भी एक-दो दोस्त मिल गये है, और अक्सर उनके साथ घूमते-फिरते तुम्हारी याद आ जाती है। बेफिक्री अपनी किसी को अच्छी भी लगती है, और किसी-किसी को खलती भी है। और अक्सर समय यूनिवर्सिटी में ही बीतता है। कभी कोई यहां तक चला आता है। घर देख कह उठता है—आपका मकान तो 'बेचलर्स पेरेडाइज' है। सच अरविंद अकेले की भी जिंदगी का एक अजीब मजा है। न आटे-दाल की चिन्ता न साड़ी-ब्लाउजों की—क्यों भाभी ?'

भाभी अब तक बैठी-बैठी मेरी ओर देख-देखकर चाय का प्याला खत्म कर चुकी थी। प्याला रखते हुए बोली, 'यह तो तब मालूम पड़ेगा जब शादी

दोस्ती के बाद पहली बार घर आया था और भाभीजी—भला उनके चरण यहां कब पड़ते। उन्हें तो देखकर आज मेरा रोम-रोम फूला नहीं समा रहा था। अरविंद के आ जाने से आज दिल को बड़ी राहत मिली थी, आज उससे जी भरकर बातें होंगी। कई दिनों का इतिहास अब एक-दूसरे की जबान पर होगा। सुनेंगे सुनायेंगे और एक-दूसरे की मस्तियों में खो जायेंगे।

एक कुवारे का घर आज भाभीजी के चरण पड़ते ही घर बन गया था। हालांकि नौकर घर को काफी झाड-पोंछकर रखता था, सोफा सेट, मूढ़े, टेबलें आदि सब करीने से लगा रखी थीं किंतु फिर भी ऐसा लगता था मानो उनमें प्राण ही न हों। सबमें रंगीनी होते हुए भी एक उदासी छायी हुई थी। भाभीजी ने आते ही एक व्यग्य कस दिया—'प्रोफेसर जी सारे कमरों में उदासी-सी छाई हुई है, लगता है जैसे कोई इसमें रहता ही नहीं।'

'हां भाभीजी ठीक ही है—अकेला आदमी हो तो उदासी तो होगी ही। अकेला किससे बात करे जिससे उसकी खामोशी खतम हो जाय। दीवारों की मौनता और अकेले आदमी की मौनता मिलकर सारे वातावरण को चुप बनाये रखती है। थोड़ी देर रेडियो चलता है तो लगता है कोई रहता है और उसके बाद फिर वही शांति। नौकर रहता है मगर उससे क्या बात करूं। चाय के समय चाय-नाश्ता रख देता है और फिर वह भी अपनी धुन में खो जाता है, मैं अपनी किताबों में खो जाता हूं।'

'हां भाई प्रोफेसर जो है। किताबें ही तुम्हारी संगिनी हैं। और फिर कवि जो ठहरे—क्यों भाई अनु'—अरविंद बोल उठा।

भाभीजी अब तक बैडरूम में पहुंच चुकी थी और इधर-उधर टंगी हुई कमीजें, पतलूनें, एक खूटी पर टंगी ढेर सारी नकटाइयां, पास में पड़ी मेज पर अस्तव्यस्त किताबें मानो भाभी से शिकायत कर रही हों—क्या हमें यूं ही पड़े रहना चाहिए? क्या हमारे दिल नहीं कि हमें यूं ही लटका दिया, ऐसे-वैसे ही फेंक दिया? और गृहिणी को देखकर मानो अपना दर्द सुनाकर प्रसन्न हो रही हों—चलो अब कुछ दिन तो ठीक रहेंगी।

भाभीजी कमरे की विचित्रता देखकर मुझ पर रहम खाने लगी—'त्'''त् देवरजी को कितना काम करना पड़ता है कि कमीजें तक टागने की

'हां अरविंद यही तो इसान के वस की बात नही है। वह करना क्या चाहता है और हो क्या जाता है। अगर ऐसा ही होता तो फिर दुःखों का दरिया क्यों इसान के सीने पर हरहराता रहता। हर चीज अनपेक्षित होती है। हर घटना घट जाती है तो लगता है वह भी एक घटना थी। होनहार होकर ही रहती है। अरविंद मनुष्य जिंदगी के सफर मे कई रास्तों से होकर गुजरता है। कुछ रास्ते ऐसे भी होते है जिन्हें वह भूलकर भी नही भुला पाता, उन रास्तो की धूल उस पर इस तरह चढ़ जाती है कि हटाये नही हटती। और ये रास्ते सब अनजान होते है मगर एक दिन ऐसे जाने-पहचाने बन जाते है मानो चिरपरिचित हों और फिर उन्हे हम भी भुलाना नही चाहते···भले ही उन रास्तो पर चलकर मजिल न मिले—चाहे लुटना ही पड़े। तुम तो जानते हो अरविंद दिल अगर बुद्धि के हाथ में होता तो इस जहां मे प्यार-मुहब्बत नाम की कोई चीज नही होती।'

'तो सुनाइये देवरजी हम भी सुनें आपका वो नया किस्सा—नयी कहानी···?'

'सुनाऊंगा भाभी मगर अभी नही, अभी तो आप यही है कौन-सा आज ही जाना है ?'

अरविंद भावुकता के बहाव को रोकने के लिए बात का रुख पलटते हुए ड्राइंग रूम मे जा बैठा और अलबम निकालकर तस्वीरों की कहानियां सुनाने लगा। भाभीजी को तस्वीरें देखने का बड़ा शौक है सो अरविंद के हाथ से अलबम लेकर कहने लगी, 'लाइये हम देखेंगे। आप लोगो ने तो देख रखी हैं।'

इतने मे नौकर सामने आ खड़ा हुआ—'सा'ब आज क्या खाना बनाना है ?'

'आज तुम···'

'तुम बाजार जाकर सब्जियां ले आओ। खाना हम बनायेंगे', भाभीजी बीच में ही बोल उठीं। नौकर को उन्होंने अपनी पसंद की तरकारियों के नाम गिना दिये। अरविंद शशि की अलमस्ती और अपनेपन को देखता रहा। मैं अरविंद को देखता रहा, सोचता रहा—अरविंद कितना भाग्यशाली है जिसे शशि जैसी पत्नी मिल गयी। जो जहां चाहती है अपनापन पैदा कर

कर लोगे कि शादी का क्या मजा है। तुम्हारे भैया भी यही कहते थे मगर अब कभी पीहर तक मुझे भेजने का नाम नहीं लेते और भेजते है तो पीछे-पीछे वापस चले आने का खत भी डाल देते है। और फिर अकेले ही जिंदगी बीत जाय तो फिर दुनिया शादी ही क्यों करे। भैयाजी ये कुआरे रहने का दम सभी भरते हैं पहले-पहले'''। कोई लड़की पसंद आ गयी तो घड़ी भर चैन से नहीं बैठोगे।'

भाभीजी की यह बात मन में ऐसी बैठी कि निशा की तस्वीर बार-बार रखकर सोचने लगा कि औरतों को कोई कितना ही मूर्ख क्यों न कहे मगर मन की तह पा लेने में इन लोगों का कोई सानी नहीं। और कभी-कभी तो ऐसी मार्के की बात कहती हैं कि पुरुष के दिमाग में आ ही नहीं सकती। निशा को देखकर पाने की एक अभिलाषा भाभी की बात पर शत-प्रतिशत सही उतरती है। मैं भाभी की बात का उत्तर यही कहकर दे गया, 'भाभीजी यह तो कुदरत का दस्तूर है। पुरुष और नारी का मिलन तो स्वाभाविक है और न हो तो सृष्टि का ही अंत हो जाय। इसे तो स्वाभाविक आकर्षण ही मानना चाहिए।' इसी बीच अरविंद अपनी चाय की प्याली खत्म कर उसे प्लेट में रखते हुए उठ खड़ा हुआ और मेरी पीठ पर हाथ मारते हुए बोला, 'और बोलो प्यारे नया किस्सा क्या है?'

'नया किस्सा?' अरविंद का शायद उसी ओर संकेत होगा। मैंने कहा, 'नया किस्सा यधु तुम्हीं से शुरू हुआ है। यदि पिछली बार तुमसे बंबई न मिलता तो शायद एक लंबी कहानी शुरू न होती जीवन की। एक ऐसी कहानी जो शुरू हुई है मगर कभी खत्म नहीं होगी।'

'परंतु देवरजी कहानी तो शुरू होने के बाद खत्म होती है'—भाभीजी एक जिज्ञासा भरा प्रश्न कर बैठी।

'कहानी खत्म होती जरूर है, मगर पाठकों के लिए। कहानीकार के लिए तो हमेशा-हमेशा शुरू होती है। कहानीकार को कहानी का अंत तो इसलिए करना पड़ता है कि उसका दूसरा चरण उठ सके अन्यथा एक ही कहानी रह जाय और नयी कहानियां बनें ही नहीं।'

'लेकिन अनु तुमने यह जानते हुए भी कि कहानी का अंत नहीं होता कहानी शुरू क्यों की?'

फिर कहिये कैसी है सहेली···छोड़ने को जी नहीं करेगा।'

'तब तो आप बड़े खुशनसीब हैं।'

'नहीं तो क्या तुम अनु को बदनसीब समझती हो।'

अरविंद ने वकालत भरा उत्तर दे दिया।

'तो कब बुलाया है फिर आपने हमारे लिए सहेली को'—भाभीजी की बेताबी उससे मिलने को तीव्र हो गयी थी।

'बस आती ही होगी। दिन भर साथ रहियेगा फिर उसके। वो भी आपसे मिलने को कब से मचल रही है। कहती है मिसेज अरविंद से मिलने की बड़ी तमन्ना है।'

'तो क्या वह इनकी शादी में नहीं आयी थी?'

'यही तो बात है भाभी। अगर आती तो वो अब तक आपको कई बार यहां बुला लेती और आप अपनी सारी बचपन की फ्रेंड्स को भूल जाती···'

'खाना तैयार है सा'ब'—रामू ने बीच में ही थालियों की ओर ध्यान आकर्षित कर दिया।

हम जाकर डाइनिंग टेबल पर बैठ गये। रामू ने खाने का सामान, खाली प्लेटें, सब बड़ी सुंदरता से सजा दी थीं। मुझे रामू का पिछला साल भर का जीवन याद आ गया। जब मैं यहां आया था उस समय छः महीने में तीन नौकर बदल चुका था और फिर रामू को ढूंढा तो वह भी पूरा अनाड़ी था, और मैं चाहता था कोई सीधा सिखाया मिल जाये किंतु वह मुश्किल था। सो मैंने रामू को ही रख लिया था और धीरे-धीरे उसे सब तौर-तरीके सिखा दिये थे। चाय बनाना, टोस्ट फ्राय करना, आमलेट बनाना, खाना तैयार करना और उन्हें किस तरह टेबल पर रखना यह सब ट्रेनिंग उसे धीरे-धीरे दे दी थी। कई बार उससे गलती हो जाया करती थी—कभी टोस्ट जल भी जाते थे या सब्जियों में नमक भी ज्यादा गिर जाता था मगर संतोष करके सब कुछ सहन कर जाता था, इसी आशा से कि धीरे-धीरे सब सीख जायेगा और इसी बीच वह सब कुछ सीख गया। अब मुझे उसे कुछ बताने की जरूरत नहीं पड़ती। वह मेरा चाय का, खाने का समय जानता है और उसी समय वह सब चीजें तैयार करके दे देता है। टेबल पर सभी चीजें सजी देखकर मैं अपनी सफलता पर भी मुस्करा उठा। रामू

ती है। यही अपनापन तो नारी का मधुर भाव है जो उसे घर की लक्ष्मी नाये हुए है, इसीलिए तो उससे घर घर बन जाता है···मैं शशि भाभी की ओर देखकर अपनी पसंद पर ही मुस्करा उठा जिसमें मेरे अपने लिए एक मजबूरी थी।

× × ×

अरविंद ने यहां आने की खबर किसी को नहीं दी थी सिवाय मेरे। निशा के पिता उसे शादी के बाद कई बार घर आने को कह चुके थे और जब मैं यूनिवर्सिटी जाने को तैयार हुआ तो अरविंद बोल उठा, 'अनु, निशा को भी लौटते समय लेते आना, पढ़ने तो आयेगी ही। और उनके पिताजी को फोन कर देना नहीं तो कहेंगे यहा आया और अपने आने की खबर तक न दी।'

भाभीजी रसोईघर में खाना बनाने की तैयारियां कर रही थी। मैंने कहा, 'भाभीजी आज ऐसा खाना बनाइये कि बस मजा आ जाये···। मैं अभी दो-एक पीरियड लेकर चला आता हूं। आप तो खाना देर से खाती है न···' और अरविंद को पुरानी पत्र-पत्रिकाएं देकर मैं रवाना हो गया।

और जब एक बजे के करीब वापस लौटकर आया तब तक भाभीजी खाना बनाकर नहा-धोकर अपने बाल संवारने मे लगी थी और अरविंद ने बैठे-बैठे कई मैगजीनों के पन्ने पलट लिए थे। मैंने रामू (नौकर) से खाना लगाने को कहा और कपड़े उतारकर तहमत लगा अरविंद के पास जा बैठा।

'निशा को नही लाये ?'

'नही।'

'यह निशा कौन है ?' भाभीजी का प्रश्न था।

'आप हमेशा लिखती थी ना कि मेरे लिए कोई सहेली नहीं है सो निशा को ढूंढ लिया है। आपकी सहेली है।' मेरा उत्तर था।

'मैंने तुमसे एक बार कहा था न शशि कि निशा मेरी फ्रेंड है। पहले बाम्बे ही रहती थी और अब यहां आ गयी है वैसे वह यहीं की रहने वाली है और अब अनु की स्टूडेंट है'···अरविन्द ने दूसरा उत्तर दिया।

'तुम भी क्या हो अनु भैया। सहेली भी ढूंढी तो पार्ट-टाइम।'

'आपका मतलब मैं जानता हूं हुजूर मगर पहले उनसे मिल तो लीजिये

यहा आयी थी। आते ही उसने अपनी उसी आदत के अनुसार हाथ जोड़कर सबसे अभिवादन कर दिया।

'कब आये अरविंद ?'

'आओ निशा मैं सुबह से तुम्हें याद कर रहा था। कल, इवनिंग को ही आये थे। आने का कोई निश्चित नही था सो तुम्हें लिखा ही नही और न ही अनुराग को लिखा था। बस कल सुबह इरादा हुआ और इवनिंग प्लेन से चले आये। बहुत दिन हो गये थे मिले हुए सो…'

'ये है भाभीजी निशा और निशा ये हैं शशि भाभी। जिनसे तुम मिलने को उत्सुक थी।'

'नमस्ते भाभीजी' और निशा भाभी की बगल में जा बैठी। भाभीजी ने हाथ जोड़ते हुए निशा को अपने पास बिठा लिया और कहने लगी, 'आपका जिक्र कभी इन्होंने किया ही नहीं। आज सुबह ही बताया कि निशा हमारी फ्रेंड है और अनुराग तो तुम्हारी बड़ाई करते नही थकते है। कहते थे तुम्हारे लिए ऐसी सहेली ढूंढी है कि याद करोगी और अपनी बचपन की सब सहेलियों को भूल जाओगी।'

निशा झेंप-सी गयी फिर भी बोल उठी, 'ये तो यूं ही…।'

'और सुनाओ निशा कैसी चल रही है पढ़ाई ?'

'बस अभी तो कुछ खास नही ठीक-ठीक ही है।'

'और डैडी के क्या हाल हैं उन्हें कहना मैं आया हूं…'

'हां, उनको मालूम पड़ी तो कहने लगे चलो मैं भी चलता हूं। मैं ही उन्हें रोक आयी। कहा शाम को उन्हें लेकर ही आऊंगी। कहने लगे यहा क्यों नही आया। यहां खाने-वाने का इंतजाम कैसे होगा।'

'तो क्या उन्हें मालूम है अनुराग कि तुम अभी…'

'हां। एक दिन मेरी यहां क्लब में स्पीच थी। तभी उनसे दुबारा मुलाकात हुई थी तभी उन्हें मालूम पड़ गयी थी। उसी रोज वे तो अपने घर ही ले जाने वाले थे मगर मैं ही किसी तरह रुक गया।'

'और शशि भाभी बंबई कैसी लगी आपको, लखनऊ से…' निशा भाभी से प्रश्न कर बैठी।

'अब तो बंबई में रहना ही है। गर्मियों में तो बाप रे बंबई में आग

जैसा अनाड़ी अब परफेक्ट रसोइया और समझदार नौकर बन गया था।

भाभीजी ने अपने ही हाथ से परोसना शुरू कर दिया। आलू मटर और पनीर की सब्जी, पूरियां, रायता, फ्रूटजेली। आज बड़े दिनों बाद एक साथ इतनी सारी चीजें खाने को मिली थी वरना सब्जी, चपाती, दाल-भात और सलाद से ही काम चला लेता था। 'कमाल कर दिया भाभीजी !'

'क्या कमाल कर दिया ?'

'यही कि क्या लज्जतदार खाना बना है। अहा ! अगर रोज ऐसा खाना मिले तो क्या कहने···क्यों अरविंद···?'

'इसीलिए तो कहता हूं कि जल्दी से कोई···'

'अरे यार तुम भी क्या हो ? मैं तो आजकल पूरा भाग्यवादी बन गया हूं, जो किस्मत में होगा वही होगा···क्यों भाभीजी ? मेरे सोचने से क्या होगा ? अगर भाग्य में नही है तो लाख कोशिश करने पर भी वह सुख नही मिल सकता। दिल के अरमान कभी पूरे नही हो सकते। और मन-पसंद चीज मिलने को होगी तो किसी के रोके नही रुकेगी।'

'मगर तुम तो कर्म में विश्वास करते थे अनुराग ?'

'वो तो अब भी करता हूं। कर्म ही को मानता हूं। भाग्य भी कर्म करने को ही कहता है किंतु कर्म का फल तो भाग्य के ही अधीन है। अरविंद अगर इस जिंदगी का कोई अच्छा हमसफर मिल गया तो सच कहता हूं इस जिंदगी को सारी दुनिया के लिए लुटा दूंगा। मेरी इच्छा जिस दिन पूरी हो जायेगी उस दिन मुझ-सा सुखी कौन होगा···'

'आप तो काल्पनिक हैं।' भाभीजी ने बड़ी देर बाद एक विश्लेषणात्मक वाक्य कह डाला।

'कल्पना में ही सत्य ढूंढने की कोशिश करता हू भाभीजी। काल्पनिक सत्य कितना सुंदर होता है। कल्पना कितनी मधुर होती है भले ही वह न मिलने पर पीड़ा का सृजन क्यों न करे···मगर उसकी कल्पना ही सुख-दायी होती है और सच पूछो तो अभावों की कल्पना का संयोग अमर बना देता है।'

खाना खत्म हो चुका था। हाथ धोकर हम ड्राइंग रूम में जा बैठे। घड़ी में दो ही बजे थे कि निशा का वहां आना हुआ। आज पहली बार

होता है।'

'अच्छा भाई जैसा तुम कहो वैसा। लो पहले आरेंज जूस पी लिया जाय।'

रामू बड़ी फुर्ती से तैयार कर लाया था। और सर्विस भी खुद ही ने कर दी थी...

सबने गिलास लेकर होठों से लगा लिए। सब चुप थे थोड़ी देर—मानो सारी बातें खत्म हो गयी हों।

× × ×

निशा और भाभी थोड़ी ही देर में एक-दूसरे के काफी निकट आ गयी। औरतें जितनी जल्दी आपस में घुलमिल जाती हैं उतनी जल्दी आदमी नहीं। इनके इतने शीघ्र मित्र बन जाने में अवश्य कोई रहस्य है। शायद इसके पीछे नारी हृदय की कोमलता हो परंतु कोई-न-कोई बात है जरूर।

भाभी को और निशा को देखकर मुझे लगा नारी-नारी के बीच अहं पुरुष से कम होता है और मेरे सामने एक चित्र उभर आया।

उन्हीं दिनों मेरी मित्रता एक और व्यक्ति से हो गयी थी। विशिष्ट व्यक्ति से अच्छी ऊपरी मुलाकात हुई जो रसिक भी थे। अपनी बात जमाना भी चाहते थे और कभी घबराकर दुबक भी जाते थे। नाम उनका था रमी भाई चमचमवालिया। शायद यह नाम आश्चर्यजनक लगे—लगना भी चाहिए क्योंकि नामों की व्युत्पत्ति बड़ी ही रोचक होती है। दरअसल उनकी बंगाली मिठाइयों की दुकान है—और चमचमगप्पे सारे शहर में यदि कहीं बनते हैं तो रमी भाई के यहां। इसी से उनका सरनेम चमचम-वालिया हो गया। रमी भाई खुद दुकान नहीं करते—खुद तो समाजशास्त्र के अध्येता हैं मगर इससे क्या नाम थोड़े ही पलट सकता है मगर इतना जरूर था कि फटे दूध के चमचमों की तरह ही रमी भाई का फटा हुआ मन था जो लगता तो अच्छा था मगर वह तभी अच्छा लगता था जब उस पर रस डाल दिया जाये।

रमी भाई यहीं के पास रहने वाले हैं इसलिए गली के सारे प्राणी भी उन्हें जानते हैं—यानी कि यह उनकी प्रसिद्धि है। जहां भी देखो वे मिल जायेंगे—सड़क पर, पान की दुकान पर, रेस्तरां में या किसी मजमे वाले

बरसती है और फिर गर्मियों में वहां रहते ही नहीं। पिछली बार कश्मीर चले गये थे। उसके पहले मसूरी।'

'सच भाभी मुझे तो बंबई बिलकुल अच्छी नहीं लगती। जहां देखो भीड़-भड़क्का। चारों तरफ मोटरें, ऊंचे-ऊंचे मकान, हवा का नाम नहीं। हर चीज में बनावटीपन। मैं तो थोड़े ही दिन में घबरा उठती हूं। डैडी नहीं मानते हैं तो जाना पड़ता है। लखनऊ एक बार मैं गयी थी बड़ा अच्छा लगा हजरतगंज, अमीनाबाद और गोमती का किनारा। ज्यादा दिन नहीं ठहरे सिर्फ तीन रोज रुके थे मगर उसे देखने को फिर जी चाहता है···'

'अबकी बार आप चलिये मेरे साथ', अरविंद की ओर भाभी देखते हुए बोलीं, 'क्यों जी···'

'अगर निशा तैयार हो जाये तो अबकी बार चलो ससुराल ही···उसमें क्या है। अनुराग को भी ले लेंगे। अच्छी कंपनी रहेगी घूमने-फिरने को—क्यों अनुराग ?'

'अगर फुर्सत मिल गयी तो जरूर चलेंगे। भला भाभी के घर जाने का कब काम पड़ेगा।'

'क्यों निशा चलोगी न ?'

'मेरी हां और ना से क्या होता है। डैडी के ऊपर है सारा प्रोग्राम। जहां भी गर्मियों में जाते हैं, मुझे साथ ले जाने को पीछे पड़े रहते हैं। पिछली बार न चाहने पर भी मैसूर, महाबलेश्वरम्, सब जगह घुमाते फिरे। कभी मेरी पसंद का खयाल ही नहीं करते।'

'इस बार मैं बात करूंगा अंकल से।'

'सा'ब पानी लाऊं'—रामू ने सोचा खाना खाये काफी देर हो गयी है सो पानी की पूछ लूं।

'पानी नहीं रामू। ऐसा करो आरेंज जूस तैयार कर लो···और देखो फिर साढ़े चार बजे के लगभग चाय और नाश्ता।'

'अच्छा सा'ब।'

'मुझे नहीं लगता कि वे हां करेंगे और फिर प्रोफेसर जो को भी तो फुर्सत होनी चाहिए।'

'इसको तो मैं जबरदस्ती ले चलूंगा। अनुराग के मना करने से क्या

हां कभी-कभी टेपरेकार्ड किये हुए गीत अवश्य कॉलेज में सुनने को मिले थे।' अरविंद ने फिर अपनी इच्छा को मेरे सामने रखा। और अरविंद के आग्रह को टाले बिना मैं डायरी लेकर बैठ ही गया। और कभी मैं कभी भाभीजी कभी अरविंद···दौर चलता ही रहा।

शशि भाभी ने पहली बार अनुराग को सुना था और सुनते ही उनकी प्रशंसा ने विशेषणों की बरसात कर दी थी। अनुराग लिखता ही नहीं गाता है—गाता ही नहीं—बहुत अच्छा गाता है। जिस लहजे में वह पढ़ता है वह किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। कुदरत ने उसे कई अनोखी चीजें बख्शी हैं यानी कि उसमें एक अनोखा और वास्तविक टेलेंट है। हर क्षेत्र में उसे ज्ञान है—जहां बैठता है, वहां अपनी गहरी छाप लगा देता है। शशि भाभीजी आज उसकी कविता और गीतों को सुनकर, उसी के मुंह से, गदगद हो गयी थीं। अनुराग ने अपनी नवीनतम रुबाइयां सुनायी थीं···तो भाभी पूछ बैठीं, 'अब तक कितनी रचनाएं लिख ली हैं···'

'कुछ ज्यादा नहीं यही लगभग डेढ़ सौ गीत लिखे होंगे···'

'और रुबाइयां ?···'

'शेर और रुबाइयां करीबन तीन सौ···'

'ये तो बहुत हैं पर इतना तुम्हें लिखने का समय कब मिलता है ? आप यूनिवर्सिटी रहते हैं दिन भर···फिर खुद भी पढ़ते हैं, पढ़ाने के लिए रिफ्रेश भी करते हैं—स्पोर्ट्स में भी जाते हैं···।'

'दरअसल बात ये है भाभीजी जब रात की खामोशियों में चांद चुपके-चुपके झांकता है और चांदनी खिड़कियों को पार कर पास आ लेटती है तो सीने में एक मीठी-सी कसक मधुर कल्पना बनकर बरस पड़ती है, एक खुमारी तन-मन में फूटकर मादक शराब बन जाती है···फिर मैं होता हूं··· और रात की नीरवता में मेरी कलम होती है। तरन्नुम फूट पड़ती है और कोरे कागज अपनी गोद में गीतों के शिशु को बसा लेते हैं।'

निशा अनुराग की ओर एक टकटकी से देख रही थी···अनुराग एक मादकता में सब कुछ भूलकर सुनाता जा रहा था गीतों की दास्तान··· भाभीजी अनुराग की भावुकता में खो गयी थीं और जैसे ही अनुराग ने बात खत्म की तो नजरें निशा पर जा टिकीं···निशा घड़ी भर तो मौन

पास में। आखिर इतनी सब जगह क्यू ? इसलिए कि वे समाजशास्त्री है—समाज की हर चिंता उन्हें लगी रहती है—कहा क्या हो रहा है इसकी खबर उनके पास रहती है। कौन नया आदमी आया है, कौन लड़की शहर से भागी है, कौन किससे मोहब्बत करता है, शहर मे कहा चोरी हुई है, किसके कितने बच्चे है, किसे फेमिली प्लानिंग के लिए कान्ट्रसेटिव गोलियां देनी है—इन सबकी खबर उनके पास है—इसीलिए वे समाजशास्त्री है। और अपने इस विस्तृत ज्ञान को वे जगह-जगह फटकारते फिरते है और सब पर रौब जमाना चाहते है। कभी कुछ गलत बक भी देते है तो माफी माग लेते है, इसलिए कि डरते है—क्योंकि समाजशास्त्री है। वे शादी से लेकर डाइवोर्स तक करवाते है क्योंकि समाजशास्त्री है, वे झगड़ों से लेकर सुलह तक करवाते हैं, मच्छर से लेकर नेता तक, पाताल से आसमान तक वे सब जगह अपना शास्त्र लिए घूमते है, क्योंकि समाजशास्त्री है—वे चाहते है कोई उन्हें समाजशास्त्री कहे—जैसा कि वे अपने को समझते है मगर उनका अहं पनप नही पाता। दो फुट कभी चार फुट उछल-उछलकर वापस उसी जगह आ जाता है—उन्हें जहान भर की चिंता है—इसी चिंता मे वे दुबले है—आंखों में मनहूसियत आ गयी है और बालों में सफेदी—आखिर क्यों न हो वे समाजशास्त्री हैं। इसका उन्हे अभिमान है !

तो रमी भाई की तरह कई व्यक्ति है जो अपने मे फूले रहते है—औरतों में यह बात नहीं होती···होती भी है तो घड़ी भर मे उड़ जाती है···रमी भाई से इतने दिन हुए मिले मगर कभी घुल-मिल नही सके और घड़ी भर की मुलाकात में निशा और शशि भाभी इस तरह हो गये जैसे बरसों की पहचान हो।

मेरी आंखों के सामने से जैसे ही रमी भाई का परदा हटा—अरविंद बोल उठा, 'आज कोई नयी चीज सुनाओ यार—बहुत दिन हो गये है···'

'जरा हम भी तो सुनें आप किस तरह सुनाते हैं'—शशि भाभी ने आखिरी घूट पीते हुए कहा···। 'तुमने तो सुनी होगी निशाजी···' भाभी ने निशा से प्रश्न कर लिया···

'कहा भाभीजी कभी कोई मौका ही नहीं आया···हां पढ़ी जरूर है।

उस पर पड़ी दो शबनम की बूंदे आंखे बनकर सारे जग को देख रही हों और अपनी चचलता मे सारे जग को बांध रही हों। पलकों में बंधी एक अनंत असीम गहराई जिसमे खो जाने को जी चाहे और थाह चाहने पर न मिले, होंठों का मिठास मानो अमृत की अमरता को लजाने को आया हो और उनसे हुई शब्दों की बरसात आदि कवि की कविता का अंतरंग शृंगार हो। प्रणय की सुहानी मूरत जिसकी कोख मे जीवन के हर सुनहरे सांझ और प्रातः समाये हों, जिसकी मद शीतल छांह में जीवन को विसार देने की चाह समायी हो उस कुदरत की हसीन कलाकृति को एक बार पाकर एक अनबुझी कामना की ज्योति जली थी, खुदा भी पशेमान था। सुख की मादक घड़िया उस सुहाने सफर को बीच मे ही छोड़कर चली गयी। मेरे जीवन का प्यार दुनिया की गमगीन राहों पर आवारा बन गया। एक हमदम, एक जीवन का साथ राह मे छूट गया। फूल अपनी गंध अभी पहचान भी नहीं पाया था कि चिनार हृदय के कोमल कगारो पर खड़ा आसू बहाता रहा और एक दिन एक सुहानी रात ने आकर अपना रूप और शृंगार उन आंसुओं पर लुटा दिया। भोर की पहली किरण के साथ मेरे प्यार ने देखा—एक जीवन की निशा उसके आसुओं को अपने दामन मे समेटे अर्पण लिए खड़ी है। उस निशा के दामन में आसू असख्य तारों की तरह टिमटिमा रहे हैं और उसका मुखड़ा चाद से भी सलोना उसके सामने खड़ा है एक प्रकाश लिए—जीवन की चादनी लिए। यमुना के कच्चे किनारों पर खड़े ताज-महल की तरह हृदय के भावुक कगारों पर प्यार का फिर एक ताजमहल बनने लगा···एक याद को सहारा देने के लिए···संगमरमरीन पत्थर को तराशकर प्रेम का पथिक महल का निर्माण करने लगा···।

× × ×

मै घड़ी भर के लिए खो गया और क्षण भर मे अपने जीवन के पुराने कितने ही पृष्ठ पढ़ डाले और आज की मंजिल तक आ गया जहां इस पल खड़ा हू, जहा उसको एक ठौर मिली थी और जो मजिल आज उसके द्वारे आ पहुची है। उसने सबको एक साथ देखा—स्मृतियों को याद कर मन में रोया और होंठों पर वही मुस्कान बिखेरता रहा।

'तो अनुजी अब कोई एकाध संग्रह-वंग्रह छपा डालो न'—भाभी ने

बनी रही और फिर मुस्कराकर नजरें झुका बैठी···। मैं कहते-कहते बहुत भावुक हो चला था···अतीत की यादें भावुकता के झोंके से मचल उठीं।

× × ×

उन दिनों जब मैं अरविंद के साथ कलकत्ता पढ़ा करता था भाषा सीखने के शौक में बंगाली सीखने लगा था। अरविंद के अंकल के पड़ोस में एक बड़ा ही अच्छा बंगाली परिवार रहा करता था। सी०के० दासगुप्ता उनका नाम था और वे वहां के बड़े डॉक्टर थे। कई पीढ़ियों से वे वहीं रहा करते थे सो उनके पास अब अच्छी-खासी जायदाद भी थी। अरविंद के अंकल चंद्रकुमारजी की उनसे अच्छी दोस्ती थी। प्रायः दोनों घरों का आपसी उठना-बैठना था। मैं और अरविंद भी उनके यहां जाया करते थे। और डॉ० दासगुप्ता की लड़कियां दीप्ति और दीपाली से वे बंगाली सीखा करते थे। मेरी उनसे अच्छी जान-पहचान हो गयी थी—इतनी अच्छी कि कुछ ही दिनों में वह घनिष्ठता में बदल गयी थी। मैं जब तक रहा दीपाली से प्रायः रोज ही मिलता था। दीपाली भी उसी क्लास में थी मगर वह गर्ल्स कॉलिज में जाती थी साथ ही संगीत और नृत्य की कला भी प्राप्त कर रही थी। वीणा बहुत अच्छी बजाती थी—जिसे कई बार हमने सुना था। इन्हीं पलों में यह विचार मेरे मन में बार-बार आता था कि दीपाली क्यों चाहने लगी है और मुझे लगता दीपाली में एक ऐसा आकर्षण है जिसमें मैं बंध गया हूं। इस समय तक मैं उस उम्र तक भी पहुंच गया था और सोचने लगा था पुरुष के जीवन में नारी का साहचर्य एक प्रकृति का नियम है और इसीलिए वह दीपाली की ओर आकर्षित हुआ है। इसके अलावा फिर उसे अपनी भावनाओं का एक सुकोमल नीड़ भी मिल गया था। लहर का झोंका पाकर नाव अपने आप आगे बढ़ती है और लहर पवन को पाकर अपने आप मचल उठती है।

निशा की ओर भी वह इसी आकर्षण से खिंचा था। निशा को देखकर अपने अभावों का एक आकार मिल गया था। दीपाली का अभाव दूर हो गया था।

वह वास्तव में बड़ी ही सलोनी थी—मधुर-सी मुखाकृति जैसे कोई हसीन गुलाब प्रात:काल के समीरण के झोंकों को पाकर खिल उठा हो और

सुनाया जिसमें कि वह फिल्म में गाया गया था।

मैं अरविन्द की किस्मत की प्रशसा करने लगा जो उसे एक सुशिक्षित, सुदर, सुडौल और हर महफिल में अपने को फिट करने वाली पत्नी मिली जो कई क्षेत्रों में निपुण भी है। वास्तव में कला से जीवन में कितना निखार आ जाता है। पत्नी के सुमधुर कंठ से घर की चारदीवारी भी महकने लगती है। और जीवन के आधे दु:ख-दर्द गीत में ही बह जाते हैं। और उन गीतों में संगीत मिलकर जिंदगी में दो दिलों की दीवानगी का महल बना देता है।

साढ़े चार बज गये थे अतः रामू को खयाल था कि चाय तैयार करनी है। मैं रामू की बढ़ती हुई प्रगति और काम करने के तरीकों को देखकर सोचता था कि अगर मेहनत की जाय और धैर्य से काम लिया जाय तो कभी पक्के घड़े पर भी रंग चढ़ सकता है। रामू अब एक समझदार, एकदम शहरी आदमी बन गया था। उसमें हर काम करने का अदब आ गया था और अब उसे छोड़ने की मुझे कभी इच्छा नहीं होती थी। उसके लिए अब पूरी ड्रेस भी सिलवा दी थी और इसे पहनकर रामू अपने आपको भी किसी सा'ब से कम महसूस नहीं करता था और जब कोई उसका मिलने वाला आता तो यही कहता था रामू तू तो एकदम बदल गया है। तेरा रंग रूप और अकल सब एक साथ बदल गये। रामू खुश होता था अपनी तरक्की की बातें सुनकर···।

यह सब वातावरण का परिणाम होता है। यदि व्यक्ति अच्छे वातावरण में रहे, उच्च वर्ग में रहे, अच्छे लोगों के साथ रहे तो अवश्य ही उसमें परिवर्तन हो जाता है, सौंदर्यबोध जागृत हो जाता है।

'चाय ले आऊं सा'ब···' रामू ने आकर पूछा।

मैंने अरविंद की ओर देखा और हां कर दी···। अरविंद की चाय का यही समय था। मेरा तो कोई निश्चित समय नहीं अतः तलब नहीं थी।

'सा'ब यहीं ले आऊं या ड्राईंग रूम में···?'

मैंने देखा यहीं बैठे थे अतः चाय पीने में अधिक लुत्फ आयेगा। 'यहीं ले आओ रामू।'

'अच्छा सा'ब !' रामू रसोईघर में चला गया। रूप-सागर की हल्की-

निशा की ओर आंखें फेरते हुए कहा—'क्यों निशा जी ?'

निशा मानो भाभी की गवाह हो। 'हां मैंने भी कई बार कहा है मगर भाभीजी मैं किस अधिकार से कहूं···।' निशा कुछ उत्तेजित-सी हो गयी है और वह अपने पैर के अंगूठे से जमीन दबाने लगी···।

'बात ये है भाभीजी आजकल प्रकाशक कहां मिलते हैं। और फिर नये लेखक के नाम से तो ये ऐसे भड़कते है जैसे अटपटी भैंस। और अपने पास इतनी फुर्सत ही कहा है कि पब्लिशर्स के रोज चक्कर लगाऊं। हां निशा के कहने पर कई बार विचार अवश्य किया और सच पूछिये तो पांडुलिपियां भी इन्ही के कहने से तैयार की हैं···'

'पैर छोड़िये भाभीजी यह तो सब धीरे-धीरे हो ही जायेगा मगर अब आप कोई सुना दीजिये या तो आपकी पसंद का पहले या फिर हमारी पसंद का···।'

भाभीजी अरविंद ने ही कहा था कि बहुत अच्छा गाती है। यू कभी सुनने का मौका नही मिला था अतः सुनने की बहुत इच्छा थी।' परंतु भाभीजी फर्माइश करने पर लाजवन्ती की तरह लजा जाती हैं और यू गुन-गुनाया करती है। गुनगुनाते हुए अवश्य उन्हें आज सुबह ही सुना था। मेरी फर्माइश पर भी उन्होंने टालना शुरू किया मगर मैं यू ही उन्हें छोड़ देने वाला नही था।

'हां भाभीजी सुनाइये ना···फिर भला ऐसा सुहाना मौका कब आयेगा···।'

अरविंद देवर-भाभी की अनुहार को सुनता रहा। उसको ऐसे ही बैठे-बैठे सुनने में कई बार आनंद आता है···। भाभीजी कॉलेज मे पढ़ी हैं इसलिए उन्हें गाने का काफी शौक है यह तो तब ही मालूम पड़ गया था जब अरविंद की इनसे सगाई होने वाली थी अतः उनके लिए यह कहना तो असंभव ही था कि वे गाना नही जानती। और उन्होंने पहले हमारी ही फर्माइश सुनाना ज्याद पसंद किया जिससे कि एक मे ही काम निबट जायें। मुझे कई फिल्मी गीत अत्यंत ही पसद हैं इसलिए नही कि उनमें केवल एक मधुर धुन है बल्कि साहित्यिकता भी उनमे भरी हुई है। भाभीजी ने पसंद पर 'बरखा बहार आयी' गीत उसी तर्ज में उसी मिठास के साथ गाकर

जाकर देखा—वही था।

राघू के साथ ड्राइवर को चाय भिजवाकर कहा···'आपको जाना है निशा···।'

'शायद कुछ काम होगा इसलिए बुलाने आया होगा···आप ठहरिये मैं पूछती हूं।'

निशा के यहां कुछ मिलने वाले आये थे इसलिए थोड़ी देर के लिए जाना था। निशा ने कहा, 'पिताजी ने कहलवाया है कि शाम का डिनर घर पर ही होगा।'

अरविंद ने मुझसे बिना पूछे ही कह दिया, 'ऐसा करो निशा अभी तो तुम जा रही हो नहीं तो आज का डिनर तुम भी यहीं लेती और कल फिर हम लोग वहां आ जाते—क्यों अनुराग ?'

'हां यही ठीक रहेगा···।'

'लेकिन पिताजी ने कहलवाया है तो उनको आपका प्रोग्राम कहना तो पड़ेगा न···।'

'उसमें क्या है। ड्राइवर के हाथ कहलवा देते हैं।'

'परंतु जाना तो मुझे भी है। कुछ फ्रेंडस आयी हुई हैं। फिर जैसा भी होगा मैं कहलवा दूंगी और अगर मैं डिनर पर न आ सकूं आठ तक तो फिर···इंतजार न करना।'

मुझे लगा शायद निशा नहीं आयेगी···।

'लेकिन आप आना जरूर नहीं तो कुछ मजा नहीं आयेगा।'

'मैं कोशिश करूंगी भाभीजी नहीं तो कल जरूर···' और निशा चली गयी।'

× × ×

दूसरे दिन निशा के पिताजी ने फोन पर डिनर पर आने का निमंत्रण आग्रह पूर्ण शब्दों में दिया था और अरविंद को एक लेटर भी भिजवा दिया था।

शाम को छः बजे ही ड्राइवर लेने आ गया था। हम तैयार हुए और रवाना हो गये।

निशा और निशा के पिताजी बाहर लान में खड़े हुए हमारा इंतजार

हल्की भनक कान में आने लगी और चाय की भीनी-भीनी सुगंध हवा में उड़ रही थी।

दो मिनट के मौन को भाभीजी ने तोड़ा, 'निशाजी यहां देखने को क्या-क्या चीजें है ?'

मजाक करते हुए मैंने कहा, 'देखने को क्या नही है थियेटर है···बड़ी-बड़ी दुकाने है, चलते-फिरते आदमी है और···और···क्यों भाई अरविंद पिक्चर चलने का इरादा है···।'

अरविंद कुछ उत्तर देता इसके पहले ही भाभीजी ने अपना इरादा पेश किया, 'आप लोगों को जाना हो तो जाइये, हम तो घूमने जायेगे। यहां कोई गारडन तो होगा न ?'

'हां बंबई की तरह बहुत बड़ा विक्टोरिया गारडन है। घना जंगल, एकदम छांहदार···।'

इतने में रामू चाय लेकर आ गया, 'अच्छा जी चलो पहले चाय पी ली जाय उसके बाद सोचेंगे।'

निशा ने मेज अपने पास खीचकर अलग-अलग कप रखे और केतली की चाय को हिलाने लगी। मैं सोच रहा था चाय के साथ कुछ नाश्ता होता तो अच्छा रहता। रामू रसोईघर में कुछ कर रहा था। मैंने आवाज दी तो वह दूसरी ट्रे हाथ मे लिए आ गया।

सैंडविच, तले हुए काजू, चेवड़ा और बिस्कीट···। मैं देखकर प्रसन्न हो गया। रामू ने इज्जत पर और भी मुलंमा चढ़ा दिया। आज निशा पहली बार आयी थी और उसका स्वागत खाली चाय से···।

'क्या सा'ब ?' रामू ने मेरे प्रश्न भरे बुलावे पर पूछा।

'कुछ नही बस नाश्ते के लिए कहना था···।'

निशा ने अब तक प्यालो मे शकर डाल दी थी···और केतली से चाय डालने वाली थी कि मैंने कहा ठहरो निशा पहले थोड़ा खा लें। निशा ने केतली रखकर टिकोजी ढंक दी। सैंडविचेज बहुत ही अच्छी बनी थी बाकी तो सब बाजार से लायी गयी चीजें थी।

चाय का आखिरी सिप और घड़ी के पाच···। और बाहर कार का हार्न···। शायद निशा को लेने ड्राइवर कार लेकर आ गया था। बाहर

'कांफिलिक्ट के बिना विकास भी नहीं होता। अगर नयी पीढ़ी विकास नहीं करती तो वह नयी पीढ़ी है ही नहीं। यह निश्चित है कई बार इस संघर्ष में हमें अपनों के साथ विचार में भिन्नता रखनी पड़ती है और कई जगह असमञ्ज के कारण दुर्भावनाएं भी पैदा हो जाती हैं लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए। विचारों की भिन्नता आपसी संबंधों को तोड़े तो यह हमारी बुद्धि की कमजोरी होगी।' अरविंद कह उठा।

'लेकिन अरविंद बड़ों का अपना दायरा होता है। उस दायरे को खंडित करना छोटों को ठीक नहीं मालूम देता। बड़े आखिर समाज के संरक्षक होते हैं।' बात व्यापार से समाज पर खिसक आयी।

'परंतु दायरों का स्वरूप फ्लेक्सिबल होना चाहिए। विचारों के दायरे, अधिकारों की सीमाएं परिस्थितियों के अनुसार बनती-बदलती रहती हैं। हम किन्हीं ठोस मान्यताओं को लेकर स्थिर नहीं रह सकते। कभी-कभी स्थिरता अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के आगे। हवा के झोंकों के प्रवाह में वृक्ष टूटकर गिर जाता है और नन्हां पौधा झुक जाता है, प्रवाह बह जाता है और फिर से वह पौधा अपना प्रभुत्व जमा लेता है। हो सकता है हमारे विचारों से किसी के हृदय पर चोट लगे—किसी की संवेदना पर आघात पहुंचे···'

'प्रोफेसर यह सब तो साहित्य की बात है और मैं इसकी कदर भी करता हूं। लेकिन राजनीति में ये सब बातें निरर्थक हैं—इनका कोई मूल्य नहीं।'

'यही कारण है कि हम अपने देश को आजादी के बाद भी वास्तव में आजाद नहीं बना सके। आज हर व्यक्ति भौतिक रूप से समृद्ध बनना चाहता है। अगर यही आज हम मानव-मानव का मूल्य करते हुए कदम उठायें तो समाज में अत्याचार, लूट, भुखमरी, बेईमानी, हिंसा सभी बुराइयां नष्ट हो जायेंगी। हम एक-दूसरे के आज बाह्य रूप से आत्मीय बने हुए हैं।'

नौकर ने आकर शरबत के गिलास रखे···।

निशा ने उठकर दो गिलास अरविंद और अनुराग की ओर बढ़ाये। अनुराग ने गिलास कामथ अंकलजी की ओर बढ़ाया···।

कर रहे थे।

निशा के पिताजी ने आत्मीयता के भाव से क्रोध दर्शाते हुए अरविंद से हाथ मिलाया, 'ओर आइये प्रोफेसर आज तो आपने भी बड़ी मेहरबानी की'''। अगर अरविंद नहीं होता तो आपका आना शायद ही सम्भव होता।'

'अनुराग इधर-उधर कम ही जाता है—' अरविंद ने मेरी वकालत कर दी, 'कहीं पर भी आने जाने में इन्हें बड़ी ही हिचक महसूस होती है। वैसे बोलने में माहिर है और अपने विषय के अच्छे ज्ञाता'''।'

'कोई शक नहीं'''मैंने जनाब का एक स्पीच सुना था तब ही इनकी आरेटरी का खयाल आ गया था।'

लान में कई कुर्सियां पड़ी हुई थी। मौसम बहुत ही अच्छा था इसलिए कुछ देर वहीं बैठने को कुर्सियां अपनी-अपनी ओर खींच ली। निशा और शशि भाभी भी आकर पास ही बैठ गयी। उनकी अपनी बातें चल रही थीं।

'और अरविंद क्या चल रहा है बंबई में ?' निशा के पिताजी ने पूछा।

'बिजनेस इस बार बहुत अच्छा रहा। न्यूयार्क के एक्सपोर्ट का लाइसेंस मिल जाने से प्राफिट भी सेटिसफैक्ट्री था। और तो आप जानते ही हैं यही रफ्तार है। मुझे कोई प्रापर्टी से लगाव नही है। बस खर्च जितना निकल जाय यही काफी है। और फिर ज्यादा कमा कर करना भी क्या है। आफ्टर आल कंट्री हमारा ही है। ज्यादा मुनाफा कमाने से गरीबों पर कितना टैक्स पड़ता है। सरकार हमारी है हम सरकार के हैं फिर किससे बदला लेना।'

'यह तो ठीक है लेकिन फिर भी बिजनेस बिजनेस ही है। अगर प्राफिट नहीं होगा तो फिर इतनी पूंजी लगाने का क्या मतलब, क्यों प्रोफेसर साह्ब'''?'

निशा का ध्यान अंतिम शब्द पर खिंचकर मेरी ओर हो गया।

'सो तो हर व्यापारी सोचता है। लेकिन अरविंद का भी खयाल गलत नहीं है।'

'ओह आप भी पूरे आइडिलिस्ट है। हर नयी पीढ़ी नये आदर्श लेकर आती है। उन्हें पुरानों के साथ कान्फिलिक्ट में मजा आता है।'

जाया करो···क्यों बहू रानी और प्रोफेसर साहब आप भी···'

'आप कहेंगी तो जरूर आ जायेंगे लेकिन···घर पर भी कोई तकलीफ नहीं है। रामू है वह अब काफी एक्सपर्ट हो गया है। अब तो वह सब प्रकार का भोजन बना लेता है···'

'नौकर आखिर नौकर ही होते हैं।' वे अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर बीच में ही बोल उठीं।

'और अरविंद भाईजान के क्या हाल हैं, और भाभीजी के···' अंकल ने बीच में ही प्रश्न किया।

'बिलकुल ठीक हैं जी। कभी-कभी माताजी की तबीयत कुछ खराब हो जाती है।'

रात ढल गयी थी। हल्की-सी ठंडी हवा चलने लगी थी। तारे टिमटिमा रहे थे और तिर्यक चांद की हल्की-सी रोशनी आसमान में फैली हुई थी। घड़ी ने आठ के टकोरे मारकर रात के बढ़ने की खबर दी।

'आठ बज गये, चलिये भोजन कर लिया जाय।' निशा के फादर ने कहा।

मैंने अपनी घड़ी की ओर देखा। आठ बज चुके थे।

निशा उठकर पहले अंदर चली गयी और हम पहुंचे तब तक सब कुछ करीने से टेबल पर लगा दिया गया था। बैरा एक मूर्ति की तरह एक ओर खड़ा था और हम बैठ जायें तो परोसने की प्रतीक्षा कर रहा था।

खाना चलता रहा।

बातचीत लगभग अब अरविंद और निशा के पिता के बीच हो रही थी। कभी-कभी निशा भाभी से बात कर लेती थी। और बैरा बीच-बीच में पूछता जा रहा था। मैं खाते-खाते इधर-उधर देख लेता था। निशा बराबर इधर देख रही थी कि कहीं मैं झेंप तो नहीं रहा हूं। खाना खत्म हुआ तो हम फिर ड्राइंग रूम में जाकर बैठ गये।

काफी बड़ा बंगला था शहर से दूर जहां से फिर जंगल-ही-जंगल शुरू हो जाता है। घनी अंधेरी रात का साया आकर चारों ओर एक खौफनाक दृश्य बना देता है। और अकेले उस बिल्डिंग में रहना बैठे बिठाये दम घुटने की बात बन जाती है। बाहर आउट हाउस में नौकर रहता है। उसकी

'आप लीजिये···आप लीजिये···' और उन्होंने दूसरा गिलास ले लिया। निशा ने एक गिलास शशि भाभी की ओर बढ़ाया और एक खुद लेकर बैठ गयी।

गिलास होठों से लगे और घूंट-घूंट शर्बत गले में उतरने लगा। बात का रुख त्यों-त्यों ठंडा होता गया।

'आपको कैसा लगा यह शहर प्रोफेसर अनुराग ?'

'शहर बहुत ही अच्छा है और आप लोगों का आशीर्वाद चाहिए फिर भला किस चीज की जरूरत है। अच्छे मित्र हैं, अच्छे लोग हैं, अच्छा क्लायमेट है···'

'लेकिन एक चीज की कमी है···' अंकल ने कहा।

'ऐसी तो कोई बात नहीं···' निशा पिताजी की बात को भांप गयी थी इसलिए मुस्कराहट को छिपाने को मुंह नीचा करके बैठ गयी थी···।

'है···क्यों अरविंद···'

'मैं नहीं जान पाया—' अरविंद ने कहा।

'हां हां भाई अब तुम क्यों जानोगे। दरअसल तो अब तुम्हें ही यह सब बात जाननी चाहिए। अरे भाई प्रोफेसर को एक अच्छा साथी भी तो···'

और सब एक साथ खिलखिला पड़े। शशि भाभी जो काफी देर से चुप थीं—'अब ये काम अगर प्रोफेसर कहें तो मैं कर दूं···मगर हमारे देवरजी हां करते ही कहां हैं।'

'पहले कोई इनके लायक लड़की का अता-पता भी तो मिले—फिर हां नहीं करेगा तो इसकी तरफ से मैं हां कर दूंगा···'

इतने में निशा की माताजी आ गयीं···निशा की मां बहुत ही सरल स्वभाव की लगीं। उनके चेहरे से लगता था वे भक्तिभाव ज्यादा रखती हैं। सफेद साड़ी में और वृद्धावस्था की खिंची हुई रेखाएं। बात करने का उनका तरीका मां जैसा ही था। एकदम ममतामयी मूरत दिखायी दी। अरविंद को तो वो पहले से ही जानती थी।

'अबकी बार तो बहुत दिनों में दिखायी दिये और फिर आने की खबर भी नहीं दी। यहीं आते न। निशा कह रही थी प्रोफेसर अकेले हैं। वहां कैसे सब होगा···। जब तक रहो यहीं कम-से-कम खाने के वक्त तो आ

नहीं···नहीं ऐसा नहीं हो सकता···सफेद लिबास में···

मैंने अपने विचार को झटक दिया···और पास में पड़े हुए धर्मयुग को उठाकर पन्ने पलटने लगा।

निशा भाभीजी को अपने कमरे में लेकर चली गयी थी जहां हो रही बातों की भीनी-भीनी खुशबू कानों तक पहुंच रही थी।

निशा की मां रसोईघर में थी।

'हां···हां···थोड़ा और···इस केतली में और इस केतली में काफी···'

वे नौकर को बता रही थीं सो सुनायी देता था। चाय तैयार करवा रही थीं···। मेहमानों के आने पर नौकर भी हड़बड़ा जाते हैं और कुछ भान नहीं रहता यही हालत इस नौकर की दिखती थी। मुझे मन-ही-मन संतोष हुआ, मेरा नौकर बहुत कुछ सुधर गया है और अब तो उसे इशारे की जरूरत रहती है।

बैरे ने चाय लाकर रखी और उसके साथ ही मांजी भी आकर बैठ गयीं।

'आइये चाय की एक-एक प्याली हो जाये', कासम भाई ने बात रोकते हुए कहा—'निशा और बहू कहां गयी···'

'निशा, अरी ओ निशा···' मांजी ने आवाज लगायी।

'आयी मां···'

अरविंद ने ट्रे की ओर चाय तैयार करने को हाथ बढ़ाया इतने में निशा और भाभीजी दोनों आ गये···।

'ठहरिये अरविंद भैया···मैं बनाती हूं···' और निशा ने सबको एक-एक प्याली तैयार करके दे दी···।

क्षण भर का मौन तोड़ते हुए कासम भाई ने ही बात शुरू कर दी।

'अरे हां अरविंद एक्सपोर्ट का लायसेंस तुम्हें मिल गया है न पेरिस के लिए···'

'नहीं अरल वो तो अभी तक नहीं मिला। आप तो जानते हैं कि आज-कल डिपार्टमेंट की हालत कितनी खराब है। साल भर से अधिक हो गया है एप्लाई किये हुए मगर कौन परवाह करता है। जब तक जेब गरम न

एक पत्नी है और एक बच्ची। आगे बगीचा है जिसमें हरी घास लगी है और अनेक प्रकार के फूल आदि लगे हैं। बीच में फव्वारा है और दूसरी ओर छोटा-सा स्वीमिंग पुल बना हुआ है और मुझे वातावरण बड़ा अच्छा लगा। मगर कासम अली को शहर से इतनी दूर रहने की क्या जरूरत ! ऐसी जगहें तो कलाकार के लिए ठीक होती है जहां तनहाई में बैठकर वह अनुपम कला का निर्माण कर सके। जरूर इसमें भी कोई रहस्य होगा।

ठक-ठक कर इस प्रश्न ने हथौड़े की तरह चलना शुरू कर दिया। मैंने एकदम विस्मय से कासम अली की ओर देखा। वो अरविंद से बात करने में लीन थे। कासम अली के सिर पर अब एक भी बाल नहीं रहा था। मर्करी लाइट के प्रकाश में वह भी चमक रही थी। नदी के किनारे पर लगी दूब की तरह कुछ बाल थे। उम्र से काफी पकने पर भी वो निशानी दिखायी नहीं देती थी। कुछ-कुछ झुर्रियां पड़ी हुई थी, माथे पर सलवटें जो साफ दिखायी देती थी कि पांच हैं और हिसाब लगा रहा था इनकी उम्र लगभग एक सौ होगी। पचहत्तर तो वे पार कर चुके थे। आंखों में चमक थी और कमर किसी जवान की तरह ही सीधी थी। मैंने आज भी उन्हें सफेद लिबास में देखा था…

तो क्या सफेद रंग इस खानदान का…

हो सकता है एक का दूसरे पर जन्मजात प्रभाव हो…

पहली बार भी यही सफेद पोशाक थी…

दूसरी बार भी यही…

इस बार भी यही…

मैं विचारों में भटकने लगा और कुछ विचार करने लगा। आखिर इसके पीछे भी कोई रहस्य है। ध्यान तोड़कर मैंने भाभी की ओर देखा। पहली बार में वे इसे अपना घर ही मानने लगी थी जबकि मुझे कुछ अटपटापन मालूम पड़ रहा था और मन कुछ उदास-सा होने लगा था जैसे किसी अनचाहे बियाबान जगह में आ गया होऊं। थोड़ी देर में मैं घुटन-सी महसूस करने लगा।

मेरी दृष्टि फिर कासम अली पर जा टिकी। भड़के हुए घोड़े की तरह दिल मचलने लगा। कासम अली की शक्ल मुझे कुछ अजीब-सी लगने लगी।

बाद ही तरक्की होती है…'

कासम भाई मुझे कुशल खिलाड़ी लगे जीवन के। तर्क-पर-तर्क उनके पास मौजूद रहता है। मेरा अनुमान मुझे सच होता दिखने लगा। कासम भाई मिलमालिक हैं और मिलमालिक इतने सीधे होते नहीं जितने लगते हैं।

मुझे कासम भाई की बातों में दिलचस्पी लगी और मन में विचारने लगा। जरूर इनके संपर्क में जाकर कुछ पता लगाना चाहिए।

बातों में कुछ नहीं पता चला कि टाइम किधर गया। ग्यारह बजने को थे। मैंने कहा, 'चलो अरविंद। ग्यारह बजने को है…'

अरविंद बिना कुछ कहे खड़ा हो गया…

'तो कल कब आ रही हो निशा…' भाभी ने भी खड़े होते हुए पूछा।

'जब आप कहें लेकिन…'

'लेकिन क्या दिन भर साथ रहोगी तो अच्छा रहेगा।'

कासम भाई ने नौकर से गाड़ी निकालने को कहा। ड्राइवर पोर्च में दरवाजा खोलकर तैयार खड़ा था।

तीनों पोर्च तक छोड़ने आये। 'गुडनाइट' कहकर बैठे और गाड़ी का दरवाजा बंद किया।

नमस्ते करने को हाथ से अभिवादन किया और क्षण भर में खुली सड़क पर कार तेजी से चलने लगी। हवा हल्की ठंड लिए चल रही थी…अंधेरा दुनिया के सीने पर छाया हुआ था। पास गीदड़ों की ऊंआ…ऊंआ…की आवाज आ रही थी…सड़क पर लगी म्युनिसिपालटी की लाइटें टिमटिमा रही थीं। सुनसान सड़क थी…और आस-पास लगे झाड़ इस सड़क पर आने-जाने वालों को देखने में लीन रहते थे।

× × ×

रामू हमारी इंतजार में बैठा-बैठा ऊंघने लगा था। कार की पों…पों…सुनकर वह चौंककर खड़ा हो गया था और आंखें मलता हुआ दरवाजा खोल रहा था।

'गुडनाइट सा'ब'—ड्राइवर ने कहा और हमें छोड़कर चल दिया।

बेडिंग रामू ने लगा रखे थे। स्लीपिंग रूम में तीनों के लिए बेडिंग

कर दी जाये तब तक…'

'मैं तो सोचता था अब तक मिल गया होगा…'

'सब यूं ही चलता है अंकल कुछ न पूछिये कि क्या हो सकता है और क्या नहीं। जहां देखो वहां क्यास मचा हुआ है, धांधलेबाजी चल रही है। नैतिकता और नीति नाम की कोई चीज रही ही नहीं। पता नहीं यह सरकार कैसे चलती है।'

'तो क्या तुम मानते हो सरकार बैठी हुई है। चल ही रही है। लाख आलोचना होने को होती है मगर उससे क्या। सब कुछ काम होता है। पेट भी भरता है और डकार भी नहीं आती…'

'तो इसका मतलब ये भी कोई तिकड़मी हैं। सच है, होना भी चाहिए। इसीलिए ये सफेद पोशाक—' मेरे प्रश्न का उत्तर कुछ धुंधला-सा दिखने लगा।

'तुम ही देखो मुझे आज…मेरी हालत आज से बीस साल पहले क्या थी और आज क्या है। उस समय आजादी भी नहीं थी, खाने को बस जुट पाता था। घर में गरीबी सदा झांका करती थी। मगर जमाने की हवा के अनुसार दृष्टि बदली तो आज जो है सामने है। मिले हैं, हजारों आदमी हाथ नीचे काम करते हैं और हाथ-पैर हिलाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। समाज में प्रतिष्ठा और दस आदमी सर झुकाते हैं…। सरकारी अफसर भी इज्जत की निगाह से देखते हैं और जो भी काम करवाना होता है बस फोन करने की देर होती है और घर बैठे हो जाता है।' अरविंद सारी बात सुनकर हां में हां मिला रहा था और एक-एक चाय का घूंट गले से नीचे उतारता जा रहा था…

मैंने बची चाय को एक ही साथ गले से नीचे उतारा और अरविंद की ओर देखकर मन का विरोध किसी तरह निकालकर बोल ही उठा… 'तो इसका मतलब बिजनेस भी बेईमानी की दीवारों पर खड़ा किया जाता है। इसमें भी सिद्धांत नाम की कोई चीज नहीं…'

'सिद्धांत को कोई नहीं देखता प्रोफेसर अनुराग। और फिर हरेक के अपने अलग-अलग सिद्धांत हैं। आपका पेशा ईमानदारी का पेशा है मगर उसमें भी बेईमानी हो सकती है—उसमें भी पतन हो सकता है… पतन के

'इंभी कैसे आ गयी अनुराग···'

'मैं सोच रहा हू अरविंद आखिर लोग बहुरुपिये क्यों होते है ? क्या होता है इस प्रकार बनने से ? असलियत छिपाने में क्या मजा आता है ···'

'सच बताऊं···' अरविंद बोला···'अभिनय का मजा ही तब है जब कि अपना रूप छोड़कर दूसरी बात अपना ली जाये···ये तो आजकल का दस्तूर हो गया है। इसके बिना तो सब यू ही है।'

'सपना कभी सच होता है'—भाभीजी बड़ी देर बाद बोली।

'नही···'

'और सपना मधुर भी होता है'···दुबारा भाभी ने पूछा···

'हा।'

'तो फिर यही दुनिया है। मधुर भी है और सच भी नही।'

'वाह भाभीजी···कमाल है। आपने तो एक ही वाक्य में सारी समस्या का फैसला कर दिया। नारी पहेली होती है मगर पहेली का उत्तर भी वही होती है···'।

'इसीलिए तो कहती हू···'

'मैं समझ गया आप क्या कहना चाहती है, मुझे लगता है आप मेरे पीछे ही पड़ी है और अब शादी कराकर ही जायेंगी···'

'सो तो सोचती ही हू।'

'मगर भाभीजी मेरे हाथ की रेखाएं आपने देखी हैं इनमें तो कोई मैरिज लाइन ही नहीं है। मुझे तो वो शेर बड़ा पसन्द आया—

हम तो पैदा हुए हैं दुनिया में इसलिए साकी,
कि हसीनों का बस दीदार किया करें।'

'लेकिन आपको मालूम नहीं देवरजी कलाकार बनने के पहले कला जीवन में उतारनी पड़ती है—साधना का दामन थामे बिना कला पूरी नहीं होती। ये तो जीवन की हार है।'

'तो मैं मान लेता हू मेरी कला निष्प्राण ही सही।'

'निष्प्राण कला का कोई मूल्य नहीं होता। दीपक के जलने का अर्थ तो तब सार्थक होता है जब उसके प्रकाश से किसी को रास्ता दिखे। निर्जन में जलने वाला दीपक बेकार होता है।'

फैले हुए थे। कमरे में कर्टेन होने से भाभीजी का जनानखाना अलग हो गया था।

नींद अभी आखों की राहों पर नहीं आयी थी सो लेटे-लेटे बातों के पुलाव बनाने लगे। मेरे सामने कासम भाई का चेहरा अब भी घूम रहा था और उनकी अपनी जवानी। मैंने अरविंद से पूछा—'ये कासम भाई कैसे आदमी हैं ? कुछ ही बरस में कैसे काया पलट हो गयी ?'

'यह एक लंबी कहानी है, अनुराग ! और तुम क्या ये जानते हो कि निशा इनकी लड़की है ?'

'तो क्या निशा अंकिल की लड़की नहीं है !' भाभीजी ने विस्मय से पूछा, 'तो फिर···'

'हां शशि ये इनकी लड़की नहीं है। इसके माता-पिता कोई और हैं। ये तो यहां लायी गयी है। तुम तो जानते हो न अनु ?'

'हां मुझे थोड़ा-थोड़ा मालूम है मगर मैं सारे रहस्य को जानना चाहता हूं। निशा के जीवन की उमस भरी उदासी ने मुझे बार-बार जानने को प्रेरित किया मगर मैं दूसरे कामों की उलझन में इतना डूबा रहा कि कभी मन से विचार भी नहीं सका।' अरविंद की आज आधी-आधी बातों ने पूरा जख्म उभार दिया। हो न हो ये एक बड़ा रहस्य है। जो कुछ जान पाया वह कुछ नहीं था, नहीं के बराबर था और उसमें मुझे लगा थाह पाने की कुछ जगह नहीं थी मगर निशा ने कभी यह सब बताने को चाहा ही नहीं···।

'औरतों के मन की गहराई को समझ पाना मुश्किल होता है।' मुझे मेरी ही एक मित्र डॉ० रेहाना की बात याद आ गयी। वे न कहना चाहें तो कभी नहीं—कहती हैं तो पल भर में ही खोलकर रख दें। हो सकता है निशा भी इसे छिपाना चाहती हो। और फिर मैं होता भी कौन हूं सारी बात जानने वाला। एक पहचान मात्र में और इससे अधिक रखा ही क्या है···आखिर मैं एक अजनबी ही तो हूं उसके लिए···और वो भी मेरे लिए एक अजनबी चेहरा। मिले हैं लेकिन मिलने में क्या ! कइयों से मिलते हैं और एक अभिनय करके दूसरे के साथ अभिनय करने निकल जाते हैं।'

मुझे अचानक ही हंसी आ गयी···

वार कोशिश की अपने लिए नहीं मा के सुख के लिए ही सही मगर य तो एक संजोग है। बस इस मामले में तो मेरी विचारधारा भाग्यवादी हो गयी है। यह सब नियति का खेल है। इंसान के हाथ में है ही क्या। यहां तक कि हम अपनी इच्छा से अपना दोस्त भी नहीं ढूढ़ सकते। परिस्थितियां एक-दूसरे को मिला देती हैं और हम एक-दूसरे के हो जाते हैं। और कोई अपना होकर भी अपना नहीं हो पाता।'

× × ×

मुझे अमर का चेहरा याद हो आया और उसके साथ ही उसके जीवन की घटना।

अमर की शादी को लगभग आठ साल हो गये थे। शादी के समय अमर मे झिझक थी मगर अब वह सब कुछ समाप्त हो गयी थी और वह नये रूप में उभर आया था। शादी सबकी तरह उसकी भी हो गयी थी। बारात गयी थी। तोरण मारकर दूल्हे के रूप में दुल्हन ले आया था और सात फेरों के बाद जब सारे घर के लोगों ने मुह दिखायी कर ली तो अमर की बारी आयी थी पहली रात को। सबकी तरह प्रथम मधुरजनी उसने भी मनायी थी और फलस्वरूप विवाह के तीन साल बाद उसको एक पुत्र भी हो गया था'''। गृहस्थी बस-सी गयी थी'''। अमर बदलते जमाने के अनुसार बदलता गया, विचार बदलते गये, दृष्टि बदलती गयी और उसे अपनी जिंदगी में एक कमी दिखायी देने लगी थी। विवाहित होकर भी वह अविवाहित की तरह जिंदगी व्यतीत कर रहा था, मगर उसने अपने दिल के असतोष को कभी व्यक्त नहीं होने दिया लेकिन बात कब तक छुपती। पति-पत्नी के बीच में दरार पड़ गयी और पहली रात की कहानी खंडित होती गयी। बालक भी बड़ा होने लगा और बस वही था जो दोनों को जोड़े हुए था मगर जीवन का आनंद खत्म हो गया था। अमर बुद्धिवादी था इसलिए सब कुछ सहन कर रहा था। मुझे जब मालूम पड़ा तो मौन होकर उसके प्रति हमदर्दी ही रखा करता था और दूसरों के मामले मे नहीं पड़ना चाहिए सोचकर चुप रहता था। किन्तु बार-बार यही विचार आता था क्या यही जिंदगी है? आखिर मानव के जीवन में कहां भूल रह जाती है जिससे पीड़ा का सृजन हो जाता है।

'लेकिन कुछ दीपक निर्जन में भी जलते हैं···'

'निर्जन में जलने वाला दीपक हवा के झोंके से बुझ जाया करता है।'

'लेकिन उसमें कम-से-कम पतंगा तो नहीं जलता भाभी···।'

'पतंगे के लिए जलना जरूरी होता है। न जले तो उसका जीवन अधूरा रह जाये। दीपक की लौ में उसकी लौ ही उसका प्रणय है, उसकी आत्मा है। और फिर आप क्यों भूल जाते हैं कि उसमें पतंगा ही नहीं जलता दोनों जलते हैं। एक-दूसरे के लिए मर-मिटना ही जीवन है।'

'और अगर अकेला ही मिट जाये तो···'

'उसे मिटना नहीं कहते···भटक जाना कहते हैं, मर जाना कहते हैं।'

भाभीजी का एक-एक तर्क मेरे लिए चुनौती बनकर आ रहा था। दर्शन मेरे लिए परिभाषा था उनके लिए वास्तविकता।

'लेकिन भाभी सब कुछ मिलना आसान नहीं है। भाग्य है और इसके बिना तो एक कदम भी न आगे बढ़ता है न पीछे हटता है।'

'मगर भाग्य को किसने देखा है। कर्म करना ही तो भाग्य को देखना है। हम कर्म करके भाग्य को देखने का प्रयास करते हैं। और जो इससे भागते हैं उनसे भाग्य भी भागता है।'

अरविंद बड़े मजे से हमारे तर्कों का आनन्द ले रहा था और मुस्करा देता था···।

'सच है भाभी मगर दुनिया के रिवाज, रस्म ये सब न जाने क्यू मेरी समझ में नहीं आते। ऐसा लगता है कि बस—

चार सांसों का ये जोड़ जिंदगी—
दो गुजर गयी, दो गुजर जायेंगी।'

'मेरी बात सुनोगे—

गुजरने को गुजरते हैं ये लम्हे जिंदगी के
मगर हो साथ कोई, तो मजा और ही है।'

आप इतने निर्मोही क्यों हो गये भैयाजी।' शेर सुनाते ही भाभी पूछ बैठीं।

'क्या बताऊं भाभी! एक के बाद एक ऐसी घटनाएं घटीं कि अरमानों का गला ही घुट गया। जिधर हाथ बढ़ाता हूं—शून्य में लौटकर आ जाता है। भला भाभी अभिशापित जीवन में बहारें कैसे आ सकती हैं। मैंने कितनी

हुए मिलेंगे। कुछ फ्लर्ट लेडीज भी क्लबों की मेम्बर हैं। सोसाइटी गर्ल्स भी नये-नये फैशनों में लिपटी, इनके इशारों पर नाचती मिलेंगी। वेस्टर्न ढंग का क्लब जहां किसी छोटे व्यक्ति को कोई स्थान नहीं, किसी नाइट क्लब से कम नहीं। माडर्न ढंग के इस क्लब में जासूसी दरवाजे हैं जो यहां के बैरे हीजानते हैं। मैनेजर के इशारे पर किस व्यक्ति को कहां ले जाना है ये बैरों का काम होता है। ग्राउंड फ्लोर पर जैसे साधारण-सा क्लब हो मगर लाबेला क्लब तो असल में तलघर में है। जो रात के साये में शुरू होता है और उसी में खत्म हो जाता है। यहां के बैरे सबको जानते हैं और सभी की नस उनके हाथ में होती है। इसी नस के कारण उनकी जेब गरम होती रहती हैं। मगर ऐसे क्लबों के मैनेजर भी बड़े घूसट होते हैं। उनकी शक्ल और अक्ल दोनों विलेन की तरह होती हैं तभी तो ये बड़ी सफलता से अपनी मैनेजरी निभा पाते हैं। वरना चुटकियों में उड़ा दिये जायें।

सूट-बूट पहनकर रात के ढलने के साथ लोगों का आना शुरूहो जाता है। बाहर कारों की लाइन लगी रहती है जैसे घड़ी भर के लिए उनकी कोई कद्र नहीं और इन्हें जैसे चूसकर फेंक दिया गया हो। हल्का-हल्का म्यूजिक चलता रहता है। सारे तलघर में मद्धिम प्रकाश जिसमें कोई किसी का चेहरा देख भी न सके। हरेक की अपनी-अपनी मुकर्रर जगह बनी हुई है। बैठते ही साथ खाली खाली जगह भी भर जाती है, टेबल पर शराब के जाम लग जाते हैं और एक हाथ जाम को लेकर होंठों पर लगा देता है और दूसरा बगल में बैठी रात की परी के सीनों पर लोटने लगता है।

चूमने की आवाज···चुचकारी···

भींचने पर हल्की-सी सिसकारी···

एक पैग खाली···दूसरा खाली···और धीरे-धीरे रात की परी के वस्त्र उतरने लगते हैं। साड़ी···जिसमें सारा जिस्म यूं ही दिखता हो···चीर हरण की तरह हटा दी जाती है, फिर एक घूंट मदिरा का और ब्लाउज के बटन चट-चट खुलकर बिखर जाते हैं···ओंठ होंठों से मिलकर एक हो जाते और फिर जिस्म पर पड़े हुए बेकार वस्त्र भी खिसक जाते हैं—उन्हें भी मालूम है कि अब कौन-सा दृश्य होगा और बोतल खाली होते ही दूसरी बोतल और सन्नाटा···केवल हल्की-सी आहट···।

अमर के मां-बाप ने अपने हाथों से उसके भाग्य की कहानी लिखना चाही मगर वे भी असफल रहे। अमर के जीवन में आयी खुशी बुलबुले की तरह थी जो अब मिट चुकी थी और प्रश्नवाचक चिह्न उसकी जगह खड़ा हो गया था। समतल धरातल ऊबड़-खाबड़ हो गया था। जीवन में विरोध उत्पन्न हो गया था जो मिटाये न मिट रहा था और सूखे पत्तों की तरह एक-एक दिन उड़ा चला जा रहा था।

× × ×

मेरा अब अक्सर कासम अली से मिलना होने लगा था और उनके साथ क्लब, कभी मीटिंग्स आदि में भी चला जाया करता था। यद्यपि इन सब जगह जाने में समय का काफी नुकसान होता था मगर विचारों में उठे प्रश्न के लिए आवश्यक था कि उनकी कंपनी में उठता-बैठता।

थोड़े ही दिनों में मेरा उनकी मित्र-मंडली से बहुत ही अच्छा परिचय हो गया। क्योंकि कासम अली हर जगह बड़ी ही आत्मीयता से परिचय करवाते हैं। इससे उनकी परिचित सीमा में मैं मान की दृष्टि से देखा जाने लगा था, दूसरे प्रोफेसर होने के नाते भी सम्मान मिल जाता था।

मैं मन-ही-मन सोचता था समाज में आज इंसान की क्या औकात रह गयी है। हर जगह पैसे वालों की माया है और मुझ जैसा मध्यम श्रेणी का आदमी इन महान मूर्तियों के बीच में कैसे निभ पायेगा। लक्ष्मी और सरस्वती का कब मिलाप हुआ है। या तो चांदी के सिंहासन पर बैठिये या फिर ज्ञान के शिखर पर चढ़िये। जहां हर बात रुपयों के बदले सोची जाती है वहां मुझे मौन हो जाना पड़ता। कासम भाई कभी-कभी ब्रैस करते तो उनकी जगह दो-एक ताश की बाजी खेल लेता और बैठे-बैठे पैसे की बू भी सूंघने में आ जाती।

स्वर्ण, सुरा और सुंदरी तीन पायों पर संसार की चारपाई टिकी हुई है। क्लबों में सिगरेट के कश, पैसों की बाजी और बातों की द्रोपदी का चीर हरण। मानव की भूख नंगी भटकती है, ऐसी जगह।

ऊंचा सर्कल और ऊंची बातें। लावेला क्लब शहर के सब बड़े-बड़े व्यक्तियों का सेंटर है। किसी से भी मिलना है शाम को यहां चले आइये। बड़े से बड़े अफसर, मिल मालिक, बिजनेसमैन सब यहां आकर खिलखिलाते

दिया करता था। पुराने नौकर अपने मालिक की इज्जत ज्यादा रखा करते थे इसीलिए कम बोलते थे···मैं अंदर गया। दोनों मां-बेटी ड्राइंग रूम में ही बैठी थी···।

'नमस्ते मांजी···।'

'नमस्ते सर'···इसके पहले कि मांजी कुछ कहती निशा नमस्ते करते उठ खड़ी हुई···

चश्मा लगाते हुए मांजी बोली···'आओ···आओ···प्रोफेसर अनु-राग···'

मैंने बैठते हुए पूछा···'आप कैसी हैं ?'

'बस ठीक हूं जरा दिन को थोड़ा-सा सर में दर्द था'···निशा मां के पास वाले सोफे पर जाकर बैठ गयी थी जो मेरे सामने था।

'आप कैसे हैं ?'

'आपका आशीर्वाद है मांजी···'

मैंने जानते हुए भी पूछा···'अंकल नहीं हैं क्या ?'

'शायद मिल में गये होंगे या फिर आफिस होंगे।'

मुझे इसी उत्तर की प्रतीक्षा थी। इसके अतिरिक्त वे और कुछ जानती ही नहीं थीं।

एक ओर तो यह ठीक भी है कि औरतों को आदमी के सारे कामों में दखल नहीं देना चाहिए मगर यदि पत्नी का अपने पति के ऐसे कामों पर नियंत्रण न हो तो काम भी न चले।

मैं सोचने लगा व्यक्ति अपना बनाकर भी अपनों को सारी बात नहीं कहता। कई बातें वह छिपा जाता है। यही है व्यक्ति का सबसे बड़ा अज-नबीपन। पति और पत्नी के रिश्ते से निकट का और कौन-सा रिश्ता है लेकिन यहां भी एक दूरी रहती है।

सात्रेला क्लब का नजारा मेरी आंखों के सामने घूम गया। पुरुष भी आते हैं, औरतें भी आती हैं। अकेला पुरुष ही नहीं आता वहां। औरतें भी कई बातें छिपाती हैं अपनों से। कौन कब उनसे मिलता है, किससे उनका क्या संबंध है, किसको क्या पता ? वहां आने वाली औरतें भी किसी की पत्नियां होंगी और अगर न होंगी तो लड़कियों की उम्र की भूख उन्हें यहां

घड़ी आधी रात को पार कर चुकी होती है···क्लब के ग्राउंड फ्लोर पर फिर कहकहे उठते हैं और धीरे-धीरे सब खामोश हो जाते हैं।

× × ×

कासम अली मुझे हर जगह अक्सर अपने साथ ले जाते थे किंतु लावेला क्लब कभी नहीं ले गये थे। और दरअसल मुझे इसके बारे में मालूम भी नहीं था।

लावेला क्लब शहर से दूर है यही लगभग पांच-छः माइल दूर और इस तरह बना हुआ है कि कोई इसे देखकर कहे भी नहीं कि यह रईसों का क्लब होगा मगर अंदर जो जश्न मनता है, वह किसे पता।

मैंने कासम भाई से कभी लावेला की बात नहीं की थी मगर आश्चर्य मुझे उन्हें वहां एक दिन जाते हुए देखकर हुआ। ढलती उमर मगर हाथों में पैसे का जोर जवान बनाये हुए था। आगे-आगे उनकी कार जा रही थी मैं पीछे-पीछे अपने स्कूटर पर घूमने निकला हुआ था। दूर पर ही मैं रुक गया था कहीं कासम भाई को शक न हो जाय कि मैं उनकी पर्सनल जिंदगी देख रहा हूं जिसे कोई नहीं जानता, निशा की मां भी नहीं, निशा भी नहीं। यों तो यही जानते हैं कि कासम भाई मिल गये होंगे या फिर आफिस में बिजनेस में बिजी होंगे।

थोड़ी ही देर में मैं वहां से मुड़ गया और कासम भाई की कोठी की ओर अचानक ही चल दिया।

'कासम भाई हैं ?'

'नहीं सा'ब' नौकर ने स्टूल पर से उठते हुए एक सलाम ठोका और छोटा-सा उत्तर दिया।

'मांजी हैं ?'

'हां सा' ब···'

'और कौन है ?'

'बिटिया रानी हैं···'

नौकर बूढ़ा था··· लगता था पुराना नौकर था और वफादारी उसकी सफेद दाढ़ी से मालूम पड़ती थी। हां या ना के अलावा उसके पास और कोई जवाब नहीं होता था। साहब जरूर वह हर वाक्य के अन्त में जोड़

पड़ता मगर बेगम की सूनी गोद अच्छी नहीं लगती थी और जब डॉक्टरी इलाज के बाद भी कुछ न हुआ तो बेगम की उदासी देखकर कासम अली ने कोई बच्चा गोद लेने का विचार किया। अब तक अमीरचंद चार बच्चों के पिता बन चुके थे। कासम अली की नजर उसकी तीसरी लड़की पर जा टिकी। अमीरचंद के सब बच्चे रूप में एक से एक बढ़कर थे। कासम अली ने एक दिन अपनी बेगम से कहा—

'बेगम! क्यों न अपने यार अमीरचंद की लड़की को गोद ले लिया जाय···।

बेगम कुछ चौंक-सी गयी···'अमीरचंदजी की लड़की···मगर वो तो हिंदू है···और हम···।'

'आप भी क्या हो बेगम। अमीरचंद मेरा बचपन का दोस्त है। हम साथ पढ़े हैं, साथ खेले हैं···हम एक-दूसरे के लिए जान कुर्बान कर सकते हैं···'

'लेकिन क्या आपने उनसे इस बाबत कोई जिक्र किया है···।'

'जिक्र तो नहीं किया। पहले आपसे राय ले लूं। आपको पसंद हो तो···?'

'पसंद···सच पूछो तो मैं तो उस लड़की को जी-जान से चाहती हूं। हम उसे नाज और नखरों से बड़ा करेंगे···खुदा करे और···'

और दोस्ती को निभाया अमीरचंद ने। अपनी बेटी को अपने दोस्त को दे दिया। उस समय निशा का नाम 'निशा' नहीं था 'नसीम' था जो कासम अली ने ही रखा था। निशा इसका उपनाम है।

निशा उस समय छोटी-सी थी। कासम अली उसे ले आये थे बेगम की गोद भी भर गयी थी और उनकी सारी उदासी दूर हो गयी थी। दिन भर वे निशा की संभाल में लगी रहती थीं। निशा जैसे-जैसे बड़ी होने लगी, कासम अली और बेगम को ही मां-बाप समझती थी। इसके आते ही कासम अली की हालत सुधरने लगी। व्यापार में जो फायदा होना शुरू हुआ तो आज तक बढ़ते ही जा रहे हैं। निशा का आना इनको फला। निशा को इन्होंने उसी तरह पाला, मखमलों की सेज पर निशा का जीवन बीता, लाड़ और प्यार में पली···।

ले आती होगी। भूख···भूख को ऐसे ही कैसे मिटाया जा सकता है। दो भूखे मिलते हैं तो भूख शांत हो जाती है। और लुत्फ भी अलग होता है।

मनुष्य भी क्या है, उसे भिन्नता पसंद है, वैराइटी चाहिए। विश्व भी एक वैराइटी ही है। इसी के पीछे वह मरता है और मर जाता है।

'अंकल काफी काम करते हैं—मांजी।'

'हां रोज यही बारह-एक तो हो ही जाता है। डिनर के बाद जाते हैं तो तभी लौटते है।'

मनुष्य कितना भ्रम में पड़ा रहता है। यह भ्रम है या भोलापन ? विश्वास है या स्वतंत्रता ? हर व्यक्ति की अपनी जिंदगी का अपना अलग दायरा होता है। जिसमें वह किसी को आने देना नही चाहता, उसे जतलाना नही चाहता और ऐसी बातें वह कहे भी कैसे ? मगर फिर भी कोई उसे जान ही जाना है। चाहे उसे कितना ही छिपाने का प्रयास क्यों न किया जाय।

× × ×

अरविंद ने आगे बताया कि लगभग बीस साल पहले कासम भाई एक साधारण से व्यापारी थे। रहने को इनका अपना मकान भी नही था। ये चार भाई थे उनमें से दो भाई स्वर्गवासी हो गये। उस समय ये भी बंबई रहते थे। निशा के असली पिता अमीरचंद भी उस समय वहीं पास में ही रहते थे। कासम अली और अमीरचंद बचपन के ही दोस्त थे और घनिष्ठ मित्रता के बंधन धीरे-धीरे पकते गये थे। दोनों ही आर्थिक दृष्टि मे बराबर ही थे।

दोनों का विवाह भी एक-आध साल के अंतर से हुआ था। भाग्य का लिखा कौन टाल सकता है। दोनों को सुंदर और सुशील पत्नियां मिली थी। अमीरचंद को दो साल बाद ही लड़का हो गया था और एक का बाप बन गया था। कासम अली ने इस पर अपने यहां अच्छा-खासा जश्न मनाया था। और उसे भी उतनी ही खुशी हुई थी जैसे उसी के यहां लड़का हुआ हो मगर खुदा कासम अली पर इस मामले में पता नहीं क्यों मेहरबान नहीं हुआ। अमीरचंद उससे कहता 'तू क्यो चिंता करता है, मेरे बच्चों को तू अपना ही समझ।' कासम अली को तो बच्चे होने न होने से कोई फर्क नहीं

दोस्तों में से थे सो घर की ही बात हो गयी थी। अक्सर उठना-बैठना साथ होना था और जब भी मिनिस्टर साहब का दौरा लगता था इन्हीं के यहां एक वक्त का खाना होता था।

वक्त से कासम भाई ने फायदा उठाया। अब तो उनके पास संजीवनी बूटी थी चाहे जिसको उखाड़ सकते थे चाहे जिसको दबा सकते थे। मिनिस्टर से किसी बात में कम नहीं थे।

मिनिस्टर अख्तर को अब पांच साल के लिए सत्ता मिल ही गयी थी। कुछ ही दिनों में कासम अली को सरकार की तरफ से कपड़े की मिल खोलने की परमीशन मिल गयी। हालांकि कासम अली इस हालत में नहीं थे कि अकेले ही मिल चला लेते मगर उन्होंने अपने चचेरे भाइयों को मिलाया और सारा पैसा बटोरकर परमिट का फायदा उठा लिया। मिल का मुहूर्त निकल गया और देखते-देखते थोड़े ही दिनों में कपड़े की मिल कपड़ा बुनने में लग गयी। कासम अली अब मिल मालिक हो गये। मिनिस्टर मौलाना अख्तर ने ही उसका उद्घाटन किया था और अंदर-ही-अंदर उनको भी शेयर मिल गया था पत्नी के नाम। शेयर देकर भी कासम अली को कोई नुकसान नहीं था। चौगुना फायदा हो रहा था। इधर इनकी जेब भरती थी और उधर मिनिस्टर साहब की जेब भरती जा रही थी।

और आज कासम अली मिल मालिक हैं, शहर के रईस आदमी हैं··· दस साल में उनकी किस्मत कहां से कहां पहुंच गयी और वे अब करोड़पति कहे जाते हैं। उनके पास अब अच्छे-अच्छे बंगले हैं, एक जगह नहीं तीन-तीन जगह। कारें हैं—दस-दस, नौकर-चाकर उनके इशारों पर नाचते हैं। मिल के हजारों नौकरों···कारीगरों के वे मालिक हैं और शहर की कई संस्थाओं के प्रेसीडेंट हैं, पैटर्न हैं, एक आलीशान जामा उन्होंने पहन रखा है। पैसे की वजह से उन्हें सब जगह ऊंचा स्थान दिया जाता है। इनकम टैक्स से बचने के लिए कासम भाई भी जगह-जगह दान देकर दानवालों में अपना नाम भी लिखा लेते हैं और सरकार को भी अच्छा-खासा बेवकूफ बना देते हैं। दरअसल बात तो यह है कि जब पैसा बढ़ता है तो आदमी की अक्ल भी तिकड़मी हो जाती है और सच पूछो तो पैसे वालों को सरकार पकड़ भी नहीं सकती है क्योंकि सरकारी अफसरों में उतना ही दिमाग है

निशा कभी-कभी अपने पहले घर भी जाती रहती थी। वहां थोड़े दिन रहती, भाई-बहनों के बीच हंसती-खेलती और फिर उसे ले आते। जैसे-जैसे निशा बड़ी होती गयी, उसका आना-जाना बंद-सा हो गया। जहां भी जाती या तो उसकी मां साथ होती है या कासम भाई। यूं उसे हर प्रकार की स्वतंत्रता थी मगर नहीं के बराबर···निशा कहीं भी जाती है कहकर जाना पड़ता है जो कई बार निशा को अच्छा नहीं लगता मगर क्या करे···। कई बार इधर-उधर जाने के लिए उसे अपने मन को मारना पड़ता है और जहां न जाने की इच्छा होती है वहां मन मसोसकर जाना पड़ता। वैसे निशा के लिए सब सुविधायें हैं, उसे कुछ नहीं करना पड़ता। उसके इशारे पर हजारों रुपया यूं ही बह सकता है किंतु अनुराग अगर पैसे से ही खुशी खरीदी जा सकती तो गरीबों को यह भी नसीब नहीं होती, सब पैसे वाले लेकर बैठ जाते।

मेरे सामने निशा का कई बार का उदास चेहरा आकर घूम गया—तो क्या निशा सुखी नहीं है। आखिर उसके जीवन में ऐसा कौन-सा अभाव है?

उसके बाद सन सैंतालीस में भारत आजाद हो गया। हिंदुस्तान के दो टुकड़े हो गये। हिंदू-मुसलमानों ने बीच एक बड़ी दीवार खिंच गयी लेकिन ईश्वर ने अमीरचंद और कासम अली के दिलों का बटवारा नहीं किया था। उनकी दोस्ती वैसी ही रही। आज भी दोनों एक-दूसरे के यहां आते-जाते हैं। उसी तरह दोस्ती का इजहार करते हैं।

कासम अली उस समय चाहतेतो पाकिस्तान चले जाते मगर हिंदुस्तान की मिट्टी से उन्हें प्रेम था। यहीं रह गये। किस्मत का सितारा चमकने लगा। हिंदुस्तान की हुकूमत कांग्रेस के हाथ में आयी। चुनाव में कासम अली के एक दोस्त की जीत हुई, मानो कासम भाई की जीत हुई हो। उनका नाम था मौलाना अख्तर। काबलियत और तिकड़म ने उन्हें मिनिस्टर बना दिया।

मौलाना अख्तर के मिनिस्टर बनने पर कासम भाई ने अपनी पहुंच के बाहर शानदार दावत का इंतजाम कियाऔर मौलाना अख्तर का बड़ा भारी स्वागत किया। मौलाना अख्तर भी कासम अली के पुराने और अच्छे

दोस्तों में से थे सो घर की ही बात हो गयी थी। अक्सर उठना-बैठना साथ होना था और जब भी मिनिस्टर साहब का दौरा लगता था इन्हीं के यहां एक वक्त का खाना होता था।

वक्त से कासम भाई ने फायदा उठाया। अब तो उनके पास संजी-वनी बूटी थी चाहे जिसको उखाड़ सक्ते थे चाहे जिसको दबा सक्ते थे। मिनिस्टर से किसी बात में कम नहीं थे।

मिनिस्टर अख्तर को अब पाच साल के लिए मसा मिल ही गयी थी। कुछ ही दिनों में कासम अली को सरकार की तरफ से कपड़े की मिल खोलने की परमीशन मिल गयी। हालांकि कासम अली इस हालत में नहीं थे कि अकेले ही मिल चला लेते मगर उन्होंने अपने चचेरे भाइयों को मिलाया और सारा पैसा बटोरकर परमिट का फायदा उठा लिया। मिल का मुहूर्त निकल गया और देखते-देखते थोड़े ही दिनों में कपड़े की मिल कपड़ा बुनने में लग गयी। कासम अली अब मिल मालिक हो गये। मिनि-स्टर मौलाना अख्तर ने ही उसका उद्घाटन किया था और अंदर-ही-अंदर उनको भी शेयर मिल गया था पत्नी के नाम। शेयर देकर भी कासम अली को कोई नुकसान नही था। चौगुना फायदा हो रहा था। इधर इनकी जेब भरती थी और उधर मिनिस्टर साहब की जेब भरती जा रही थी।

और आज कासम अली मिल मालिक है, शहर के रईस आदमी है··· दस साल में उनकी किस्मत कहां से कहां पहुंच गयी और वे अब करोड़पति कहे जाते है। उनके पास अब अच्छे-अच्छे बंगले है, एक जगह नही तीन-तीन जगह। कारें है—दस-दस, नौकर-चाकर उनके इशारों पर नाचते है। मिल के हजारों नौकरो···कारीगरों के वे मालिक हैं और शहर की कई संस्थाओं के प्रेसीडेंट हैं, पैटर्न हैं, एक आलीशान जामा उन्होंने पहन रखा है। पैसे की वजह से उन्हें सब जगह ऊंचा स्थान दिया जाता है। इनकम टैक्स से बचने के लिए कासम भाई भी जगह-जगह दान देकर दानवालों में अपना नाम भी लिखा लेते हैं और सरकार को भी अच्छा-खासा बेवकूफ बना देते है। दरअसल बात तो यह है कि जब पैसा बढ़ता है तो आदमी की अकल भी तिकड़मी हो जाती है और सच पूछो तो पैसे वालों को सरकार पकड़ भी नही सकती है क्योंकि सरकारी अफसरों में उतना ही दिमाग है

जितनी उन्हें तनख्वाह मिलती है, इससे ज्यादा हो तो भी वे काम में नहीं लेते और जो काम में लेते है उन्हें ये पैसा देकर ताला लगा देते हैं और यदि ताला न लगा पाये और उस ईमानदार कर्मचारी ने आगे आवाज उठायी भी तो उसका फिर उसके साथी ही साथ नहीं देते यानी कि सरकार के दूसरे अफसर उस पर चढ़ बैठते हैं। कासम अली भी इन सब कामों में माहिर है, वे मोहरे चलने में काफी तेज हैं, और कासम भाई का सिक्का यूं ही यूं उजला रहता है और उनके गुर्गे अंदर-ही-अंदर काम निबटा देते है और इस तरह वे लाखों रुपया इस तरह कमाते हैं कि सरकार को पता भी नहीं चलता। और जो कुछ रजिस्टरों में कमाते हैं उसमें से सरकार को कुछ नहीं मिलता। लाख अफसर कोशिश करके मर जाते हैं मगर चौपड़ों में इतनी सफाई कि शक की स्याही का धब्बा तक न दिखे और अंदर के चौपड़े इतने काले कि काले रुपयों से भरे हुए···इसी से खर्च चलता है, इसी से पुलिसवालों के हाथ की खुजली मिटायी जाती है, इसी से मिनिस्टरों की सफेद टोपी पर टिनोपाल चढ़ता है, इसी से गुर्गों की आवाज बंद और दुनिया की नजर बंद की जाती है, इसी से कासम अली साठे पर पाठे बनते हैं और जवान हसरतों के खुले अंगों पर रंग बरसाते है।

मगर···यह सब-कुछ होने पर भी न निशा को इन सब कारनामों का पता है और न ही उसकी मां को और न कोई उन्हें यह सब बताना चाहता है। मां भगवान की पूजा में लीन रहती है निशा अपने अरमानों में डूबी रहती है और अपनी इस वदिश जिंदगी पर विचारती रहती है—न विचारे तो करे भी क्या। सब कुछ है मगर न जाने फिर भी उसके जीवन में कौन-सी कमी है?

कासम अली ने अपनी जिंदगी से कभी बाहर झांकने पर विचार भी नहीं किया। वे अपनी जिंदगी के दायरे में इतने लीन रहते थे कि घरवालों की खुशी का कभी खयाल ही नहीं करते थे। वो तो यही समझते थे कि घर है, पैसा है और जिस तरह वे अपनी खुशी और सुख पैसे से खरीदते हैं, वैसे उनकी पत्नी और बेटी भी खरीद सकते हैं। सच पैसा मनुष्य को कितना अंधा और बेहूदा बना देता है। पढ़े-लिखे विचारशील आदमी भी कितने अंधे हो जाते हैं और फिर यह रोग भी छूत की तरह फैलता जाता है।

कासम अली ही नहीं उनके चचेरे भाई और उनके मिल के पार्टनर भी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे जिनकी डायरी के पन्ने भी धीरे-धीरे उड़ने लगे।

मिल मे सबसे ज्यादा पैसा कासम अली का ही था और बाकी तीन मे नजीर हुसैन का बड़ा शेयर था बाकी ने अपनी थोडी पूजी लगायी थी जिससे ज्यादा उनके पास थी भी नही। और उनको अपनी पूजी के हिसाब से फायदे मे से हिस्सा मिल जाया करता था। नजीर हुसैन इन सबमे तेज थे लगता था कासम अली से भी ज्यादा मगर वह धीरे-धीरे करके बिल बनाने मे पैतरेबाज दिखायी देते थे और निकट मे वे ही कासम अली के रिश्ते मे थे इसलिए कासम भाई भी अपना सारा विश्वास उस पर रखे हुए थे।

पहले ही इंट्रोडक्शन मे नजीरहुसैनकी सारी साइकोलोजी यद्यपि मालूम नही पड़ी थी मगर फिर भी बहुत कुछ उसके चेहरे और बातो से पता लग गया था। नजीर हुसैन की अभी ज्यादा उमर नही थी यही करीबन तीस-बत्तीस के होगी और बदन से हट्टा-कट्टा होने के कारण चेहरे पर खल-नायक का रुतबा भी था। छोटी-छोटी आखे उसके चालाक होने की गवाह थी, हसने का तरीका उसकी दुष्टता का उदाहरण था और उसके बात करने के ढग मे एक अभिमान था मगर उसकी यह अदा भी उसका राज थी जिससे किसी को उस पर शक न हो यानी कि उसके व्यवहार मे अभिनय ज्यादा, असलियत कम थी। बीसवी शताब्दी का होने के कारण उसमे इतना असर था कि अग्रेजी बोल लेता था। यू अंग्रेजी कासम अली भी बहुत अच्छी बोलते है क्योकि पुराने चावल है और अग्रेजो के कारण सीखनी ही पड़ी थी। नजीर हुसैन के विचार बाहर से आधुनिक लगते थे। मगर अंदर से वह बूढ़ा शेर था। काम-धंधा तो ऐसे लोगो का मुनीम किया करते है। इन्हें तो सिर्फ पालिसी बनाना पड़ती है और इशारा करना पड़ता है कितना पैसा सफेद रखना है और कितना काला धन दबाना है इसके अलावा इन्हे सामाजिक फीगर बनना जरूरी हो जाता है जिससे कि इनकी जड़ो मे कोई पलीता न लगाये। समाज सेवा का झूठा मुलम्मा चढ़ाकर सियार की तरह शेर बनकर समाज मे अपना रौब जमाना इनका खास पहलू होता

जितनी उन्हें तनख्वाह मिलती है, इससे ज्यादा हो तो भी वे काम में नही लेते और जो काम में लेते है उन्हें ये पैसा देकर ताला लगा देते हैं और यदि ताला न लग पाये और उस ईमानदार कर्मचारी ने आगे आवाज उठायी भी तो उसका फिर उसके साथी ही साथ नही देते यानी कि सरकार के दूसरे अफसर उस पर चढ़ बैठते हैं। कासम अली भी इन सब कामों में माहिर हैं, वे मोहरे चलने में काफी तेज हैं, और कासम भाई का सिक्का यूं का यू उजला रहता है और उनके गुर्गे अंदर-ही-अदर काम निपटा देते हैं और इस तरह वे लाखों रुपया इस तरह कमाते हैं कि सरकार को पता भी नही चलता। और जो कुछ रजिस्टरों में कमाते है उसमें से सरकार को कुछ नही मिलता। लाख अफसर कोशिश करके मर जाते है मगर चौपड़ों में इतनी सफाई कि शक की स्याही का धब्बा तक न दिखे और अंदर के चौपड़े इतने काले कि काले रुपयों से भरे हुए'''इसी से खर्च चलता है, इसी से पुलिसवालों के हाथ की खुजली मिटायी जाती है, इसी से मिनिस्टरों की सफेद टोपी पर टिनोपाल चढ़ता है, इसी से गुर्गों की आवाज बंद और दुनिया की नजर बंद की जाती है, इसी से कासम अली साठे पर पाठे बनते हैं और जवान हसरतों के खुले अंगों पर रस बरसाते हैं।

मगर'''यह सब-कुछ होने पर भी न निशा को इन सब कारनामों का पता है और न ही उसकी मां को और न कोई उन्हें यह सब बताना चाहता है। मां भगवान की पूजा में लीन रहती है निशा अपने अरमानों में डूबी रहती है और अपनी इस वदिश जिंदगी पर विचारती रहती है—न विचारे तो करे भी क्या। सब कुछ है मगर न जाने फिर भी उसके जीवन में कौन-सी कमी है ?

कासम अली ने अपनी जिंदगी से कभी बाहर झांकने पर विचार भी नहीं किया। वे अपनी जिंदगी के दायरे में इतने लीन रहते थे कि घरवालों की खुशी का कभी ख्याल ही नही करते थे। वो तो यही समझते थे कि घर है, पैसा है और जिस तरह वे अपनी खुशी और सुख पैसे से खरीदते है, वैसे उनकी पत्नी और बेटी भी खरीद सकते हैं। सच पैसा मनुष्य को कितना अंधा और बेहया बना देता है। पढ़े-लिखे विचारशील आदमी भी कितने अंधे हो जाते हैं और फिर यह रोग भी छूत की तरह फैलता जाता है।

था मगर बैठता नही तो क्या करता।

मैं सोचने लगा आदमी मे काम्प्लेक्स बड़ा खराब होता है। इसी काम्प्लेक्स मे सब मरे जा रहे हैं। हम जहा दूरी रखनी चाहिए वहां तो रखते नही और छोटी-छोटी बातों मे इंसानियत को खत्म किये जा रहे हैं। इन्फीरियरिटी काम्प्लेक्स, सुपीरियरिटी काम्प्लेक्स आखिर दोनों ही खराब है। ये ग्रंथियां खत्म हो जायें तो कितना अच्छा हो मगर न ग्रंथिया मनुष्य को छोड़ती है और न मनुष्य इन्हें छोड़ पाता है।

ठंडी हवायें आने लगी थी। भाभी पर शबाब भरी मस्ती बढ़ती जा रही थी। होना भी चाहिए। और जब देवर साथ होता है तो क्या पूछना, उस चुलबुलाहट में एक अजीब मस्ती और चटपटापन आ जाता है।

शहर से काफी दूर पहुच चुके थे। निशा बड़ी स्मार्टली कार ड्राइव करती है। कार बड़ी तेजी से चली जा रही थी जैसे कोई हसीन लड़की को लेकर भागा जा रहा हो। समुदर की उछलती लहरें दूर से ही दिखायी देने लगीं। मुझे समुद्र के किनारे बैठे रहने में बड़ा मजा आता है। एक के बाद एक मस्ती से उठती लहर जीवन के प्रति नयी प्रेरणा पैदा करती है। आशायें दुगुने उत्साह से उमड़कर जीवन को संवार जाती हैं। शांत क़ुदरत के वातावरण मे असख्य लहरों का मधुर रव, किनारों की बालू को आकर छेड़ जाता है और हर बहाव के साथ न जाने कितने शंख, सीप, घोंघे आकर किनारे पर इस तरह पड़ जाते हैं जैसे नायक-नायिका थककर अलसकर अपनी थकान मिटाने अलग-अलग लेट गये हों। कल्पना यहां आकर कई रंगों से सज जाती है। यहा मैं अनगिनत बार आया होऊंगा, घंटों किनारे पर बैठकर कुछ-न-कुछ विचारता रहा हूं, कहानी और कविताओं के विषय चुराकर ले गया हूं। इन लहरों के अगों से लिपटा हूं—और सांझ होने पर फिर आने की आस लेकर लौट आता हूं···।

'आपको सागर तट अच्छा लगता है न भाभीजी !'

'मगर लखनऊ मे सागर कहा। वहा तो गोमती के किनारे बैठकर अपनी फ्रेंड के साथ कई दिन बिताये है। बंबई मे जरूर सागर साथ ही है। घर की बालकनी से मचलता हुआ सागर बड़ा अच्छा लगता है।····'

'मुझे सागर से कुछ अधिक प्रेम है भाभीजी !'

है। हर जगह दो शब्द बोलकर अपनी अधुनातन विचारधारा बताकर अपने झंडे को टेका लगाते ही रहते हैं और फिर इतनी अक्ल तो गधे को भी होती है कि कहां पर कैसी राग आलापे। कृष्णचदर के गधे जब आत्मकथा लिख सकते हैं और नेफा में पहुंचकर पेकिंग की यात्रा कर सकते हैं तो फिर उनसे ये क्या कम हैं।

नजीर हुसैन पता नहीं क्यों जचा नहीं। कभी कुछ और कभी कुछ कहने वालों की गाड़ी ज्यादा दिन पटरी पर चलती भी नहीं और लोग समझ भी जाते हैं भले ही कोई कुछ कहे नहीं। कासम अली इस दृष्टि से कहा जाये तो बड़े 'पालिश्ड' हैं, मजी हुई बात करते हैं और कोई उन्हें बातों से पकड़ना चाहे तो बहुत मुश्किल है। नजीर हुसैन के बाल अभी काले हैं इस मामले में। उनके साथ परिचय में यह भी मालूम पड़ा कि नजीर हुसैन आधुनिक विचारों के आदमी हैं। धर्म में उनका विश्वास नहीं और मानवतावादी सिद्धांतों को प्रधानता देते हैं। विवेकानंद पर एक दिन उन्होंने दो शब्द कहते हुए धर्म की संकुचितताओं पर भी प्रकाश डाला था और धर्मों की आत्मा यानी कि लव—यूनीवर्सल लव पर जोरदार शब्दों में दलील की थी मगर मुझे बाद में याद आया भाषण आखिर भाषण ही है—जो बोलते हैं वो किया कहां जाता है अगर ऐसा होता तो हिंदुस्तान क्या बर्बाद होता और लगा नजीर हुसैन अंदर से खोखले हैं।

× × ×

अरविंद और भाभी को घुमाने-फिराने के लिए यूनिवर्सिटी से छुट्टी ले ली थी। अरविंद काफी दिनों बाद आया था और इस बार तो भाभी भी थीं। यूनिवर्सिटी का काम, और काम तो चलता ही रहता है जिंदगी भर।

भाभी को यह जगह बड़ी अच्छी लगी। छोटी मगर आकर्षक। सुंदर शहर की बसावट, अच्छे-अच्छे खुले हवादार मकान और हर मकान के बाहर लगे बगीचे, उसमें हंसते-खिलते फूल, खुशनुमा क्लाइमेट।

सामान सारा बंध चुका था। निशा कार लेकर आ गयी थी। भाभी शलवार-कुर्ते और दुपट्टे में कॉलेज की स्टूडेंट लग रही थी। रामू ने सारा सामान रखा और रवाना हो गये। निशा ने ड्राइव किया भाभी भी आगे बैठ गयी थी और हम तीनों पीछे। रामू थोड़ा साथ बैठने में झिझक रहा

जिंदगी सूनी-सी ही है···और फिर।'

'अरविंद मैं भी कई बार यही सोचता हूं। पिताजी तो नहीं पर मां कितनी जिद करती है···मां को कुछ जवाब नहीं दे पाता हूं···पर अरविंद तुम तो जानते हो मुझे। बस एक ऐसा हमजोली मिल जाये जो मेरी पसंद का हो, जिसे देखकर मैं अपनी जिंदगी के सारे गम भूल जाऊं, जिसकी भोली-भाली सुरतिया में खोकर मुझे लगे इससे आगे कोई जिंदगी का सुख नहीं। अरविंद मुझे पत्नी ही नहीं एक साथी भी चाहिए, एक दोस्त। जो मेरी कविता की सूरत हो, मेरी कल्पनाओं का साकार रूप हो। अरविंद सब आदमी भाग्यवान नहीं होते। कभी-कभी तो मैं अपने आप के बारे में सोचता हूं तो रो उठता हूं···। मेरी जिंदगी में एक इच्छा है कि मैं कुछ बनूं, अगर कहीं इस जिंदगी के रास्ते में भटक गया तो कहीं का नहीं रहूंगा। जब भी घर जाता हूं हर बार यही बात उठती है। घर के सभी लोग यही कहते है—शादी कर लो और मैं निरुत्तर हो जाता हूं। क्या कहूं और क्या करूं ? कितनी जगह गया मगर सब जगह से वापस यूं ही लौट आया। कहीं पर इस दिल को बसेरा नहीं मिला। सब यही सोचते है मैं उनसे कुछ छुपा रहा हूं। मगर कुछ हो तो छिपाऊं। कभी-कभी तो मैं अपने आप से उदास हो जाता हूं।'

'तो फिर अनु कोई इंटरकास्ट मैरिज क्यों नहीं कर लेते ?'

'अरविंद मेरी ही इच्छा का प्रश्न थोड़े ही है।···इतना बड़ा समाज है, माता-पिता, छोटे भाई-बहिन···'

'अनु देखो न समाज कितना आगे बढ़ गया है···। समाज आदि तो उस समय बनाये गये थे जब हम अपनी प्रीमिटिव अवस्था में थे और समाज तो संकुचित युग की देन है। आज दुनिया बदल गयी है···'

'यह सच है अरविंद लेकिन इन दुनिया वालों को कौन समझाये। लोग तो जरा-सी बात का पहाड़ खड़ा कर देते है। मुझ जैसा भावनाशील व्यक्ति···'

'तभी तो कहता हूं कि तुम कहो तो···'

'क्या ?' मैंने आश्चर्य से पूछा···।

'यही कि निशा···'

'क्यों ?'

'क्योंकि सागर एक तो कभी बुड्ढा नहीं होता और फिर उसकी सीमा कितनी बड़ी है, कितना गंभीर होता है यह, और फिर यह इंसान के साथ कभी धोखा नहीं करता। कभी दुःखी नहीं करता, सताता नहीं है यह इंसानों की तरह।'

निशा ने थोड़ा मुड़कर पीछे देखा···और आसभरी निगाहों से देखकर फिर आगे की ओर मुह कर लिया।

किनारा आ गया था···कार पार्क कर दी गयी। हम सब कार के बाहर आकर देखने लगे कि कहां पर बैठा जाये। इधर-उधर कुछेक लोग और भी थे। रामू हमारे हुक्म का इंतजार कर रहा था।

सारा बीच खुला और चमकीला था। ज्यादा दूर जाने की बजाय पास ही में बैठना अच्छा समझकर रामू दरियां ले गया और बिछाकर आ गया। हमने कार में अपने कपड़े रख दिये और स्वीमिंग ड्रेस पहनकर चलने को तैयार हो गये। अरविंद भी तैयार हो चुका था। मैंने भाभीजी से पूछा—'क्या आप स्विम नहीं करेंगी ?'

भाभीजी ने मेरा उत्तर देने की बजाय निशा से पूछा—'क्यूं निशा, क्या इरादा है ?'

'मुझे तो स्वीमिंग आता ही नहीं। आप लोगों को देखने में ज्यादा आनंद आयेगा।'

'स्वीमिंग नहीं आता तो क्या किनारे पर ही बाथ ले लेना', और भाभीजी का साथ देने निशा तैयार हो गयी।

समुद्र शांत ही था, लहरें भी किनारे पर कोई बड़ी नहीं थीं। अरविंद ने कहा चलो यार अब किसकी देर है और हम दोनों चल दिये। रामू ने खाने का सारा सामान इतनी देर में वहां बैठने की जगह पहुंचा दिया था। हम लोगों को चैन कहां था। बड़े दिनों के बाद समुद्र की लहरों का साथ मिला था···

'अनुराग'···अरविंद बोला।

भाभी और निशा अभी कार के पास ही थे। मैंने कहा—'हूं।'

'अब तो यार कोई लाइफ पार्टनर बना ही डालो। इसके बिना

स्टूडेंट प्रोफेसर के लिए सबसे अच्छी पत्नी हो सकती है। और फिर निशा जैसी स्टूडेंट। तुम भी कवि हो और वह भी···। यह तो आलम और शेख की जोड़ी रहेगी और—और निशा मेरी बहुत अच्छी फ्रेंड है, मैं उसके मन की बात पूछकर देखूंगा···।'

मैं थोड़ी थकान महसूस कर रहा था। मैंने कहा—'अरविंद चलो किनारे पर···थोड़ा बैठेंगे।'

मैंने देखा रामू खाने-पीने की चीजों के पास बैठा-बैठा अखबार के पन्ने पलट रहा था। वह जब आया था तब उसे पढ़ना-लिखना नहीं के बराबर आता था। मेरे साथ रहकर उसने पढ़ना सीख लिया और दिन भर बैठा-बैठा किताबों के पन्ने पलटता रहता है। छोटी-छोटी कहानियां पढ़ता रहता है। दीन-दुनिया की खबर अखबार के पन्नों में से ले लेता है। मैंने कहा, 'रामू तुम नहीं नहाओगे क्या ?'

'नहीं सा'ब···'

'नहीं क्या चल···बैठे-बैठे क्या माला जपेगा। चल झट। कितना मजा आ रहा है। अभी तो खाने में देर है।'

रामू ने मेरा कहना नहीं टाला। और फिर उसकी भी तो समुद्र में नहाने की आधी इच्छा तो पहले से थी ही। हम लोग किनारे पर आकर बैठ गये।

सागर की लहरों के साथ सीप शंख आकर किनारे पर पड़ जाते थे। भाभी और निशा अच्छे-अच्छे शंख सीप उठा-उठाकर देखती जाती थीं और रख लेती थीं।

मौसम सुहाना था। धूप भी ज्यादा तेज नहीं थी इसलिए सनबाथ में भी बड़ा मजा आ रहा था। हम लोग सूखी रेत पर आकर लेट गये। भाभी और निशा भी···।

अरविंद को अचानक याद आया कुछ चिट्ठियों के जवाब देने थे। उसने अभी तक जवाब दिये नहीं थे सो भाभी से उसने पूछा, 'क्यों शशि, लखनऊ वाली चिट्ठी का जवाब तो तुमने दे दिया है न···'

'जी हां···आपने कहा था तभी···'

'और कलकत्ते···'

'नहीं अरविंद, नहीं। निशा एक अमीर खानदान की लड़की है। वह उस महल में रहने वाली है जिसे मैं अपनी इस जिंदगी में तो पा नहीं सकता…कालीनों पर चलने वाली 'निशा' वह जो नाज नखरों में पली है, जिसने कभी शायद ही कोई काम हाथ से किया हो, जो कभी पैदल न चली हो…उसे मैं क्या दे सकता हूं। उसे मेरे यहां आकर क्या मिलेगा। जो इस वातावरण में पला हो वह सुनसान वातावरण में कैसे रहेगा…'

'नहीं अनुराग तुम नहीं जानते, निशा ऐसी लड़की नहीं है…'

'अरविंद वह शायद मेरे बारे में अभी कुछ नहीं जानती…सिर्फ यह जानती है कि मैं एक प्रोफेसर हूं और जब उसे मेरी गरीबी का पता लगेगा तो शायद…'

'नहीं अनु, ऐसा नहीं हो सकता। और तुम तो सोसाइटी में रेसपेक्टेबल पोजीशन रखते हो। अच्छी तनख्वाह मिलती है।'

'मैं नहीं चाहता अरविंद कि उसे किसी प्रकार की तकलीफ हो। उसके अरमानों का गला घुटे।'

'अनु, निशा एक भावुक और समझदार लड़की है। तुमने अनुभव किया या नहीं यह मैं नहीं जानता मगर वह तुम्हें अवश्य चाहती है। मैं दो रोज में ही अनुमान लगा चुका हूं और मैं भी सोचता हूं वह तुमको पाकर सबसे ज्यादा सुखी होगी। और तुम भी उसे पाकर कहोगे सच जीवन का कितना अच्छा मीत मिला है।'

हम दोनों तैरते-तैरते बातों में लीन थे। निशा और भाभीजी किनारे पर आकर पानी में बैठ गयी थी। लहरें उन्हें छू-छूकर हमारे पास हर बार लौटकर आ जाती थी। मैंने देखा दोनों बातों में मशगूल थीं। दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी लग रही थी।

अरविंद ने कहना शुरू रखा था, 'तुम कहो तो निशा से पूछ देखूं।'

'नहीं अरविंद। निशा क्या सोचेगी। वह कभी इस बात का उत्तर तक नहीं देगी। और मेरा फिर पढ़ाना मुश्किल हो जायेगा। एक प्रोफेसर एक विद्यार्थी से कैसे…'

'तुम क्या सोचते हो अनुराग! कुदरत का खेल कोई नहीं जानता। प्रोफेसर और स्टूडेंट है तो क्या हुआ? यह सब समय की बात है। एक

तो है नहीं कि न बनी तो डाइवोर्स दे दिया और फिर कहीं दूसरी जगह बसेरा बना लिया···मुझे पवन का विचार झिड़की दे गया।

मेरे मन ने मुझे दुतकारा—आखिर तुम क्या चाहते हो ? तुमने कभी मा, बाप की अवज्ञा नहीं की और फिर इस बार क्यों ? मैं झुंझला उठा—अवज्ञा अमर ने भी नहीं की अपनी मा की···मा के एक इशारे पर उसने भी अपने जीवन को खूटे से बाध दिया। माथे पर सेहरा बांधकर वह भी ले आया अपनी दुल्हन को और पुराने अनाड़ियों की तरह उसने भी पहली रात बेडिंग नाइट कर ली थी···उमा अमर की पत्नी ने भी शरमाते-लजाते अपना तन अमर को सौंप दिया था और अमर ने उपभोग्या नारी शरीर को और पहली बार उसने उसे इतने नजदीक से देखा था···और फिर इसी तरह कई रातें बीती थी परिणाम में उमा को लड़का भी हो गया था। दोनों एक गृहस्थी की तरह खुश थे। उमा को अमर ने लड़का पैदा करके काम सौंप दिया था। उमा दिन-भर उसके लालने-पालने में लगी रहती थी। अमर भी अपने काम में लगा रहता था और जब शरीर की भूख जागती थी शांत कर लिया करता था।

किंतु मैरिज केवल शारीरिक उपभोग के लिए ही नहीं है। यह तो उसका एक पहलू है।

अमर यह सब जानते हुए भी न जान पाया। उसका मन उमा पर से उठने लगा। औरत का प्यार बच्चा होने पर बट जाता है और फिर पति को उतना प्यार नहीं मिल पाता। उमा का ध्यान भी आधा बच्चे की देख-भाल में लगा रहता। अमर को क्या हुआ क्या नहीं मगर उसकी जिंदगी में ट्रेजेडी का अध्याय शुरू हो चुका था जो स्पष्ट दीख रहा था। और इस दुखांत अभिनय को दोनों मौन साधे कर रहे थे। दिल की आग जब मौन होती है तो ज्यादा सुलगती है और अंदर-ही-अंदर खाये जाती है। उमा पढ़ी-लिखी नहीं थी इसलिए उसने कभी कुछ प्रश्न नहीं खड़ा किया और अमर ने भी कभी उसे जाहिर नहीं होने दिया।

उसकी जिंदगी का एक-एक पन्ना हवा में यूं ही उड़ने लगा। उमा भारतीय पवित्रता धर्म की अग्नि में घी बनकर होम होती रही।

'मैं इस प्रकार की जिंदगी को देखकर घबरा उठता था। लाइफ में

'वो भी लिख दिया···'

अरविंद कुहनियों के बल ऊंचा होकर शशि को देखने लगा—कितनी अच्छी है शशि।

अरविंद को देखने पर शशि भाभी मुस्करा दी···।

मैं उठकर आइस्क्रीम कप्स आइस्क्रीम बाक्स में से ले आया और वहीं धूप में बैठकर आइस्क्रीम की ठंडक का मजा लेने लगा।

दिन भर बड़ा सुंदर वातावरण रहा। पता ही नहीं चल पाया कि समय कहां बीत गया और शाम को आंचल जब ढलने लगा तो हमने वापस लौटने की तैयारी की।

'ऐसी पिकनिक और सैर तो बरसों में कभी एक हो पाती है—' भाभी बोल उठी।

'हम तो कई बार कहते हैं मगर तुम चलती ही कहां हो—' अरविंद ने शिकायत के लहजे में कहा।

'चलें भी कहां एक ही जगह बार-बार जाने को जी भी नहीं करता और फिर निशा जैसी साथी अभी तक बंबई में कोई बन भी नहीं पायी।'

'यानी कि मेरी बात सच थी ना भाभीजी कि 'निशा' को देखकर आप भी कहेंगी कि क्या साथी ढूंढा है?'

शहर की बत्तियां जगमगा गयी थीं। अंधेरे का हल्का-हल्का झुरमुट फैलने लगा था। कार चली जा रही थी और हम एक-दूसरे के साथ बातों में गुम थे—कभी एक कहकहा छूट जाता था—मैं और अरविंद खिलखिला उठते थे—भाभी और निशा मुस्करा देते थे—रामू यह सब देखा करता था—वह चुप था।

× × ×

सागर की लहरों के बीच में उठी अरविंद के दिल की अचानक तरंग 'अब तो यार कोई लाइफ पार्टनर बना ही डालो' मेरे मन को बार-बार कोंच रही थी।

—लेकिन हर किसी को चलते रस्ते कैसे लाइफ पार्टनर बना लिया जाय। पत्नी कोई ऐसी-वैसी चीज तो है नहीं जो नापसंद होने पर वापस लौटा दी जाय। आखिर मैरिज पूरी लाइफ का कनेक्शन है? ये कोई वेस्ट

बैठता था। सो उसका दिल का सोज तो कम हो जाता था। उमा कहां जाती।

मै जानता ■ उमा एक हिंदुस्तानी औरत थी पूरी। बोलती बहुत अच्छा थी। अमर मेरा अपना अन्यतम मित्र था इसलिए उसके यहा कभी भी हो आया करता था। भले ही अमर हो या न हो। मुझे वहां पर थोड़ा घर जैसा लगा करता था। मा मुझसे भी अमर जैसा ही प्यार करती थी। दो घडी भाभीजी से भी बात हो जाती थी।

मुझसे अपनो का दुःख नही देखा जाता। मन-ही-मन घुटते देखकर मुझे चैन नही पड़ता।

'भाभी, आजकल आप बहुत उदास रहती है। पहले की तरह आपको हंसते-गाते नही देखा—।'

'नहीं तो जी—मै तो वैसी ही हू। सौरभ की देखभाल में बस दिन निकल जाता है और फिर 'ये' अपनी पढाई मे ज्यादा काम होने की वजह से लगे रहते है।'

'नही भाभी, आप मुझसे कुछ छुपा रही है, हम कोई दूसरे थोड़े ही हैं भाभी···बताओ ना···'

भाभी का गला भर आया और आखें डबडबा आयी। उसी तरह जिस तरह कोई दु:खी हमदर्दी पाकर रो उठता है और गम हलका कर लेता है। मगर वे कुछ बोली नही टालकर रह गयी।

न अमर ने कभी कुछ कहा···

न ही भाभी ने कुछ कहा···

घर की बात कहने से बनता भी क्या है बिगड़ता ही है। जग हंसाई ही होती है। और फिर मैने भी बात पूछकर उनके मन को कुरेदने की नही सोची—यह अच्छा भी नही है।

लेकिन ये सब घटनाये मेरे मन मे बार-बार सुई की नोंक की तरह चुभती रही। उमा मे भी कोई दोष नही है, अमर में भी कोई दोष नही फिर कौन-सी कमी है? ये मनमुटाव कहा से आया? क्या अमर किसी और से विवाह करना चाहता था जिससे वह प्रेम करता हो। अगर यही था तो फिर इस विवाह के लिए उसने हामी क्यो भर दी?

अगर वो कुंवारा होता तो अवश्य ही···किंतु उसके लिए अब एक युग बीत चुका था।

मुझे जिंदगी सागर के द्वीपों-सी लग रही थी।

× × ×

नजीर हुसैन का बंगला कासम अली के बंगले के बगल वाला ही था। दोनों बंगले रईस आदमियों की कोठियां थी और इतने बड़े कि अगर गरीबों को दिये जाते तो उन दोनों कोठियों में कम-से-कम तीस परिवार रह सकते थे मगर रईसों के चोचले कुछ अजब ही होते हैं।

जहां पर ये कोठियां थी वह जगह शहर से काफी दूर थी जहां आमने-सामने खुला कुदरत का मैदान था और पीछे कई एकड़ में लगा प्राइवेट पार्क जो विक्टोरिया गार्डन के नाम से मशहूर था। वहां आम जनता आ-जा नहीं सकती। इस रोड पर तीन-चार कोठियां और हैं वो भी इसी तरह धनवान आदमियों की हैं। इस रोड का नाम भी अंग्रेजों का रखा हुआ है—वेस्टर्न ड्राइव।

नजीर हुसैन की बीवी दूर के रिश्ते में कासम अली की भतीजी होती है यानी कि नजीर हुसैन एक तरह से चचेरे भाई भी है, और दामाद भी। मुस्लिम धर्म में यह सब होता है। उसका नाम वहीदा था और वह कासम अली को चचाजान ही कहा करती थी। ससुर का परदा उसने हटा दिया था। निशा को वह अपनी छोटी बहन की तरह ही मानती थी जो कि साधारण रूप से एक रिश्ता ही था। और शादी के बाद तो रिश्तों का रंग और भी फीका पड़ जाता है। अच्छा-भला घर जिसमें सब कुछ अपना होता है, घड़ी भर में पराया हो जाता है और फिर निशा तो एक दूसरी की लड़की थी। कानून ने उसे उनकी बेटी ही बनाया था। औलादी प्यार देना तो इंसान के अपने बस की बात होती है। अपने और पराये की दरारें अगर मुंद जायें तो कहना ही क्या—दिलों के रिश्ते न जुड़ जायें। मगर इंसान तो लालच का पुतला है। बिना प्रतिदान के अगर किसी में कुछ करने की मासूम भावना है तो वह फिर फरिश्ता है और दुनिया की नजर में बेवकूफ, एक पागल। जिसे जीने की इजाजत कम और मरने का हुक्म ज्यादा होता है।

'आफ्टर आल मैरिज इज एन एडजस्टमेंट' मुझे ये पंक्ति बार-बार उलझाती रही। आखिर एडजस्टमेंट भी कब तक हो। एक बार, दो बार सारी जिंदगी तो एडजस्ट करने में नहीं गुजारी जा सकती फिर एक महत्वाकांक्षी किस प्रकार इस तरह य ही अपना जीवन समाप्त कर दे।

मेरे सामने पांच-छः वर्ष पहले जोड़ी गयी पक्तियां आ गयी जब मेरी एक फ्रेंड अरनी ने इसकी काफी तारीफ की थी और जब भी मिलती थी यही कहा करती थी 'इट इज इम्पासिबल टु बी हेप्पीली मैरिज व्हेन हसबैंड एंड वाइफ हैव ए डिफरेंट सेट आफ वेल्यूज, लव फ्लाइज फ्राम द विडो आफ द काटेज आर मेंशन अनलेस टू थिंक एज वन', और फिर अपनी राय देती हुई कहती थी—'इट इज एब्सल्यूटली राइट मि० अनुराग।'

'यस मिस अरनी···एब्सल्यूटली राइट', और अरनी मुस्करा देती।

अमर मेरी हर बात में हां भरता था। अपनी सलाह भी देता था। अनुभवी था तभी हर जगह संभल जाने का इशारा कर देता था। वह मुझको दिल से चाहता था और नहीं चाहता था कि मेरी जिंदगी भी ऊबड़-खाबड़ हो जाय।

'अनुराग—वाइफ इज नाट मियरली ए वाइफ, शी शुड बी ए फ्रेंड मोर, शी शुड हेव डायनमिक पर्सनलिटी', अमर अक्सर कहा करता था।

पढ़ने-लिखने के बाद तो दृष्टि और भी अधिक सोचने-विचारने लगती है, व्यापक हो जाती है। फिर उसको बड़ी-बड़ी आशों मे खो जाने की आदत हो जाती है। मीठी मधुर बातों के भुलावे में डूब जाना चाहता है, जी चाहता है उसका साथी घंटों बैठा उसके साथ बातें करता रहे, मस्ती से कुदरत की हसीन वादियों में, झरने के किनारे झुरमुटों में, चादनी की बरसात में अल्हड़ता से झूमता रहे जहां जुवान भी बेजुवान हो जाये।

वेस्टर्न इन्फ्लुएंस से जिंदगी जिंदगी के अधिक निकट पहुची है। रोमांटिसिज्म लहरा उठा है। पुरानी विचारधारा का यहां कान्फिलिक्ट है। यह तो होता ही आया है और होता ही रहेगा···

'इट'स ए यूनिवर्सल ट्रुथ' अमर का रिमार्क था।

अमर की बातों से मैं समझ गया था अमर को कैसी पत्नी चाहिए थी।

पर बड़ा काम भी चुटकी में हो जाता है जैसे प्यादे के जोर पर वजीर बादशाह को शय दे दे किंतु जब वजीर पर जोर आता है तो वजीर तो बच जाता है किंतु उस प्यादे का फिर कहीं पता नहीं चलता। समाज की शतरंज भी कुछ ऐसी ही जमी हुई है।

नजीर हुसैन अवश्य ही इस चाल में माहिर होना चाहिए—ऐसा मेरा अनुमान था वरना नौ और नौ निन्यानवे कैसे होते।

मैंने नजीर हुसैन को कभी शक की दृष्टि से नहीं देखा क्योंकि शक हो जाने पर मिटना मुश्किल होता है और यह रोग जिसे न लगे उतना ही अच्छा है। हर व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार देखना मुझे ज्यादा रुचिकर लगता है क्योंकि आखिर इंसान परिस्थितियों का गुलाम ही तो है। और प्रवृत्तियों की आलोचना व्यक्ति की आलोचना नहीं होती। अगर हम समय के संदर्भ में सबको समझने लगें तो फिर समाज का ढांचा कभी असंतुलित ही न हो या कभी अवरोध उत्पन्न न हो। किंतु समाज का दर्शन कभी एक नहीं होता। हर एक में दृष्टिभेद होता ही है।

भूले भटके कभी जब कासम अली के साथ मिल चला जाता था तो वहीं पर नजीर हुसैन से दृष्टि मिलन हो जाता था और औपचारिकता के नाते मैं पूछता—'कहिये कैसे है ?' और प्रत्युत्तर भी यही होता था—'आप कैसे हैं ?' इसके अतिरिक्त कोई बात कभी इलास्टिक की तरह नहीं बढ़ती थी। और मैं कासम भाई के पीछे-पीछे इधर-उधर नजरें डालता बढ़ जाता था।

'यहां मैं बैठता हूं।'

'मैनेजिंग डायरेक्टर' चैम्बर के बाहर काली प्लेट पर सफेद अक्षरों में लिखा था···मैंने देखा काली प्लेट सफेद अक्षर···

'यह आफिस···'

एक दो···पांच···आठ···*बीस क्लर्क, एकाउंटेण्ट, सुपरिन्टेडेंट*···

'गुड इवनिंग···सर !'

'गुड इवनिंग—शी इज माई सेक्रेटरी एंड स्टेनो···मिस कूपर···'

'आओ अंदर चलें···'

मैंने मुड़कर फिर एक दृष्टि डाली, 'शी इज माई सेक्रेटरी एंड स्टेनो'···

वहीदा की शादी भी नजीर हुसैन से इसीलिए कर दी गयी थी कि वे नहीं चाहते थे कि कोई दूसरी लड़की आकर उनकी संपत्ति का आनंद उठाये। नजीर हुसैन की इच्छा का तो इसमें कोई प्रश्न ही नही था क्योंकि जिस पतंगे को दलदल में फंसकर मरने की आदत हो वह शमा पर जलकर मरना कैसे पसंद करता है।

'मैं अक्सर नहीं कभी-कभार चली जाती हूं उनके यहां जब बुलाती है दीदी, वरना मुझे अच्छा नहीं लगता। अकेले रहते-रहते अब आदत भी ऐसी हो गयी कि कहीं जाने को जी नहीं चाहता और जब किताबों से जी ऊब जाता है तो शायरी से दिल लगा लेती हूं।' निशा का यह करेक्टर मुझे बुझा-सा ही भाया। चार जनों में बैठो तो फालतू की बातें ज्यादा, एक-दूसरे की बुराई चौगुना होती है। दोनों की कोठियों में कोई चार कदम का फासला न होने पर भी उनकी मुलाकात रोज नहीं होती थी। कासम अली भी होली दीवाली भले ही चले जाया करते थे।

पहले तो यह कोठी भी कासम भाई की अपनी थी मगर वहीदा को उन्होंने शादी में दहेज में दे दी थी और दरअसल दहेज क्या घर की चीज घर ही में थी मगर नजीर हुसैन इससे बहुत खुश हो गये थे। वहीदा को भी रहने के लिए अच्छी कोठी मिल गयी थी। और इन सबके अलावा कासम भाई का नाम भी हो गया था कि उन्होंने कितना अच्छा कीमती दहेज दिया। बाकी की जायदाद उन्होंने निशा के नाम करने का विचार किया था। नजीर हुसैन को भी इस बात की भनक पड़ गयी थी मगर वह दूसरों के जातीय मामलों में हस्तक्षेप करना जरा मुश्किल समझता था। उनके दिल में बार-बार यह बात उठा करती थी कि किस तरह वह और धनवान बन जाये।

धनवान होना बुरा नहीं है मगर उसके पीछे पड़ना बुरा है और बुरा तब और भी अधिक हो जाता है जब वह इंसान के हैवान हाथों से निकलने लगता है। और जब वह पैसा गरीब के हाथों पहुंचता है तो उसको यह खयाल नहीं रहता कि वह उनसे क्या करवायेगा। और अक्सर हर काम गरीब मजदूरों के द्वारा ही होते हैं। आंखें मूंदकर सोचते है, उनको पैसा भी मिल जाता है, सेठों की मेहरबानी हो जाती है और सेठों का थोड़े से जोर

वही उनकी काम करने की अदा। बुड्ढे क्लर्कों का कान में कलम खोंसकर नाक पर चश्मा। नीचे तक टंगे हुए चश्मों के बिल्लोरी काचों में से साठ डिग्री के एंगेल से चौपड़ों को देखना, लंबा कोट और धोती पहनावा। थोड़ी-सी देर में छीकनी निकालकर नाक के नथुनों से ऊपर चढ़ाते हुए सूघ लेना। मगर काम में पूरे पाक। एक-एक पाई का हिसाब इस तरह रखें कि घटे न बढ़े। दो-एक बाबू जो जवान थे माडर्न बनकर आते थे। इस्त्रीदार कपड़े, खुशबूदार तेल या फिर फुलेल की खुशबू लगाये जैसे उनका सारा इम्प्रेशन मिस कूपर पर पड़ रहा है और मिस कूपर उन पर ही मरी जा रही है। क्लर्कों की भी जिंदगी क्या है। एक अजीब हुलिया, अजीब वातावरण, अजीब हंसी और रिसेस में दबी मन की भड़ांस भद्दे जोक्स में फूटकर बाहर आती है तो सारा व्यक्तित्व उनका बिखर जाता है। पैसा और औरत सारी बातें घूमकर वहीं आकर टिक जाती हैं। कुछ भी बात हो कैसी भी बात हो मगर आखिर निष्कर्ष यही पहुंचेगा खूब पैसा हो और अच्छी औरत हो और फिर अपने खीसें निपोरते चाय के चार-चार आने होटलवाले को देकर पान का बीड़ा बंधवायेंगे, दस नये पैसे उसे देंगे और रिसेस खत्म होने के पांच मिनट बाद आकर फिर अपनी टेबलों पर बैठ जायेंगे। मगर क्लर्क क्लर्क ही होता है। सारी जड़ें तो इन्हें मालूम होती हैं व्यापार की और अकाउंटेंट के पास होती है चोटी मालिक की जो वफादारी से उसे पकड़े रहता है और वफादारी उसकी जेब पर टिकी रहती है।

'आओ चलें प्रोफेसर' मिल काफी बड़ा था और पूरा देखना मुश्किल था। आधे में ही कासम भाई बोल उठे।

'हां जी'''चलिये।'

सब मजदूर देख रहे थे आज मालिक किसे लेकर आये हैं। और बड़े शौक से घुमा रहे हैं। और इस तरह देखते थे जैसे कि नया मालिक उनका आया हो और सारी चीजें देख रहा हो।

चपरासी ने चेम्बर का दरवाजा खोला'''।

'और ये हैं प्रोफेसर अनुराग मिस कूपर'''मिस कूपर ने हाथ जोड़ लिए'''। मैंने भी।

कमाल हैं कासम भाई भी। पहले उसका परिचय कराया, लौटते वक्त

मिस कूपर।'

मिल की खट-खट और मशीनों की शर्र···र···र···आवाज घड़ी के साथ चौबीसों घंटों चलती है। दीवार पर लटकी घड़ी इस बात की गवाह है क्योंकि वह भी चौबीसों घंटे चलती है केवल काम करने वाले पलटते हैं। एक पाली, दो पाली, तीन पाली चलती है और हजारों कारीगरों की जिंदगी के लाखों घंटे कपड़ा बुनने में बीत जाते हैं। आदमी मशीनों पर लगे हैं। औरतें हल्का काम करने में लगी हैं। दूर-दूर से आये हुए कारीगर हैं।

एक से एक डिजाइन के कपड़े।

एक से एक कारीगर—पुरुष···एक से एक औरतें···।

कासम अली जगह-जगह रुकते हैं···बताते हैं। सारा प्रोसेस इन्हें मालूम है किस प्रकार कपड़ा बनता है। मैं आधी नजर उनकी बातों पर आधी इधर-उधर हां हूं करता जाता हूं···मालिक को देखकर सब झुककर सलाम करते हैं और कासम भाई हल्का-सा सर झुकाकर आगे निकल जाते हैं।

'कला गरीबों के पास होती है या कलाकार गरीब होता है' मगर कला युगों से गरीब रही है। हिंदुस्तान में तो कम-से-कम यह सच ही है। ये गरीब कारीगर सौ-डेढ़ सौ लेकर अपने हाथों की बारीकी बेच देते हैं इसलिए कि इन्हें दो जून रोटी मिल सके। और ये औरतें, लड़कियां काम करने वालियां काम भी करती हैं, मालिकों के हुक्म की शिकार भी बनती हैं···और हुक्म बजा दिया तो दस-पांच और मिल जाता है और नहीं तो हिसाब चुकता।

'हूं···बहुत बड़ा मिल है अंकल।' मैंने यूं ही बीच में एक पुल बना दिया।

मिस कूपर अट्रेक्टिव है। अंग्रेजी पहनावा पहनती है। और भी अच्छी लगती है। बाब कट हेयर काले रंग के, स्लिम बाडी। सेक्रेटरीज ऐसी ही होती हैं, ऐसी ही होनी चाहिए। मिस कूपर यानी की पारसी होगी। पारसी लड़कियां अक्सर अट्रेक्टिव होती हैं और स्मार्ट भी। पतली-पतली अंगुलियां टाइप भी जल्दी और अच्छा करती हैं। आफिस में बस वह अकेली ही लड़की थी बाकी सब बाबू थे। क्लर्क। वही क्लर्कों का फैशन,

लुत्फ ही कहां। आप तो इसके प्रोफेसर हैं। आदमी हारा-थका दो-चार शेर सुन लेता है तो बस फड़क उठता है—किब्ला।'

दिले नादां तुझे हुआ क्या है
आखिर इस दर्द की दवा क्या है

'इस दर्द की दवा है शायरी', मैं बोल उठा।

'बिलकुल ठीक बस अंदाजे बयां होना चाहिए।' कासम भाई ने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा।

मैंने सोचा कासम भाई को गालिब काफी पसंद है। गालिब का अंदाज था भी कुछ अजब।

'तो फिर कभी अपनी डायरी लेकर जमाइये महफिल।'

'आप जब भी कहें···'

मैंने घड़ी की ओर देखा छः बजकर सात मिनट हो चुके थे। मैं जाने की सोच रहा था। कासम भाई भांप गये और खुद ही उठते हुए बोले, 'आइये चलें।'

गाड़ी अक्सर वे खुद ही ड्राइव करते हैं। बड़े रंगीन आदमी हैं और बिना उम्र के खयाल के मजाक कर लिया करते हैं।

वही चौराहा····मैं यहीं उतर जाता हूं···'

'जैसा आप हुक्म करें···' और उन्होंने ब्रेक लगाया गाड़ी रुकी। मैंने उतरकर दरवाजा बंद किया। 'धन्यवाद और नमस्ते···'

कासम भाई ने मुस्कराते हुए नमस्ते कहा और फर्र···र्र···र करती उनकी गाड़ी घड़ी भर में आगे निकल गयी। मैं चहलकदमी करता हुआ अपनी राह पर बढ़ गया।

चलते-चलते भी सोचते रहने की बड़ी बुरी आदत पड़ गयी है। मैं इसे छोड़ना चाहता हूं मगर साइकोलोजी वाले कहते हैं हर आदमी अकेला रहता है तो कुछ-न-कुछ सोचता रहता है या फिर अपने आप ही बोलता रहता है। मेरे सामने जल्दी-जल्दी पिछले चित्र भटकने लगे। उस दिन मेरे बहुत मामूली-सी पहचान के मित्र राधेकांत भी कह रहे थे कासम भाई निहायत ही शौकीन मिजाज और सरल स्वभाव के आदमी हैं। बड़े ही मजेदार!

मेरा। शायद उस समय भूल गये होंगे। 'आओ बैठो प्रोफेसर···' कासम भाई चेम्बर में पहुंच गये थे। मैं बाजू वाली कुर्सी पर बैठ गया और दीवार पर लगे इकानामिक्स के चार्टों को देखने लगा। इन दस वर्षों में दस गुनी तरक्की की है मिल ने साफ जाहिर हो रहा था। और कासम भाई दस गुने बड़े इंडस्ट्रियलिस्ट हो गये थे आज। आदमी वही है मगर आदमीयत बदल गयी है। वही कद, वही मुटापा, वही नाक-नक्श और फर्क इतना है कि पहले उनका कोई भाव नहीं पूछता था और आज ये दुनिया का भाव पूछते हैं। हजारों नंगे आदमी और नग्न औरतों के लिए कपड़ा बुनकर मिल में से निकलता है। ये अब के कन्हैया हैं और हजारों द्रोपदी ही नहीं पाडवों की इज्जत का चीर भी ये बढ़ाते चढ़ाते हैं।

बाजू में एक गोल शेल्फ कोने में रखा हुआ था उसमें कुछेक बुक्स मिल से संबधित थी, सब अंग्रेजी में, विभिन्न मैंगजीस पड़ी हुई थी और एक-दो किताबें जनरल पालिटिक्स से सबधित तथा इंडिया ईयर बुक के सैट। मेरे सामने वाली दीवाल पर बहुत बड़ा एक फोटो लगा हुआ था जिसमें मिल का एक व्यू दिखायी देता था और बायीं ओर लगी तस्वीर उद्‌घाटन के समय की थी। मौलाना अख्तर के हाथ में कैंची थी···रिबिन कटकर गिर गया था और बाकी के हाथ तालियां बजाने में थे। दो-चार चेहरे हंसते हुए आ गये थे जो अब भी हंस रहे थे तस्वीर में।

कासम भाई ने आखिरी कागज पर दस्तखत करते हुए कहा, 'प्रोफेसर साहब, आपका शायरी सुनाने का वादा मुझे अभी तक याद है। आप तो शायद भूल गये होंगे।'

'नहीं जी, भूला तो नहीं हूं। कोई मौका ही नहीं मिला।' मैं सोच रहा था इनकी मेमोरी अब भी तेज है। और फिर शायरी का शौक भी गजब है। आदमी जैसे-जैसे उमर पार करता जाता है विचार जवां होते जाते हैं और शायरी तो असल रंग ही तब लाती है। मैंने मुशायरों में बूढ़े शायरों को रस ले-लेकर वो शायरी सुनाते हुए देखा है कि जवान भी मात खा जाये।

'आपको शायरी से बहुत ज्यादा लगाव है।' मैंने कहा।

'अरे भाई, 'अदब' तो जिंदगी का राज है। इसके बिना तो जीवन में

पास के गुलदस्ते से एक फूल तोड़ते हुए मैंने कहा, 'लीजिये यह भी लीजिये। फूल वेणी में बहुत अच्छे लगते हैं।'

'आपको भी।' भाभी ने व्यग्य करते हुए कहा।

'हां भाभी मुझे भी। भला फूल किसे अच्छे नहीं लगते। ये 'एस्थेटिक सेंस' की बात है। क्या हुआ हम अपने बालों में फूल नहीं ल तो तारीफ तो कर सकते है। ईश्वर ने औरतों के साथ खास पार्शलिटी है। सारी सुंदरता बस इन्हीं को दे दी है। लंबी-लंबी घनेरी जुल्फें, मुखड़ा, काली-काली अनियारी दीरघ आखें और...पतले-पतले होंठ सब पर फूल-सी कोमलता, हाला-सा शबाब...'

'बस, करने लगे न कविता...'

'सच भाभी! नारी एक पहेली है। और अगर नारी न हो तो उस बिना जीना ही मुश्किल हो जाय। आकर्षण में बंधकर ही तो इंसा जिंदगी के चार लम्हे आनंद से काट लेता है। उसके बिना तो सब-कुछ नीर है, गमगीनियां हैं और तनहाइयां ही तनहाइयां है।'

भाभीजी मद्धिम-मद्धिम मुस्करा दी। वेणी गूंथकर फूल खोंस दिया... मैं निबटकर आया तब तक निशा आ गयी थी। आज पहली बार निश खाने पर आयी थी। हर बार तो घर तक आने को टालती रही थी। इ बार भाभीजी का कहा उसके लिए टालना मुश्किल था। बाहर पवन अपन मस्ती से बहे जा रहा था जिसके बहने की आवाज अंदर तक आ रही थी। मैंने कहा, 'अरविंद तुम्हें वो पंक्तियां याद हैं अभी तक'—

> अश्रु भरा वेदना दिके दिके जागे
> आज श्यामल मेघे रे माझे बाजे कार कामना
> चलिछ छुरिया अशांतवाय
> क्रदन कार तार गाने ध्वनि हो
> करे के से विरही विफल साधना।[1]

अरविंद ने मेरी ओर देखते हुए कहा, 'मुझे याद हैं अनुराग वो सभी पंक्तिया

---

1. अश्रुपूर्ण वेदना चारों ओर व्याप्त हो गयी। आज इन श्यामल बादलों में किसकी कामना बज रही है, वायु अशांत-सी दौड़ रही है। उसके गीत में किसका क्रंदन ध्वनित हो रहा है, वह विरही विफल साधना कर रहा है।

'हां…है तो सही। हंसमुख चेहरा। मजाकी बातें, निडर व्यक्तित्व और कांपलेक्स रहित एक सोशल फीगर उनके पास है लेकिन मैं इससे भी ज्यादा कुछ जानता हूं जो दूसरे लोग नही जानते। नीचे के लोग नही जानते। वह हाई सोसायटी की बात है। उनकी पर्सनल जिंदगी है वह। ठीक है छोटे लोगों को उससे मतलब भी क्या और अगर जान जाये तो फालतू की बातें भी बनाने लग जायें। ठीक है…ठीक है, यह तो उनकी पर्सनल…'

और कार को बिना एक्सीडेंट किये चले जाने के लिए रास्ते से थोड़ा हटा। सामने से कार आ रही थी। पहचानी हुई कार…कौन, नजीर हुसैन ड्राइव…और ये मिस कूपर…जो उनकी बाजू में बैठी थी…मिस कूपर… मुझे कासम भाई का वाक्य दोहराना पड़ा—'शी इज माई सेक्रेटरी एंड स्टेनो मिस कूपर…' मुझे लगा ऐसा ही जैसे नदी एक डेल्टे को बहाकर दूसरी जगह डेल्टा बना दे—मिट्टी वही मगर जगह दूसरी।

कार आगे निकल चुकी थी। उन्होने मुझे देखा या नही पर मैंने उन्हे पहचान लिया था…।

मि० नजीर हुसैन…

मिस कूपर…।

× × ×

डाइनिंग टेबल पर सब चीजें तरतीब से लगाकर रामू हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। सागर के सारे पानी से बदन जो चिपचिपा हो रहा था सो आते ही कोलोन वाटर से बाथ ले ली थी भाभी ने। अरविंद और मैं बातो में खोये हुए थे। कुछ-कुछ भूख जरूर लग गयी थी। भाभीजी ड्रेसिंग रूम मे थीं वहीं से बोली—

'प्रोफेसर साहब बाथरूम खाली है जाइये नहा लीजिये…'

अरविंद से मैंने कहा—'तू नहा ले यार पहले, मैं तो दो मिनट मे नहा लूंगा।'

आधे में ही बातें खत्म करके अरविंद बाथरूम में घुस गया और मै खुले बदन कमरे में इधर-उधर घूमने लगा।

भाभीजी कबरी गंथती हुई ड्राइंग रूम से निकलकर आ गयी थी।

चुटिया खीचकर थप्पड़ लगाने का बहाना करते हुए कहते थे—एक बार और सिखा देता हूं फिर नही बताऊगा और मैं चीख मारकर रोने लगती थी। दरअसल रोती नही थी वो तो झूंठ-मूठ करती थी और आप डरकर कहते थे—अच्छा बाबा अब नही मारूंगा और मैं मुस्करा देती थी—'अनु दा डर गये, अनु दा डर गये' कहकर। आप तो सच्चे प्रोफेसर बन गये—क्या अब भी वैसे ही अपनी स्टूडेंट की चुटिया खीचकर'''।

अनु दा अब तो बहुत बड़े हो गये होंगे—लंबाई-चौड़ाई मे, बुद्धि में तो पहले ही बहुत बड़े थे अब कितने बड़े हो गये हो। कविता अब भी सुनाते हो न। लिखते तो जरूर होगे। अच्छी-अच्छी कविताएं लिखते होगे अब तो। भावुक जो ठहरे।

पिछली बार तो मा इतनी याद करती थी आपकी कि बस। कहती थी 'अनुराग को लिखना अब की छुट्टियो मे कुछ दिन यहां आ जाय।' और आस-पड़ोस के साथ वाले सभी आपका नाम लेते है। जब भी कोई बात होती है आपका उदाहरण देने बैठ जाती है।

अनु दा, आप जो न होते तो मैं कभी बी० ए० नही करती। आपकी कहनी को मानकर पढ़ गयी। अब सोचती हूं तो लगता है आपकी बातें कितनी बड़ी प्रेरणा थी। अब मुझे खयाल आया कि प्रेरणा क्या होती है। और प्रेरणा का जीवन मे कितना महत्व होता है। इसके बिना भी जीवन अधूरा है। बड़े आदमियों की प्रेरणाए कितनी बड़ी होगी—भले ही वो व्यग्य हो या प्रेम। मगर उसको न पाकर कुछ भी नही और उसे पाकर सब कुछ है। इसीलिए जीवन मे एक स्थायी आधार की आवश्यकता हुआ करती है। और फिर जीवन एक-दूसरे को पूरक प्रेरणाएं देता हुआ आगे बढ़ जाता है। लोग इसी को गृहस्थी कहते हैं, इसी को संसार कहते है। यू तो अपने कितने होते है इस जगत मे, अपने निकट के, बिलकुल अपने, मा, बाप, भाई-बहिन मगर फिर भी दिल हमेशा यही चाहता है कि कोई 'अपना' हो और जब यह अपना मिल जाता है तो फिर कोई इच्छा नही रहती। ऐसा लगता है सारी खुशी सारे सुख पा लिए और उस पर जी-जान से निछावर हो जाने को दिल करता है। उसके सुख अपने सुख, उसके दु.ख अपने दु.ख हो जाते है—सच है न अनु दा? हम फिर उसे अपने दिल की

जो बंगाली फ्रेंड्स के साथ कलकत्ता में खूब सुनी थी, खूब गुनगुनायी थी। और जब पहले-पहले बंगाली समझ न पड़ती थी तो वो ही अनुवाद करके सुनाती थी हिंदी या अंग्रेजी में। ओह···' उसने वही पंक्तियां फिर गुन-गुनायी—अश्रु भरा वेदना दिके दिके जागे, आज श्यामल मेघे रे माझे···।

'आपको बंगाली भी आती है अनु'—भाभी ने बड़े आश्चर्य से पूछा।

'हां भाभी जब हम कलकत्ता थे अरविंद और मैं दोनों ही ने तब थोड़ी-बहुत सीखी थी। मैट्रिक में था तब गीतांजलि की दो कविताएं अंग्रेजी में पढ़ी थीं तब बार-बार यही सोचा करता था गीतांजलि पढ़नी चाहिए। किस्मत से कलकत्ता जाना पड़ा और वहीं थोड़ी बंगाली सीखी। गीतांजलि पढ़ी, रवीन्द्र संगीत सुना। मुझे भाषा सीखने में अजीब आनंद आता है। अगर नौकरी नहीं करनी पड़े तो मैं जगह-जगह जाकर सब भाषाएं सीख आऊं, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मराठी, गुजराती, जापानी, जर्मनी, तुर्की···। भाषा का आनंद तो भाषा सीखने के बाद ही आता है और हर भाषा का अपना मजा है, उसमें अपना मिठास है। जैसे रसगुल्लों का स्वाद जानने के लिए उनका खाना जरूरी है और भाषा का स्वाद जानने के लिए उसका जानना। भाषा तो अमृत है, भाभी अमृत।'

दारुण अग्नि वाणे रे, हृदय तृषाय हाने रे,
रजनी निद्रा हीन, दीर्घ दग्ध दिन
आराम नाहि ये जाने रे
शुष्क कानन शाखे, क्लात कपोत डाके
करुण कातर गाने रे
भय नाहि भय नाहि, गगनेरये छि चाहि
जानि झंकार वेशे दिवे देखा तुमि ऐसे
एकदा तापित प्राने रे।[1]

---

1. हृदय की तृष्णा में दुसह्य अग्निवाण मारता है, जिसकी रात्रि निद्रा हीन है, दीर्घ दग्ध दिवस है, जो आराम नहीं जानता। वन की सूखी डालों पर क्लात कपोत करुण गीतों में पुकार रहा है लेकिन अब मन निर्भय हो गया है, क्योंकि मैंने आकाश में देख लिया है, जानती हूं झंझा के वेष में तुम एक बार इन तप्त प्राणों में आते दिखायी दोगे।

देवर और किसे मिल सकता है। सच देवरजी तुम बहुत अच्छे हो…मुझे बहुत भाते हो और उसको…

'निशा'—सच तुमने बहुत अच्छी लड़की ढूंढकर निकाली है, अब कब करा रहे हो मुंह मीठा। जल्दी ही फेरे फिर लो तो हमारे देवरजी को नौकर के हाथ की रोटियां नहीं तोड़नी पड़ेंगी। नरम-नरम हाथों से फिर गरम-गरम फुलके…सच कहती हूं सब कुछ भूल जाओगे और खो जाओगे उसकी आंखों में। मैं उसको भी खत लिखकर मुबारक देती हूं कि तुमने भी क्या ढूंढा है हमारे देवरजी को। अरे हां—निशा को तुमने कह तो दिया है न…। नहीं कहा होगा तो सोचूंगी तुम बिलकुल बुद्धू हो…और क्या यूं तो देवर चालाक होते हैं मगर फिर भी बुद्धू ही होते हैं—ऐसी बातें लड़कियां अपने मुंह से नहीं कहती हैं। वो तो लड़के ही की बात का इंतजार करती रहती हैं और ना-ना करती रहती हैं मगर दिल-ही-दिल में लड्डू फूटते हैं और तुम्हारी बात सुनकर वो नजरें झुका लेगी लजाकर और जब तुम अपने काम में लगे होगे तब एकटक होकर देखा करेगी…तुम्हारी प्यारी-प्यारी सूरत में खो जायेगी और नजर मिलते ही मुस्करा देगी।

निशा के पिता तो एतराज नहीं करेंगे न ? उनकी मां तो भक्तिन है… बड़ी ही अच्छी है। मैं जानती हूं वो कभी मना नहीं करेगी। तुम्हें तो वे अच्छी तरह से जानते हैं। कहीं वो भी बात करने की सोचते हो मगर कह नहीं पाते हो। निशा ने जिकर तो किया ही होगा…किया है न ? बस अब की दीवाली के बाद शादी कर ही डालो। तुम भी क्या हो। अरे शादी का मजा तो अभी ही है और भले ही शादी के बाद संझटें बढ़ जाये और अपने हमदम की खुशी उन सबसे बढ़कर होती है। अब कब तक अकेले कविताएं लिखते रहोगे। उनको सुनने वाला बगल में होना ही चाहिए, उमर खय्याम की वो पंक्ति याद है न…

बगल में हो कोई हसीना…
और हाथों में हो शेरों की किताब।

तब फिर कविता और शेरो-शायरी का मजा देखना। हसीन रात की गोद में चांद के मंडवे तले फिर जीवन के गीत बहेंगे और लेखनी झूम-झूम उठेगी और हां चिंता मत करो अंकिल को तो ये मना लेंगे और फिर आंटी

सब बातें वेघटके बता देते है, कुछ भी नही छिपाते। वो घडिया भी कितनी अच्छी होती हैं।

आप इधर कब आओगे। हर बार बहाना बना लेते हो, इस तरह नही चलेगा।

मैं अगली डाक से उत्तर की इंतजार करूगी।

आपकी बहिन—
'मीना'

मैंने पत्र पढ़ा, तह की और फिर लिफाफे में रख दिया। अरविंद अनजानी दर्शना का पत्र पढ़कर मुस्करा दिया।

और फिर हम बातों में खो गये।

× × ×

एक हफ्ते बाद अरविंद और भाभीजी चले गये। घर सुनसान लगने लगा। भाभीजी और अरविंद के आने से एक चहल-पहल हो गयी थी। मुझे लगता सारा घर उदास है और उदास घर की दीवारें मानो सांय-सांय कर रही हों। मैं अक्सर इस साये से दूर निकल जाता कुदरत की हसीन वादियो में या फिर कभी कोई मूवी देखने चला जाता। कभी-कभी कासम भाई से मिल लेता। कई दिन तक इसी खोयेपन में डूबा रहा। भाभी का इस बीच पत्र का क्रम लगा रहा। जो थोड़ी-बहुत दूरी थी देवर-भौजाई की वह भी अब दूर हो गयी थी। दिल को बहलाने को बार-बार पत्र निकालकर पढ़ लिया करता था। अक्सर भाभीजी के पत्रों में आत्मीयता, छेड़छाड़ और अनोखी चुटीली बातें हुआ करती थी।

प्रिय देवर,

जैसे ही घर पहुचे हैं आपके भैया ने कहा अनु को चिट्ठी लिख दो कि हम आ पहुचे हैं। हमने तुम्हारे (बुरा तो न मानोगे न 'तुम' कहूं तो) 'इनसे' यहा हम तो यू ही लिखने वाले थे आप न कहते तो भी और जानते हो फिर इन्होंने क्या कहा—हां-हां देवर जो ठहरा। और फिर ऐसा अच्छा

दिन यूनिवर्सिटी जाकर मैंने भाभी का हुक्म पूरा कर लिया।

मैं कामायनी के लज्जा वर्ग में उलझा हुआ था—

'नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।'

और निशा इतने में आ पहुंची···

इसके पहले कि निशा कुछ कहती—मैंने कहा—'निशा शशि भाभी का खत आया है और उन्होंने लिखा है—निशा को मधुर स्मृतियां और हां ये लो खत तुम भी पढ़ लेना।' मैंने सोचा मैं कैसे कहूं अपने मुंह से सारी बातें और भाभी का वाक्य दुहरा गया। अगर नहीं पूछा होगा तो समझूंगी बुद्धू हो। अचानक मेरे होंठ मुस्करा दिये। 'क्या हुआ—सर।' निशा ने मुझे मुस्कराते देखकर पूछ लिया।

'कुछ नहीं—भाभी के बारे में सोच रहा था।' निशा ने खत लेकर अपनी एक्सरसाइज बुक में रख लिया और कहने लगी—'सर, आज घर पर एक पार्टी है और आपको जरूर आना है—पिताजी ने खास आग्रह किया है।'

'आज अचानक पार्टी कैसे···'

'कारण तो कुछ नहीं पर पिताजी कभी-कभी अपने खास मित्रों को इन्वाइट कर लिया करते हैं। काफी देर तक इधर-उधर की बातचीत और फिर कभी-कभी गाने-बाने का प्रोग्राम होता रहता है। उन्हें ये सब बड़ा अच्छा लगता है···'

'लेकिन निशा मैं···'

'पिताजी ने घर से आते समय बार बार कहा था—प्रोफेसर साहब को इन्वाइट करना न भूलना। आप आयेंगे न सर···।'

मैं एकटक निशा की ओर देख रहा था। नजरों के मिलते ही निशा ने अपनी नजरें झुका लीं। 'जरूर आऊंगा निशा···तुम भी तो होगी ना पार्टी में। मैं तो किसी को खास जानता नहीं। वादा करो साथ रहोगी न···' मैंने फिर दोहराया—'प्रोमिस···'

निशा ने धीरे से कहा—'प्रा···मि···स'

'चलूं सर···'

तो तुम्हारे विवाह की आस बरसों से लगाये बैठी होंगी। वो कभी मना नही करेंगी—और फिर निशा जैसी बहू पाकर तो वो फूल उठेंगी—और निशा को…मैंने उसके दिल के बहुत नजदीक जाकर देखा है…उसे तो तुम इतने भा गये हो कि वो तो तुम्हारे ही खयालों में खोयी रहती है। उसकी आंखों की भाषा को पढ़ा है तुमने ? वो तो शरमीली है—वो खुद कभी नही कहेगी।

तुम्हारी बहुत याद आती है देवरजी। सच मैं बहुत भाग्यवान हूं और इन्हें बार-बार धन्यवाद देती हूं कि कितना अच्छा देवर दिया है मुझे और कितना अच्छा दोस्त ढूंढा है अपने लिए।

पिकनिक के फोटोग्राफ कैसे आये है ? अच्छे ही आये होंगे तुमने जो खीचे हैं।

बंबई कब आ रहे हो ? जब भी छुट्टी पड़े चले आना। भले ही आने की चिट्ठी पहले से मत लिखना।

निशा को मेरा मधुर प्यार और मिलन कहना। कहोगे न ! कही शरमाओगे तो नही। यूं तो प्रोफेसर हो और फिर भी शरमाते हो। निशा के घर जाओ तो अंकल और आंटी को प्रणाम कहना हम दोनों की ओर से—

और अपनी लिखना—

फिर हम भी लिखेंगे—

हम दोनों की ओर से बहुत-बहुत स्मृतियां…मधुर स्मृतियां और ढेर सारा प्यारा।

तुम्हारी भाभी—
'नाम नही लिखूंगी'

भाभी बहुत अच्छी भाभी है। भाभी-देवर की बातें भाभियां बहुत जानती हैं और शशि भाभी भी कुछ कम नही। उनका खत पढ़ा कई बार पढ़ा और जब भी इच्छा हुई निकालकर फिर पढ लिया।

× × ×

मैं शरमाया नही…भाभी की बात गांठ बांध ली थी और दूसरे ही

उन्हे प्रेम है और जितनी जल्दी हो सके सीख लेना चाहती हैं। उन्हें हि
गीतो से खास प्रेम है। भारतीय सगीत पर तो वे मरती हैं और मंत्रमु
होकर सुनती है। भारत से उन्हें लगाव है। यहां की संस्कृति से, री
रिवाजो से, यहा के उत्सवो से, और उनको अपनाने लगी है। बात-बात
वे बोल उठी—'मैंने अपने अध्ययनकाल में हिंदुस्तान के बारे मे बहुत पुस
पढ़ी है, डॉ० राधाकृष्णन को सुना है, विवेकानन्द के लेक्चर्स ने बहुत प्रभ
वित किया है। भारत की कला ने मेरे मन में भारत देखने की जिज्ञासा पै
कर दी थी। तब से मैं यहाँ आने को लालायित थी और आखिर मेरी इच्
पूरी हुई···'

मैं मिस वुल्फ के भारत-प्रेम पर उन्हें धन्यवाद देने लगा। मिस वुल
अभी कुल 28 की है। सफेद झक्क रंग, भूरी नीली आंखें, भूरे बाबकट बा
और कलाकार-सी अंगुलियां, लिपस्टिक से राते किये हुए होंठ, और उन प
हर समय खेलती रहती मुस्कान मिस वुल्फ को बहुत ही आकर्षक बना
हुए है। मैंने उन्हें यूनिवर्सिटी में आने के लिए इन्वाइट किया और घर प
भी।

'सो काइंड आफ यू—थैंक यू···' कहकर मेरे प्रति आभार और प्रे
प्रकट किया। वो भारत की मेहमाननवाजी से बहुत खुश थी। मैं इतनी दे
की बातों मे मिस वुल्फ का एक अच्छा फ्रेंड बन गया जैसे काफी दिनो
हमारी पहचान हो। निशा को उन्होने अपने यहां इन्वाइट किया, मुझे भी
निशा को देखकर वुल्फ बोली—'यू आर रीयली वेरी-वेरी ब्यूटीफुल''
वेरी प्रिटी···'

इतने में बैरा ज्यूस लेकर आ पहुंचा और एक-एक गिलास सबने लेक
सिप किया और पीना शुरू कर दिया। और फिर सब डाइनिंग टेबल की
ओर बढ़े। डिशेज, नेपकिन्स, कांटे और चमचे एक-एक कर सबने उठा लिए
और फिर खाली डिशों में थोड़ा-थोड़ा सब सामान और फिर सबके मुह
चलने लगे। बातचीत अभी भी हो रही थी और अक्सर खाने की बड़ाई।
वास्तव में खाना बहुत ही लज्जतदार था। मैंने मिस वुल्फ से पूछा, 'आपने
भारतीय भोजन खाना तो प्रारंभ कर दिया होगा मिर्च, मसाले, चपाती ?'

'आई लाइक इंडियन फूड वेरी मच', कहकर उन्होंने पोटेटो चाप्स

'मैं अपने मुंह से कैसे कहूं जाओ', मैंने तनिक-सी गर्दन हिला दी··· और फिर अपनी कामायनी में उलझ गया···

रामू को आज मेरे लिए खाना न बनाने के लिए कहकर मैं कासम भाई के घर की ओर रवाना हुआ। आठ बजते-बजते पहुंच चुका था। आठ-दस व्यक्ति आ चुके थे और कासम अली ने मेरा एक-एक कर सबसे इंट्रोडक्शन करवाया—क्योंकि इस बार मैं ही नया था और फिर आठ मेहमान और आये और उनसे भी मेरा परिचय करवाया। मैं कासम अली की मेहमाननवाजी को देखकर मन-ही-मन विचार रहा था—कितने मजे हुए व्यक्ति है। एक कुशल और जागरूक खिलाड़ी जो समाज के तौर-तरीकों को बड़ी अच्छी तरह समझते हैं। और मेरे प्रति उनका इतना आत्मीयता का भाव निकटता के सूत्र में बांधे जा रहा था। मि० कपूर शहर के दूसरे बड़े इंडस्ट्रियलिस्ट, डी० एस० पी० मि० खन्ना, इनकम-टैक्स आफिसर मि० दास, टाटा मिल्स के डायरेक्टर मि० गुप्ता, उनकी पत्नियां और कुछ दूसरे मित्र, खासकर मिस वुल्फ अमरीकन महिला, संध्या गडकर जिनका परिचय एक सुंदर गायिका के रूप में करवाया था, मिस कूपर और कुछ अन्य। बातचीत चलती रही, निशा साथ ही आकर बैठ गयी थी और मैं मिस वुल्फ से अमरीकी जीवन की बातों का टापिक छेड़कर व्यस्त हो गया···और सब दूसरे भी अपनी-अपनी रुचि की बातों में खो गये। हवा के झोंकों में भटके शब्द यह जाहिर कर रहे थे कि अभी शेयर मार्केट की बात चलती थी और कभी बिजनेस की, टैक्स की और कभी सरकार की पालिसी की। सरकार के अफसर भी सरकार की आलोचना कर रहे थे। मन में तो आया कि दो-चार अच्छी-अच्छी सुना दूं कि सरकार की आलोचना करने से पहले अपने कारनामों को तो देख लिया होता। सेठों के रुपये-पैसों से जेबों को गरम करके सरकार को भला-बुरा कहने वाले देश को क्या सुधारेंगे ! मगर शिष्टता के नाते कड़वा घूंट पीकर रह गया और फिर अपनी बातों में खो गया।

मिस वुल्फ अमरीका से एक वर्ष पहले आयी थी और इंग्लिश स्कूल में प्रिंसीपल थी। हिंदी उन्हें नहीं के बराबर आती है—न तो बोल ही सकती हैं और न ही समझ सकती हैं मगर धीरे-धीरे कोशिश कर रही है। हिंदी से

किंतु कुदरत की डोर को काटना इतना आसान काम नही है। अमर इस कमी को पूरा करने को कही बसेरा ढूंढ़ने की कोशिश करता किंतु अपने नीड़ से उडने के बाद पंछी को डाल मिल सकती है दूसरा नीड़ नही। अमर कितना ही जीवन का दर्शन और मनोविज्ञान लगाता लेकिन सब बेकार था।

पवन अक्सर अमर को इस बारे में समझाया करता किंतु पवन की फिलासफी बड़ी अजीब थी। अमर की मां अमर के साथ ही रहती थी और अमर की पत्नी अब अपने पीहर चली गयी थी। औरत के लिए ससुराल से निकलकर कुछ दिन गुजार देने के लिए पीहर ही होता है मगर वहां भी अधिक दिन तब ही चलता है जब भाई-भौजाई अच्छे हों वरना दो कौर भी जहर बन जाता है। अमर की पत्नी ने भी पीहर में जाकर चैन की सांस ली हो ऐसा मैं नही सोच सकता। अक्सर आंधी चलती है तो पेड़ अगर एकदम नही गिरता तो पत्ते-टहनियां तो झड़ ही जाते है और फिर उस दरख्त पर बचता ही क्या है एक ठूठ। और ऐसी ही जिंदगी मे जब रौनक चली जाये, प्रेम न हो तो जहर से भी बदतर हो जाती है जिंदगी। वह चाहे आदमी हो अथवा औरत। किंतु मौत आसान भी नही होती। अगर ऐसे मुंहमांगे मौत मिलने लग जाये तो फिर शायद इस दुनिया में कोई भी जिंदा न रहना चाहे। उमा ने आसुओं की सेज पर अपने जीवन की कश्ती को खेना शुरू कर दिया। मेरे मन में दोनों के प्रति एक हमदर्दी उत्पन्न होती लेकिन हमदर्दी एक आश्वासन, दिलासा और सहारा मात्र ही तो है। मुझे तो सारी सृष्टि के सिद्धांतों पर ही रह-रहकर विचार उठता था। दुख-सुख, मिलन-वियोग, प्रसन्नता-रुदन, जीवन-मृत्यु आखिर हर चीज के दो पहलू क्यों है? और अगर हैं भी तो अतिशयता क्यों? थोड़े दुख की मंजिल हो तो ठीक किंतु गम की तारीख सालों मे हो और सुख के चंद लमहे हों तो यह भी क्या।

अमर और उमा का बेटा एक-एक दिन बड़ा होता जा रहा था। यही उम्र होती है जबकि बालक को मां का दुलार और बाप का प्यार मिलना चाहिए। इस प्यार-दुलार से वंचित रहने पर बालक बड़ा होने पर पत्थर-सा जड़ बन जाता है। उसमें प्यार का उद्‌गम ही नही होगा तो सरिता कहा से बहेगी और फिर ये ही समाज के प्रश्न बन जाते है। अमर बेटे को बड़े ध्यान से पालने की युक्ति मे अपना काफी समय बिताने लगा था और

चटनी से लगाकर दांतों से एक टुकड़ा काट दिया, 'वेरी नाइस प्रिपरेशन...'

आधे घंटे में सब अपना खाना पूरा कर चुके। बैरे ने अंत में फ्रूट डिश सर्व कर दी और खाने का काम समाप्त हो गया।

मिस संध्या गडकर बहुत ही अच्छा गाती हैं, यह मैंने देखा। उनका कंठ बहुत ही मिठास भरा है और मैं उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका। और सभी ने प्रशंसा की।

पार्टी में आने वाले सभी कासम भाई के निकट के मित्र है—सरकारी और गैर सरकारी। और अनुमानतः कासम भाई अपनी इस पहचान का खूब लाभ उठाते होंगे इसमें भी कोई शक नहीं, वरना इतना सब कुछ करने की क्या आवश्यकता।

आदमी बड़ा खतरनाक प्राणी है। वो कल कौन-सी चाल चलेगा, इसका पता लगाना बड़ा मुश्किल है। अगर भगवान भी इंसान बन के आ जाये तो एक बार तोबा तो वो भी मान लेगा। कासम भाई ही नहीं सभी के यही हाल है। मगर फिर भी उनकी हर बात बड़ी मंजी हुई होती है। तौर-तरीके, रहन-सहन, समाज-सोसाइटी सब जगह वे अपने आपको परिस्थिति के अनुसार मोड़ लेते है। अजनबीपन उनके चेहरे से बिलकुल नहीं टपकता। आत्मीयता का घूंट पिलाकर वे सबको अपना बना लेते हैं और जो इस कला में पारंगत है वह कभी इस दुनिया में मात नहीं खा सकता। यह यथार्थ सत्य सत्य सिद्ध हो चुका था। और यही सोचते-सोचते मेरी आख लग गयी और सपनों में भटक गया।

× × ×

अमर की जिंदगी विष और अमृत का मिक्सचर हो गयी थी। वह जब बाहर मित्रों के साथ रहता हंसी के फव्वारों में अपने सारे गमों को भूल जाता। मुझे अमर एक बड़ा ही साहसी व्यक्ति लगा जो अपने जीवन के दुखों को एक निश्चित बाड़ में बांधे हुए था और कभी किसी को मालूम न पड़ने देता था। मगर जब वह खुद विचार करता अथवा अपने अंतरंग मित्रों के साथ विषय छिड़ जाता तो अपने कथा सरितसागर को सुनाता। किंतु अगर दुख बंटना शुरू हो जाये तो क्या कहना। व्यक्ति को तो सब कुछ खुद ही सहना है। अमर अक्सर अपनी इस जिंदगी से भागने की कोशिश करता

हसाता और जेब में पड़ी एक टाफी उसके हाथ में दे देता। वह झपटकर लेता। खट्टे-मीठे स्वाद का आनंद चूसकर लेता और खाते-खाते रस भरी लार उसके झबले पर आ बहती। माजी उसे बार-बार पोंछती। सौरभ भी पहचान गया था और टूटे-फूटे शब्द उसकी वाणी से भी झरने लगे थे।

मैं सौरभ की भावी कल्पनाओं में खो जाता और अपने को व्यथित कर लेता था। इन क्षणों में जिंदगी मुझे खौफनाक लगती और एक कोहरा-सा मेरे मन पर छा जाता।

अमर ने उमा से छुटकारा पाने का प्रयास किया और इस प्रयास में कुदरत ने उसकी मदद की। सौरभ बड़ा होता जा रहा था'''अमर पर जीवन की शुष्कता बढ़ती जा रही थी और उमा एक कंकाल मात्र रह गयी थी। इसी कंकाल में पड़े पंछी को नियति एक दिन उड़ा ले गयी''' उमा चली गयी'''छोड़ गयी मात्र एक स्मृति कि उमा कोई थी जो अमर की पत्नी थी'''सौरभ की मा थी।

अमर विधुर हो गया। इस विधुरता में आनंद था या विषाद कुछ कह नहीं सकता मगर सौरभ की ममता का द्वार कुदरत ने बंद कर दिया था। और मैं सोचता था क्या कोई भी औरत इसे अपनी ममता का सागर देगी!

सागर की लहरों ने झपाटे से सीपिया चरणों में डाल दी'''मैंने झुककर उन्हें उठाया, देखा मात्र सीपियां थी'''

× × ×

उसके बाद अमर वहां से अपनी नयी नियुक्ति पर चला गया। मैनी की सड़क पर पत्तों के पंछी उड़ते रहे'''समय निकलता गया बर्फ के टुकड़ों की तरह'''अमर ने दूसरी शादी कर ली—सौरभ के लिए नयी मा आ गयी''' नयी मा ने क्रमशः सौरभ को भाई दिया'''और अमर की गृहस्थी बढ़ गयी।

मीना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करती होगी'''इतने दिन बीतने पर सोचती होगी 'अनुराग' कैसा है और मैं पत्र लिखने बैठ गया।

अमर की मां उसे मा का दुलार देती थी किंतु वे तो बूढ़ी हो चुकी थी। कब तक वे उसे संभालेगी। वृद्ध और उस पर घर का सारा काम। किसी तरह वे करती क्योंकि मा के लिए बेटा और पोता दोनो ही जान से बढ़कर होते हैं और ऐसी हालत मे वह सब कुछ होने पर भी कुछ न कुछ करती रहती है। बेटे को समय पर खाना देना, उसकी देखभाल करना कब छूटता है। घर के दूसरे चौका-बुहारी काम के लिए नौकरानी रख ली थी इससे बुढ़िया मां को बहुत मदद मिल जाती थी। बेटे का नाम 'सौरभ' रख दिया था। उसके लिए अभी सारी दुनिया अनजान थी। उसे क्या पता था कि उसकी मां कौन है और जिस बालक को मा की ममता की छाया न मिले उसके भाग विधाता ने किस स्याही से लिखे ! काली स्याही की कालिमा से बढ़-कर भी कुछ और है ? एक बार अमर से पवन यू ही पूछ बैठा था—'जब यह बड़ा होगा, समझने लगेगा और पूछेगा, मेरी मां कहा है, कौन है मेरी मा—तब क्या जवाब दोगे ?'

अमर के पास या किसी के पास इसका कोई सभ्य उत्तर नही हो सकता। और उस मा के जिगर की क्या हालत होती होगी जो अपनी ममता से अलग कर दी जाये। औरत जब मा बन जाती है तो उसका बेटा उसकी आखो का तारा होता है। उसके बिना तो वह अंधी है। ये सब कल्पनाएं उड़-उड़कर इस तरह झकझोर देती है। सोचकर ऐसे समय मां की अवस्था उस खाली कुएं की तरह हो जाती हे जिसे देखकर दूर भटकता प्यासा पथिक आये और उसकी तह मे एक बूद भी पानी न हो।

अमर की उम्र भी सफेदी की ओर बढ़ती जा रही थी। और युगो के बाद मिली हुई यह इसान की जिंदगी व्यर्थ के दुखो मे गलती जा रही थी। घर उस सूने रेगिस्तान के समान था जहा मन के विशाल मरुस्थल पर लू भरी हवा चलती थी और रेत के टीले बनते बिगड़ते थे। जिंदगी उखड़ी हुई लगती थी और सारे भार से दबी जा रही थी और उसकी नाड़िया ऐसी फूल गयी थी जैसे कि मजदूर बैलो की तरह गाड़ी का भार खीचकर ले जा रहे हो और जोर के कारण गले पर सारी नसे फूल गयी हो।

सौरभ मुझे अच्छा लगता था। बच्चे वैसे भी जब दो-तीन साल के हो जाते है तो सुहाने लगते है। मैं उसको खिलाता। दो-चार चुटकी बजाकर

मैं यहा अधिकतर अपने काम में लगा रहता हूं। वही पढ़ने की धुन, लिखने की आदत। इन दिनों कई नयी रचनायें की है कुछ गजलें, कुछ गीत, कुछ कहानिया। छपी हुई रचनायें तो तुमने पढ़ी होंगी। कुछेक पत्रिकायें जो इधर की है उनके आफ प्रिंट्स भेजूगा। अपना विचार लिखना कैसी है?

यूनिवर्सिटी मे मेरी एक स्टूडेंट है नाम है निशा। यहां आने से पहले बबई मे उससे पहचान करायी थी अरविंद ने। वह पहचान अब आत्मीयता मे बदल गयी है। वो मित्र भी है, विद्यार्थी भी। और नये शहर में एक हमदर्द। तुम मिलोगी तो अवश्य चाहोगी। तुम्हारी ही तरह कविताओं का शौक निशा को भी है—लिखती भी है। अरविंद आया था तब निशा के सारे परिवार से परिचय हुआ था। अजनबी नगर में एक यह परिवार तुम्हारे शब्दो मे 'अपना' लगता है।

इधर आने की कई बार सोचता हूं मगर आखिरी समय मे प्रोग्राम सारे बदल जाते हैं। आना तो है ही। लेकिन तुम दोनों अपनी एक ट्रिप इधर की कर डालो तो कितना अच्छा रहेगा।

मैं तो पत्र लिखूगा ही मगर तुम लिखो तो माताजी-पिताजी को मेरा सादर अभिवादन लिखना न भूलना।

और हा अपने 'अनु दा' की इतनी तारीफ मत किया करो—लबाई वही साढ़े पाच फुट रहने वाली है—मोटाई मे कोई परिवर्तन नही'''और बुद्धि मे तो तुम अब मेरी बराबरी करने लगी हो।

इसी तरह पत्र लिखा करो'''

—तुम्हारा
'अनु'

पुनश्च :

हा राखिया मिल गयी थी'''और जिस तरह तुम बाधती थी वैसे ही बाधी थी।

मीना का उत्तर पत्र पहुचते ही आ गया जैसे वह इसी प्रतीक्षा मे बैठी थी कि कब पत्र आये और कब उत्तर दू। मीना का पत्र आया बड़ा ही

प्रिय मीना,

तुम्हारा पत्र जिन दिनों आया उन दिनों अरविंद और भाभी शशि यही थे…। वरसो बाद और शादी के बाद पहली बार दोनो आये थे इसलिए जीवन की गहराइयां में, पुरानी घटनाओं के पुराण में खो गया था…। मेरे देरी से पत्र लिखने पर तुम कुछ का कुछ सोचती होगी, मगर सच लिख रहा हूं इन दिनों ऐसी कशमकश में उलझा रहा कि चाहकर भी पत्र नही लिख पाया।

तुम्हारा पत्र पढ़ने में बड़ा आनद आया। कई बार पढ़ा और पढ़ते-पढ़ते सोचता रहा तुम पहले जैसी चुलबुली नहो रही, भावुक अधिक हो गयी हो, जिंदगी के फलसफे के बारे मे विचार करने लगी हो। ठीक ही तो लिखा है तुमने कि प्रेरणा का जीवन मे कितना बड़ा हाथ होता है। जीवन की नीव है, जीवन का मंत्र है। निराशा और पलायनवाद की कोर पर खड़े व्यक्ति को प्रेरणा का संकेत भी मिल जाये तो वह लौट आता है जीवन के सघर्ष क्षेत्र में और जूझने लगता है अपने कर्मों से। फिर उसे हर पल आशा दिखती है, साहस का सूरज उसमें चेता बनकर बैठ जाता है।

इस प्रेरणा रूप मे यदि पुरुष को नारी और नारी को पुरुष मिल जाये तो फिर इसकी दिव्यता अनेरी होती है। यह बात जब मेरे सामने आती है तो सृष्टि का रहस्य मुझे सुलझता दिखायी देता है।

कुदरत ने मुझे तुम्हारे निकट भेजा…कैसा रहस्यमय विधान है। इसके पहले तुम और मैं, तुम्हारा सारा परिवार अनजान ही तो था। कब सोचा था 'मीना' पड़ोसी, विद्यार्थी और फिर बहन बन जायेगी…।

तुम अपने जीवन मार्ग पर सफल होती जा रही हो यह पढ़कर मन कितना उल्लसित हुआ। तुम्हे 'अपना' कोई मिला, तुमने अपने जीवनसाथी में 'अपनापन' देखा और जीवन के माधुर्य का आस्वाद किया इसके लिए बधाई। आशीर्वाद।

जीवन एक जहर का घूट भी है, अमृत का घूट भी। जो जैसा पिये। तुमने अमृत का घूट पिया ये सफलता जीवन की महान सिद्धि है। तुम्हारी यह सिद्धि कइयों के लिए प्रेरणा बनेगी। प्रेरणा बनना ही तो जीवन का आनंद है और तुम आनद का क्षेत्र स्पर्श कर चुकी हो।

की मूरत। उसकी हर चितवन से कविता बनती होगी। आपकी भावनायें उस कोमलता का स्पर्श कर सजीव हो उठती होंगी। जिस दिन आपका यह गीत पढ़ा था उसी दिन मैं समझ गयी थी—। कैसा प्यार भरा चित्रण है इसमें—

कर से कर छूकर के तेरा
जीवन मेरा सफल हो गया।

कितना मादक स्पर्श है उसका जिसने एकाकी नीड़ में आलोक उत्पन्न कर दिया। कविता का रंग बदल दिया। जी चाहता है उससे मिलूं और कहूं मेरे कवि की प्रिय प्रेरणा···कब आ रही हो बजाती हुई छम-छम पायलिया···

मां को मालूम है न यह ! कितनी खुश होंगी जब उन्हें मालूम होगा। आप अपनी हाथ की रेखायें देखकर कहते थे न कि ये रेखायें उदास हैं मगर अब क्या कहते हो ? अब तो आपको अपने अनबूझे प्रश्न का उत्तर मिल गया है न।

अब तो आपसे मिलने की···नहीं नहीं, अपनी भाभी से मिलने की चाह बढ़ती जा रही···एक तस्वीर भेज दो न दा तब तक···।

अपना दर्शन खूब बघार लिया है···आप भी बोर हो रहे होंगे, थोड़ा अगले पत्र के लिए बचाकर पत्र बंद करती हूं—।

—आपकी बहन
'मीना'

मीना का उत्तर, हर उत्तर अपने आप में दार्शनिक होता था। जीवन के दूसरे चरण में जाकर समझदारियां बढ़ जाती हैं ऐसा मुझे मीना के जीवन से अनुभव होने लगा। मगर अमर के जीवन में क्या हुआ ? क्या यह नियति का कोई चक्र था जिसमें अमर जैसा विद्वान एक खिलौना बना हुआ था और उसका जीवन उस कुदरत की एक चाल ? यह जीवन कितना गहरा है इसका मोती कौन पाता है ? कौन गोताखोर इसमें से मोती निकाल कर लाता है ? ये सारे दर्शन मेरे मन को कुरेदने लगते थे।

भावुक और जीवनपरक था। और अब वह भी वही बात लिखने लगी थी जो मां कहती थी'''घर वालों की अपेक्षा थी।

प्रिय अनु दा,

आपका पत्र बड़ी प्रतीक्षा के बाद मिला। प्रतीक्षा के बाद वैसे किसी भी चीज का मिलना कितना आनंदप्रद होता है। इन्होंने भी मेरे साथ इस पत्र को पढ़ा है'''और मेरी तरह ये भी आपको आदर की दृष्टि से देखने लगे हैं।

आपकी नयी स्टूडेंट का नाम पढ़ा'''बड़ा सुंदर नाम है निशा। निशा में आपको कोई अपना मिला है—यह अपना अपना बन जाये तो कितना अच्छा हो। अनु दा बुरा न मानो तो कहूं। भाभी बना लो न निशा को। मुझे तो लगता है आजकल आप अपनी इस प्रेरणा में खोये हुए हैं। आपको आपकी कविता सजीव रूप में मिल गयी है।

'''और अब मेरे लिए भाभी नहीं लाओगे तो कब लाओगे? सच कहूं विवाह की भी एक उम्र होती है। इस उम्र में यदि यह बंधन बंध जाता है तो गृहस्थी की स्वप्निल अवस्था मिल जाती है। मन कल्पना के पंख लगाकर उड़ने लगता है। सारी दुनिया सिमटकर बस एक ही में आ जाती है। चारों ओर एक अजीब सिहरन, एक नया मिठास, और रोमान्च आ बसता है बीच में। दिन-रात कब आते हैं कब ढल जाते हैं पता ही नहीं चलता।

संत कहते हैं ये दुनिया मिथ्या है मगर क्या सचमुच ऐसा है? नहीं, ऐसा नहीं है अनु दा। मुझे तो 'चित्रलेखा' की कहानी सही लगती है। ये संसार क्या यूं ही त्याग देने के लिए है। और जो त्यागते हैं उसके पीछे भी तो प्यार ही कार्य करता है। ईश्वर का प्यार।

प्यार तो हर रंग में प्यार ही है। वो चाहे इंसान के प्रति हो या ईश्वर के प्रति। बिना प्यार के जीवन का मूल्य ही क्या? मगर यह प्यार सबको मिलता है क्या। जिसको मिलता है, उसको स्वर्ग अगर है तो वहीं मिल जाता है। कैसी गुदगुदी होती है जब प्यार हो जाता है। आपको भी ऐसा होता होगा आजकल। आखों में हर पल घूमती होगी एक ही मूरत—निशा

हर रहस्य को पहचान लिया···विषाद से घिरा हुआ मनुष्य जब मेरे पास आकर खड़ा होता है तो उसे मैं अपने में नहीं समेटता उसे पुन: जीवन सागर की ओर भेज देता हूं···

सागर को मैंने इस रूप में कभी नहीं सोचा था। उसकी एक-एक हिल्लोर मेरे विचार सागर में नई कौंध उत्पन्न करने लगी···।

सागर की अभिव्यक्ति बराबर चल रही थी···देखो मेरे अंतस को··· देखो मेरी सीमा को···मैं चाहूं तो अपनी सीमा पल भर में तोड़ दूं और सबको अपनी गोद में छिपा लूं। मचलूं तो प्रलय मचा दूं मगर मैं कभी अपनी सीमा नहीं तोड़ता···अपने हृदय में प्रेम की गहराइयों को लिए मात्र अपनी प्रेमिका चांदनी को पाने के लिए, उसे स्पर्श करने के लिए अपने लहरों रूपी हाथों को बढ़ाता हूं···जैसे-जैसे उसमें निखार आता है मेरा आवेश···मेरा प्रेम उतनी ही तीव्रता से मचल उठता है मगर नियति रूपी समाज जब उसे अंधकार के सीखचे में बंद कर देता है तो मैं···शांत होकर उसकी यादों में खो जाता हूं···खो जाता हूं अपनी प्रिया की कल्पना में···सदियों से यही आकांक्षा छिपी है···मेरे मन की समस्त विक्षिप्तताओं को छिपा लिया है इस प्रेम की अनुभूति ने।

···और यह जीवन यही अनुभूति है···अनुभूति में खो जाना ही जीवन है। किसी की स्मृतियों में अपने आपको भुला देना ही आनंद है। जी चाहता सागर को चूम लूं···सागर को अपनी बाहों में भर लूं···सागर की तरह ही यह संसार मुझे दिखायी दिया कितने असंख्य प्राणी···तरह-तरह के···और उन तरह-तरह के लोगों के भी चेहरों पर चेहरे···जिन्हें पहचानना दुर्लभ···मगर ऐसों में भी कुछ तो अपने हैं जिन्हें भुलाये नहीं भुला पाता—जिनकी यादें हमेशा आंखों की झील में कश्ती बन तैरा करती हैं···।

इन्हीं कश्तियों को लिए एक दिन मुझे दो साल के लिए दूर जाना पड़ा···दूर बहुत दूर···सात समुंदर पार···दादी वाले परियों के देश···। विशिष्ट अध्ययन के लिए स्कालरशिप पर विदेश गमन का पत्र···घरवालों की मनाही···जीवन की उन्नति का स्वप्न···कुछ अपनों से वियोग···सबने आकर मन में कशमकश पैदा कर दी।

कभी-कभी लगता मनुष्य कितना अकेला है। बालक जब छोटा होता है उसका जीवन कैसा प्रश्न रहित होता है ! माता-पिता की छत्रछाया में बिना चिंता के कितने आनंद से जीवन बीतता है। बड़े होते ही कुछ अपनेपन में और विवाह होते ही उसमें कितनी दूरियां आ जाती हैं···कितने भेद के रूप पनपने लगते है। भाई-भाई के बीच में जो निःसकोचता होती है उसकी जगह संकोच जन्म लेने लगता है। बहन पराये घर जाकर पिता के घर में कैसे मेहमान बन जाती है···सब कुछ अलग-अलग। जीवन सरिता में कैसे छोटे-छोटे द्वीप बन जाते हैं···! आखिर क्यों होता है ऐसा ? ऐसा न हो तो न चले ? क्या ये सीमितरेखाएं न उभरें तो जीवन आगे न चले ?

ये प्रश्न मुझे रुला जाते। मैं सोचने लगता क्या मेरे जीवन में भी यही होगा ? क्या विवाह के बाद इसी प्रकार का अलगाव उत्पन्न हो जायेगा ? क्या मेरी चीज को मेरे ही अपने दूसरों की मानने लगेंगे ? क्या वो बेधड़कता समाप्त हो जायेगी ?

मैं चाहता मीना से ये प्रश्न पूछ लूं। उससे पूछूं कि क्या एक का अपनापन सबसे बेगानेपन में बदल जाता है ? मीना तो इसका सही-सही उत्तर देगी न। वो तो मेरी विद्यार्थी, मेरी मित्र, मेरी पड़ोसी, मेरी बहन रही है और है और मेरे किनारे वही सागर की अनंतता आकर खड़ी हो जाती। सागर कहता तुम मुझे देखते हो ?

हां—मेरा उत्तर होता।

क्या मुझे पहचानते हो ?

हां—मैं बिना सहमे कह देता। मगर सागर कहता···

नहीं, तुम मुझे नहीं पहचानते। देखो मैं अन्तहीन हूं···और अथाह गहराई है मुझमें। मैं इस संसार—जीवन का प्रतीक हूं। मेरी ही तरह यह जीवन खारा है और जिस तरह मेरी क्रोड में असख्य और अलभ्य चीजें हैं उसी तरह मानव जीवन में भी ये दुर्लभ और अजीब अनोखी चीजें पड़ी है। इसमें भयकर-भयकर प्राणी भी है तो मेरी ही गोद में पड़ी किसी सीपी ने मोती भी छिपा रखा है। मोती सबको नहीं मिलता। विरला व्यक्ति ही होता है जो मेरे इस मोती को पा सकता है। बाकी को मिलती हैं टूटी सीपियां···रेत···शंख···घोंघे। जिसने मुझे पहचान लिया उसने जीवन के

अध्ययन···अध्यापन का संबंध, प्रगाढ़ता, मिलन···आत्मैक्य, कैसी मंजिल आ पहुंची है···। कितना प्रेम कैसा अनमोल प्रेम है। क्या यह भी कोई पूर्वजन्म का संस्कार है। कुदरत का कैसा खेल है। कहां तो मैंने जीवन में कभी सोचा भी नहीं था कि इस नगर में प्रोफेसर बनकर आना होगा, सहसा ऐसा साथी मिल जायेगा···जिसमें सब कुछ अपना हो···सुबह का सूरज अपनी पहली किरण पर जिसका नाम लिखकर आंखों में उतर जाता हो··· और संध्या की लालिमा जिसके अनुराग की असीमता का भान करा जाती हो···नि.संकोच जो अपना ही घर समझकर चली आती हो···उदासी के पल-पल का हिसाब रखने वाली···मन मंदिर में समा जाने वाली यह श्रद्धा···अपने 'अनु' के वियोग की कल्पना से सिहर जाने वाली यह अनोखी रुपहरी कल्पना···स्नेह···के आंचल में अपने प्रेम को बहा देने वाली यह कविता···

'निशा···'

'हूं···'

'मैंने अपने पूर्वजन्म में कोई पुण्य अवश्य किया था कि तुम मिली··· और अगर यह मत सही है कि पति-पत्नी जन्म जन्मांतर तक मिलते रहते हैं तो मैं प्रभु से कहूंगा कि तू मुझे मोक्ष मत दे···देता रह यह जन्म और हर जन्म में यही जीवनसाथी मिलता रहे···निशा तुम्हारे प्रेम में कौन-सा आकर्षण है जिसमें खो गया हूं मैं···क्यों बार-बार मन में जागते हैं यही खयाल कि तुम···तुम ही मेरी प्रणयिनी हो···तुम्हीं मेरे जीवन सागर की पतवार हो···'

'मैं भी यही सोचती हूं कि जिसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी वो इस जीवन की देहरी पर आकर इस तरह लुभा गया कि हर पल एक याद बनकर उभरता है, न जाने क्या हो गया है इस दिल को जिस दिन आपको नहीं देखती हूं मन को रौंदा करती है···व्यथा···खोजती फिरती हैं ये पलकें···और जब निहार लेती हैं कुछ देर तो···उपमा कहती है अब तो मुस्कराहट लाओ होंठों पर। उस दिन हम दोनों कार से इधर से जा रही थी तो उपमा आपके घर के नजदीक आते ही ड्राइवर से बोली···जरा धीरे कर लो गाड़ी···और फिर चिकोटी भरकर कहने लगी···देख ले घर आ

'उदास क्यों हैं सर ?' अचानक निशा ने प्रवेश करते ही प्रश्न कर दिया···।

'आओ निशा···एकदम कैसे ?'

'बस यूं ही···सोचा आप घर ही होंगे। अच्छा हुआ न आ गयी तो···' और उसने सामने पड़े पत्र को उठाकर देखा···और पढ़कर उदासी उसके चेहरे पर भी छा गयी···

'तो···आप···आप···'

'हां निशा···स्कालरशिप पर दो वर्ष के लिए मेरा चुनाव हुआ है··· समझ नहीं पा रहा हूं क्या करूं···एक ओर अध्ययन की तीव्र जिज्ञासा, दूसरी ओर घरवालों की मनाही···मन के पखेरू की उदासी···तुम ही बताओ निशा···क्या करूं ?'

निशा अपलक निश्कम्प निपात दीपशिखा-सी देखती रही···और फिर नजरें झुका ली···पल भर में आंसू जब फर्श पर गिरा तो उदासी के बादलों को हटाकर बोल उठा '···अरे अगर प्रेरणा हार गयी यदि तुम जीवन, कौन बनेगा प्रेरक मेरे जीवन का।'

पलकें उठी और गिरी···

मैं निशा की मौन नजरों में कथानक का पूरा सम्भाषण समझ गया।

'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि न जायें ?' निशा ने उसी नमित दृष्टि से पूछा···

उसकी उदासी तोड़ने को मैंने कहा—'यह तो चुनाव-पत्र ही है। मना भी तो कर सकता हूं···'

'ऐसा हो सकता है ?'

'क्यों नहीं, मगर तुम एकदम मेरी उदासी का कारण पूछते ही उदास हो गयी···ऐसा लगता है निशा को उदास करने वाला यह पत्र ही है। चलो छोड़ो···अभी इस बात को···आओ तुम्हें नया गीत सुनाऊं जो कल ही लिखा है···रेकार्डिंग भी कर लेते हैं···'

मेरा मन सागर की गहराई में खो गया···निशा के हृदय सागर की गहराई में···

कितनी आत्मीयता पैदा हो गयी···मित्र के रूप में परिचय···

निशा मेरे मुंह पर हाथ रखते हुए वक्ष पर सिर झुकाकर बोल उठी···
'ऐसा मत कहो मेरे प्रणय देव।···'

संध्या का आंचल रजनी की काली चूनर में बदल गया था। ऐसा लगता था रजनी रूपी दुलहन जगमगाती सितारों से जड़ी चूंदड़िया ओढ़कर अपने प्रिय की प्रतीक्षा में बैठी है···

'बहुत देर हो गयी है···'

'चलो···कुछ दूर तक छोड़ आऊं···'

कार से कुछ दूर जाकर मैं एक मधुर स्वप्न की शुभ कामना देकर उतर गया···न चाहकर भी निशा ने एक मधुर चितवन के साथ कार स्टार्ट कर दी···। और मैं शांत सड़को पर अपने अरमान भरे चरण रखता घर की ओर मुड़ गया···

× × ×

निशा ने जब सोचा कि अमरीका जाने से मेरे भविष्य का विकास होगा तो पूरे आत्म-विश्वास के साथ मेरी तैयारी में लग गयी। कपड़े-लत्ते, जरूरी-जरूरी वस्तुयें सभी लिस्ट बनाकर रखी और समझाती गयी किसमें क्या रखा है। और विदा करते समय उसने पूरे साहस के साथ अलविदा की···एरोप्लेन की विन्डो से बराबर उसका विदा करता हुआ हाथ दिखायी देता रहा। इस क्षण आंखें सजल हो उठी···और मैंने अपने गागल्स में अपने प्रेमसिक्त आंसुओं को दूसरों की नजरों से छिपा लिया।

हवा की रोमिलताओं को स्पर्श करता हुआ इंडियन एयरलाइंस का बोइंग मेजिक कारपेट की तरह उड़ा जा रहा था। एयर होस्टेस अपनी सुसज्ज मुस्कान से चारों ओर स्प्रे करती हुई एक ओर से दूसरी ओर तक सपाटे से अपने काम में लीन थी···दूसरी एयर होस्टेस ने एयर इंडिया के पिक्चर पोस्टकार्ड, लेटरपेड, लिफाफे लाकर दे दिये पत्र लिखने को··· निशा को यहां से मैंने पहला पत्र लिखा···

सुप्रिया,

···इस वक्त यह हवाई जहाज तेहरान के नजदीक पहुंच रहा है जैसा

गया सर का···' और इतना कहते-कहते, निशा के लबों पर स्मित खिल गयी।

मैंने टेपरेकार्ड पर कैसेट अब तक लगा लिया था···उसकी मुस्कराहट के साथ ही गीत बिखर गया···गीत समाप्त होने तक निशा अपलक देखती रही, सुनती रही, और टेप···टेप रीवाइंड करके स्विच आन करते हुए बोल उठी—'अब आप भी सुनिये···कितना मधुर गीत है, कैसी मादक आवाज है···मन करता है सुना करूं और मदहोश हो जाऊं इन कविताओं में, गीतों में···और कभी अलग न होऊं अपने कवि से···'

'निशा···'

'एक बात पूछूं···'

'हूं···'

'क्या यह सब साकार हो जायेगा ?'

'क्यूं नहीं ? आप ऐसा क्यू सोचते हैं···'

'इसलिए निशा कि मैं और तुम···फिर समाज में जात-पात के भेद··· अमीरी-गरीबी की खाइयां···'

'तो क्या हुआ ? अगर आप अपने आपको गरीब और सामान्य मानते हैं तो मुझे ऐसी गरीबी मुबारक। मैं तो यह सोचती थी आप मुझे अपने साथी के रूप में स्वीकार करेंगे या नहीं···शशि भाभी ने एक बार बात छेड़ी थी···आज आपके दिल की बात सुनकर जी करता है दुनिया की सारी दौलत सारे सुख मुझे मिल गये। मेरी कल्पनाओं का देवता आज मेरे सामने खड़ा है। मेरे जीवन में आज चांदनी ही चांदनी है। खुशी की बरसात और रिमझिम फुहार में मेरा मन डूब गया है···सच आपके विदेश जाने की कल्पना मात्र से मेरा मन रो उठा था···जिन्हें देखे एक दिन नहीं कटता···उनसे दो वर्ष का वियोग···'

'लेकिन क्या हमारा समाज हमारे इन जज़बातों को समझकर हमें···'

'अगर आपके परिवार वाले···आपके माता-पिता मुझे स्वीकार कर लेंगे तो मैं धन्य मानूंगी। अपने मम्मी-पापा को तो मैं मना लूंगी···'

'निशा···सच अगर अब तुम जीवन में नहीं आयी तो यह संसार वियाबान हो जायेगा। यह जीवन की डगर फिर सूनी रह जायेगी···'

के साथ ही उड़ान भर रहा है प्लेन···

आरेंज ज्यूस और पेपर नेपकिन अभी-अभी दिया है परिचारिका ने। एक घूट तुम्हारी और एक घूट मेरी तरफ से पी रहा हूं···

निशा···यह मन भी क्या है? किस तरह बंध जाता है अनोखे बंधन में। ये बधन भी कैसे हैं। कुदरत ने कितने मधुर बनाये हैं ये बंधन। जिनमें आदमी बधकर भी मुक्त रहता है और मुक्त रहकर भी किसी अदृश्य डोर में बंधा हुआ। कैसी अद्भुत अनुभूति है ये? वैज्ञानिक कहते हैं मन—दिल नाम की कोई चीज नहीं मगर विज्ञान क्या समझे। शरीर का कौन-सा भाग है वो जहां ये भावनाएं जन्मती है जिसमें मनुष्य सब कुछ भूल जाता है और सिमटकर केंद्रीभूत हो जाता है उसका ससार किसी एक में।

वहा जाते ही अपना पता लिखूंगा और फिर प्रतीक्षा रहेगी तुम्हारे पत्रों की···

मम्मी-डैडी को प्रणाम कहना और उपमा, बिंदु को स्नेह।

तुम्हें मेरा चिरंतन बंधन···

—जिसे तुम अपना समझती हो—
'वह'

प्रिय निशा,

मधुर मिलन! हिल्टन होटल में अभी-अभी पहुचा हूं—बड़ा ही सुदर व्यवस्थित होटल है। एयरपोर्ट पर ही यहां पहुंचाने की व्यवस्था थी—अतः कोई विचार नहीं करना पड़ा कहां जाना है। न्यूयार्क की जिस-जिस सड़क से गुजरकर आया हूं उसे देखकर लगता है किसी कल्पना लोक में आ गया हूं। एक से एक गगनचुंबी अट्टालिकाएं···सड़कों के सीनो पर दौड़ती कारों का अनवरत प्रवाह, रंगबिरंगी यहां की वेशभूषा में गोरे-चिट्टे यहां के नागरिक, उन्हीं के बीच में हट्टे-कट्टे नीग्रो नागरिक, उनकी तांबे-सी लौह देह, घुघराले बाल और चलता-फिरता यह हसीन नगर···स्काई स्क्रेपर्स का यह शहर, किसी कलाकार की अद्वितीय कल्पना है।

और यह होटल 40 मंजिल का···विशाल होटल कितना व्यवस्थित

कि एयर होस्टेस ने अभी-अभी अनाउंस किया। मैं तुम्हें पत्र लिखने में खोया हुआ हूं।

एयरपोर्ट पर तुमसे अलग होते हुए मन एकदम बेकरारी से भर गया था···कंठ अवरुद्ध था···एक भी शब्द अलविदा के समय नही कह पाया···सोचा था न जाने क्या-क्या कहूगा···मगर इन क्षणो में कैसी स्थिति हो जाती है···साहित्य मे वर्णित नायक-नायिकाओं का वर्णन साहित्यकारों ने कितना सुदर और सच किया है। ऐसे क्षण सारी बुद्धि काफूर हो जाती है···तुम अगर आत्म-विश्वास के साथ विदा नही करती तो शायद मैं कभी नही रवाना होता। तुम्हे छोड़कर···

इस समय मैं बादलों के लोक मे धरती से उन्नीस हजार फीट की ऊंचाई पर तुम्हारी सुहानी स्मृतियो में खोया हुआ हूं। काश ! तुम साथ होती तो कितनी आनदप्रद होती यह यात्रा···कितनी सुखद ! मेरी आखो के सामने तुम्हारा वह दृश्य बार-बार आकर ठहर जाता है जिन क्षणो में तुम किसी पूर्वजन्म की अधिकार भरी पहचान से मुझे समझा रही थी···मेरी अध्ययन यात्रा की एक-एक चीज रख रही थी···तुम न होती तो क्या मैं अकेला यह सब कर लेता···तुम्हारे हाथों का स्पर्श—इन सब चीजों ने किया है जो बराबर दो वर्ष तक मेरे साथ रहेगी···इन वस्त्रों में तुम्हारे मर्मरीन हाथों की गंध समा गयी है···जो सदा मेरे रोम-रोम से जुड़ी रहेगी···और तुम्हारे हाथों से बुना हुआ यह पुलोवर यहां की कैसी भी ठंड में मुझे ऊष्मा देता रहेगा···

तेहरान आ गया है···। यहां प्लेन चालीस मिनट रुकेगा। दूसरे यात्रियों के साथ मैं भी बाहर आकर इस देश की धरती पर पैर रख रहा हूं। निशा कोई अंतर नही है इस मिट्टी में और भारत की धरती मे। इसे देखकर मेरे मन में विचार आया है वही मिट्टी, वही आसमान, वही लोग फिर क्यों ये संघर्ष···। एयरपोर्ट बड़ा ही सुदर है···उतरते ही केफेटेरिया के पास दे दिये गये है···एयरपोर्ट पर कुछ दुकानें है···बड़ी ही अच्छी इन पर सेल्स गर्ल्स हैं···मुस्लिम जो बड़ी ही चपलता से बातें करती है···इच्छा हुई कुछ खरीद लू तुम्हारे लिए···मगर दो वर्ष तक···फिर विचार आया लौटती यात्रा में खरीदूंगा···वेस्ट बेल्ट लिए है और यह अनाउंसमेंट

मादक स्पर्श था···यह पहला स्पर्श···अभी भी तुम्हारे स्पर्श की चुन-चुनाहट···

तुम्हारी स्मृतियों के साथ···अगला पत्र शीघ्र लिखने के वादे और तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में—

—तुम्हारा अपना

आदरणीय,

आपके दो पत्र मिले, एक हवाई जहाज में बैठे-बैठे लिखा हुआ दूसरा होटल में। पढ़ते-पढ़ते लगा आप पत्र नहीं लिख रहे, मेरे सामने मुझसे बातें कर रहे हैं, पत्र लिखने की ऐसी सुंदर कला कीट्स के पत्रों में देखी थी। आत्मविभोर कर दिया है आपके पत्रों ने, स्वप्नलोक में खो गयी हूं···और जी करता है उड़कर आ जाऊं।

आप जब से गये हैं···यूनिवर्सिटी नहीं गयी हूं। जानती हूं वहां जाकर दिल तो लगेगा नहीं और बेमन से दूसरी क्लासेज अटेंड करके भी क्या करूंगी। दिन भर घर में ही छवि को निरखा करती हूं···जैसे पागल हो गयी हूं।

एक भी रात ऐसी नहीं गयी है जिसमें सपनीली सान्निध्यता न रही हो। स्वप्निल आनंद सुबह जागते ही विरह दे जाता है और आंखें बारंबार बुलाती हैं स्वप्न को···

आपको विदा करने से पहले न जाने कहां का साहस इकट्ठा हो गया मगर जैसे-जैसे पल ढलता गया मन कमजोर होता गया···और एरोड्रम पर तो मन रुआंसा हो गया था···बस रोयी नहीं यही बहुत था। उन्मन-सी अपलक हाथ हिलाती रही···हवाई पट्टी से हवाई जहाज के उड़कर आसमान में छिप जाने पर भी उसी दिशा में मेरी दृष्टि टिकी रही···और मैं ही बची थी एरोड्रम पर···सब कारवां जा चुका था।

इतने मित्र···परिचित मगर पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था जो इस बार हुआ। अरविंद जानता है मैं कितनी अल्हड़ हूं मगर बंबई में इस बार की आपकी मुलाकात ने कितना संजीदा बना दिया था···उस दिन ही अलग

है। कमरे में सजावट देखकर लगता है होटल वालों में कितना एस्थेटिक सेंस होता है या रखना पड़ता है। बिस्तर, उस पर बिछी चादर कितना कंट्रास्ट मेचिंग किया है। कमरे से ही अटेच्ड बाथ-लेवेट्री, कमरे में टेलीफोन···टीवी···होटल के नाम के लेटरपेड, पेन···साबुन, टावेल, सारा होटल एयरकंडीशंड है···

यहीं से दिखायी दे रही है एम्पायर स्टेट बिल्डिंग, दुनिया का एक आश्चर्य पनामा बिल्डिंग, यू एन ओ बिल्डिंग, मेसीज स्टोर, दंग रह गया हूं इन रंगीनियों को देखकर···

इनके बीच तुम्हारी यादें···ऐसा लगता है तुम्हारी ही आंखों से देख रहा हूं यह देश।

इस होटल में कल तक रुकना है, फिर से जाना होगा मुझे एक विद्यार्थी जीवन के परिवेश में। विद्यार्थी जीवन भी कितना मनोहर होता है। जी में आता है इस जीवन की यह स्वतन्त्रता, स्वच्छंदता सदा व्याप्त रहे और पुष्पित करती रहे संपूर्ण जीवन को आदि से अंत तक। दो वर्ष तक यही होटल का जीवन, अध्यापक से अध्येता का जीवन।

न्यूयार्क सागर के किनारे बसा हुआ है। स्वतन्त्रता की देवी की मूर्ति यहीं है। जिससे प्रेरणा मिलती है मानव को स्वच्छंदता की, प्राकृतिक मुक्ति की। मनुष्य तो स्वतंत्र ही पैदा हुआ है मगर ये सब बंधन जात-पांत के, भाषा-धर्म के, प्रांत-राष्ट्र के, अलग-अलग अपनी सीमाएं मनुष्य ने बनाकर स्वयं को ही बांध लिया है। कितना अच्छा होता देश-काल की सीमाओं से परे रचना एक ऐसा जहां जिसमें दिल के सुख की हर चीज होती।

निशा प्रेम कैसी महान अनुभूति है। पद्मावती के प्रेम में रतनसेन जोगी हो गया था, पृथ्वीराज के प्रेम में संयोगिता पागल थी, सीता के प्रेम में राम वन-वन भटके थे···राधा के प्रेम में कान्हा और कान्हा के प्रेम में राधा···कैसी डोर है यह। इसकी कल्पना मात्र अभिभूत कर देती है··· रोमांचित हो जाता हूं···और मेरी आंखों के सामने लहरा उठते हैं तुम्हारे दृश्य···एकटक होकर तकना···शरमाकर नजरें झुका लेना···लाज से रक्तिम हो जाना और उस दिन मेरे सीने पर सिर रखते हुए···कितना

आपको विदेश प्रेरणा देकर भेजना चाहिए—यह विचार बार-बार मुझे प्रेरित करता रहा···

आपकी स्मृतियां इन दिनों में मेरे साथ रहेंगी···आपके गाये हुए गीतों को अपने में समेटे हुए टेप मेरे रोज के साथी होंगे···और मैं इन दो वर्षों को ऐसे ही काट लूंगी···इसी विश्वास से दूसरे दिन आपकी तैयारी में लग गयी थी···

अभी थोड़ी देर पहले ही उपमा आयी थी। कहने लगी क्या अब यूनिवर्सिटी आने का इरादा नहीं है। गालों पर पुच्ची करके कहने लगी मेरी रानी चार रोज में ही बेनूर हो गयी है···फिर अपने आप ही कैसेट लगाकर रेकार्डर चालू करके सुनने बैठ गयी कवितायें। पूरा कैसेट सुनकर ही गयी थी। बार-बार सुनती हूं आपका वही गीत 'कर से कर छूकर के तेरा, जीवन मेरा सफल हो गया।' जी ही नहीं भरता। प्रणय की प्रथम स्पर्श भावना का कितना हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है।

वहां भी अब तक कुछ कवितायें नयी लिखी होंगी। बिना लिखे तो आप सोते ही नहीं। एक साथ सारी कविता टेप करके भेजोगे न मेरे कवि। वहां तो सब अंग्रेजीमय वातावरण है। भाषा की इस दूरी की वजह से वे तो नहीं समझ पायेंगे।

कल बिंदु का टेलीफोन आया था। कहने लगी तबीयत तो ठीक है? फिर क्यूं नहीं आती यूनिवर्सिटी? और नाराज हो रही थी कि मुझे एरोड्रम क्यों नहीं ले गयी सर को विदा करने। फूलों का हार लिए बैठी इंतजार कर रही थी। मैं तो सच बिलकुल ही भूल गयी थी।

आप सकुशल पहुंच गये···इसकी सूचना आ गयी थी···एयर इंडिया वालों की। आपने ही दिया होगा उन्हें मेरा पता। मन-मयूर बिन बादलों के नाच उठा था।

आप अपने अध्ययन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर वापस लौट आयें। यूनिवर्सिटी का मस्तक आप जैसे विद्वान के गौरव से ऊपर उठे···और मैं फूली न समाऊं···।

अध्ययन से समय निकाल कर दो पंक्तियां भी लिख देंगे तो विरह मीठा बन जायेगा।

होते हुए लगा था···किसी अपने से अलग हो रही हू और मन मे जुदाई के बादल मंडरा रहे थे।

यूनिवर्सिटी मे मिलने की आशा मे जीई थी···और यूनिवर्सिटी का पहला दिन भी मैं छोड़ना नही चाहती थी और आ पहुची थी। मन ही मन प्यार का एक पछी एक-एक दिन रूपी तिनके को बटोर कर नीड़ बना रहा था। मैं मन ही मन सोचती थी कैसे कहूगी अपने दिल की बात···मगर अरविंद और शशि भाभी ने थोड़ा रास्ता बना दिया था और उस दिन तो मेरे जीवन का अनमोल क्षण था जब आपने मुझे अपना कहा था···जी चाहता था अपने आराध्य को अपनी बाहुओं मे समेट लू और प्यार के बेहतरीन पलों मे खो जाऊ···।

मैं कभी-कभी सोचती थी कि मुझे ऐसा जीवन-साथी मिले जो भावनाओं से कोमल हो, एक कवि हो, मोतकार हो···जिसकी कविता मे मैं बस जाऊ, खो जाऊं, जो दुनिया की झंझटो से दूर अपने छोटे से आशियाने मे रहता हो, वही मेरा घर हो···वो हो, मैं होऊं और प्रेम की धारा मे बहते जायें··· पैसे से तो मैं ऊब गयी हूं···यहा तक कि इन चादी की दीवारो में जी घबरा-सा गया है। मैने पैसे की कमी का कभी अनुभव नही किया मगर प्रेम मुझे यहां कभी नही दिखा···। जिसके सामने मैं अपना दिल रख सकू ऐसा आज तक नही मिला···कोई नही मिला···आपमे मेरे सपनों का ससार साक्षर हुआ···तो अपने भाग्य को मन ही मन सराहती थी। धन्य हो गयी थी मैं। आपने मुझे अपनो मे समेट लिया तो सौ-सौ जन्म तक मैं तर गयी···।

उस दिन आपके विदेश जाने के पत्र ने मुझे डरा दिया था···न जाने देने की बात लब पर आकर रुक गयी थी···डरती थी अनधिकार चेष्टा से···इसी दु:ख से आसू ढलक आये थे। किंतु आपने मेरे मन की बात ताड़ ली थी और अपने मधुर कंठ जगत में ले चले थे। क्या ऐसे क्षण हरेक के जीवन मे आते है? नही। कोई ही ऐसी भाग्यवान होती है जिसे ऐसा 'अपना' मिलता है। आपके उस मृदु व्यवहार ने मुझे इतना साहस दिया था कि आपके सीने में मुह छिपा लिया था। बाद मे मैं रात भर सोचती रही थी···मेरा प्रेम आपके मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहा है। नहीं···नही

अभी कल ही यूनिवर्सिटी में मेरे साथी पूछते थे···'आर यू मैरिड ?' 'नो' मैंने कहा तो पूछने लगे—'ऐनी फियान्स' और जब मैंने तुम्हारी तस्वीर बतायी तो क्रिस्टीना तो—ब्यूटीफुल···स्वीट ! कहकर फोटो को किस कर उठी थी···सभी तारीफ करते थे तुम्हारी आखो की···तुम्हारी सुन्दरता की, खासकर उस ब्यूटी स्पाट···काले तिल की जो तुम्हारे बायें गाल पर है। कौन नही खो जायेगा इस काले तिल की गहराई में—इसी पर एक शेर मैंने सबसे पहले बंबई में देखा था तब लिखा था—

नजर न लग जाये तेरे हुस्न को ए साकी।
इसीलिए खुदा ने ये काला तिल बना दिया है।

और ये आखे तुम्हारी—कितनी गहरी हैं सागर जैसी, सचमुच सागर है। जिन्हें देखकर बिहारी की ये पक्तिया सजीव हो उठती है—

अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, यह चितवन कित बार॥

सच है न निशा। जो ऐसी कल्पना के लोक की परी को सजीव देख ले वो तो धन्य है ही। ये सब अमरीकन तुम्हारी प्रशंसा करते है सो सच ही है। कहते है 'यू आर लकी' मैं मन ही मन सोचता हूं—'यस आई एम लकी।'

इन दिनो पाच-छः नये गीत लिखे है। कुछ और लिख लू फिर एक साथ रेकार्ड करके भेजूगा। तुम न भी लिखती तो भी भेजता। क्योंकि इनमें तुम्ही तो समायी हो। तुम्हारी ही प्रेरणा से तो ये लेखनी गीत संवारती है।

अभी मेरी आखो के सामने तुम्हारा उस दिन का रूप आकर खड़ा हो गया है। सुनहरे बूटो से जड़ी श्वेत साड़ी जिसमें ऐसा लगता था देवलोक से कोई अप्सरा धरती पर उतर आयी हो। सुदर परिधानो के बीच कंचन-सी तुम्हारी देह जैसे सोनजूही में किसी ने प्राण डाल दिये हो। काश कोई शिल्पी तुम्हे देख लेता तो एक लाजवाब मूर्ति रच देता। मेरी कलम भी मचली थी उस दिन और गढ़े थे ये शब्द—

निशा ! तुम जैसा हमदर्द पाकर मैं अपने आपको कितना सुखद मानता हू। नयी जगह, नये लोग जहां सब कुछ नयापन था वहा तुम्हारा अपना-पन ही तो मेरी सपत्ति थी। इसी के सहारे तो दिन और प्रातः कटते थे।

प्रतीक्षा मे, मधुर क्षणों की याद मे—
मधुर स्मृतियो के साथ—

आपकी—
जिसे आपने अपना समझा वही निशा

मधुर निशा,

स्नेह भरे'''। तुम्हारा भेजा पहला पत्र अपने अजनबियों के बीच मिला। उस समय यूनिवर्सिटी जाने का समय हो गया था इसलिए बद लिफाफा ही बायी तरफ वाली जेब मे रख लिया और दिल अपनी धड़कनों से उसके प्रेम का पान करता रहा। दिन भर शाम तक उसके पढ़ने की बेताबी बढ़ती रही और बेकरारी इस हद तक बढ़ गयी कि शाम को कमरे मे भी नहीं गया लाउज में ही बैठा-बैठा पढ़ने लगा इस पत्र को। दो बार, तीन बार, चार बार।

निशा एक बात कहू। सबोधन मे दूरी मत रखा करो। इसे भी ले आओ अपने प्यार की छाह मे—कहो मेरे अनु''''मेरे अपने अनु'।

खत में मेरी मधुर निशा का कितना सुंदर सपना साकार हुआ है। एक-एक वाक्य कितनी आत्मीयता की शहनाइया बजा रहा है। तुम्हारे इस पत्र ने भविष्य के मार्ग को स्पष्ट ही नही एक गभीर समस्या को हल कर दिया है। जानती हो वो समस्या कौन-सी है'''हर हाथ में कनिष्का के नीचे एक लाइन होती है। ज्योतिषी कहते हे यह 'मैरिज लाइन' होती है। इस लाइन की समस्या जिसमे मैं अभी तक उलझा हुआ था—हल हो गयी है। सचमुच मुझे तुम जैसी एक हमदम की तलाश थी। शादी के पचासों आफर्स में से अभी तक मैं नही ढूढ पाया था तुम जैसा मित्र। तुम जैसा हमदर्द जिसके पास पहुचकर भूल जाऊं बाह्य जीवन के समस्त दुख और डूब जाऊं अतरग सागर में। दुनियादारी की भीड़भाड़ से दूर एक छोटा-सा बसेरा जिसमे मेरा साथी मेरी प्रतीक्षा करता हो'''और गमो की बस्ती मे से निकालकर जो प्यार भरा दुलार देकर सब कुछ भुलवा दे। ऐसा मन का मीत मुझे मिल गया'''

करते थे आपकी। इसी प्रतिभा ने तो मुझे और अधिक आकर्षित किया थ
साहित्य पढ़ने को'''और अब आप ही खुद पढ़ने चले गये हैं। मेरा फर
क्लास का सपना तो सपना ही रह जायेगा। क्लास लाने की तमन्ना तो
ही मगर उससे भी कही अधिक तीव्र तमन्ना तो'''आप जानते हैं वह क्य
हो सकती है। मैं नहो बताऊंगी। यू तो सभी समझ गये है यूनिवर्सिटी में भ
मगर छेड़ने का काम बस यह उपमा ही करती है। वो जब यह बात करत
है तब उस पर गुस्सा तो करती हूं मगर यह गुस्सा बाहरी ही होता है''
मन में तो यही होता है कि बस ऐसी ही बात किया करे। दिल भी क्य
है? हमेशा हर पल खोये रहना चाहता है इन्ही बातो में।

कल से यूनिवर्सिटी जाना फिर शुरू करूंगी'''कुछ तो अध्ययन होग
ही। बिंदु बता रही थी कल यूनिवर्सिटी में बाहर से कुछ विद्वान आये थे
हिंदी साहित्य गोष्ठी ने रात को कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया था
काश आप यही होते तो'''। वहां तो इस प्रकार के सम्मेलन शायद ही होत
होंगे। मैं तो रोज ही कवि और कविता का नैकट्य पाती हूं। नये गीत
को सुनने की आतुरता बढ़ती जा रही है।

अगले महीने बंबई जाने को डैडी कह रहे थे। पता नहीं क्या काम है
मुझे भी ले जायेंगे साथ। अब तो बंबई जाने को जी ही नही करता। वह
अब एक ही चार्म है शशि भाभी का, सोचती हूं इस बार उन्ही के पास
जाकर रहूं। उनकी मीठी-मीठी बातें सुनने को बहुत मन होता है। औ
अब तो वो ज्यादा छेड़ेंगी वही बात।

वहीदा दीदी ने एक दिन आपका जिक्र छेड़ा था। पता नहीं क्यू अचा
नक उन्होंने यह बात छेड़ी। मैं तो उनकी बात का रहस्य अभी तक नह
समझ पायी। लेकिन जरूर कोई बात होनी चाहिए। इधर-उधर की बात
से मुझे तो बड़ी नफरत है इसीलिए कभी वहा भी नही जाती हूं। न जाने
यहा-वहा की बातें ले ले के बैठ जाते हैं लोग। जैसे लोगो को एक-दूसरे
की उड़ाने के अतिरिक्त कोई काम ही नही है। बस उपमा को, जब कभी
बहुत अकेलापन लगता है तो बुला लेती हू और दोनों बैठकर बस गपशप
किया करती हैं। इस गपशप के विषय आप होते है या फिर सिनेमा। य
यूनिवर्सिटी की बाते। उपमा बहुत अच्छी सहेली मिल गयी है। यू तो बिंदु

और यहां दूर देश में बैठे अनुराग के पास भी तो तुम ही हो। तुम्हारी सलोनी तस्वीर, तुम्हारी मादक भेंट, तुम्हारा वादा, इन्हीं के सहारे कटेगा ये दो वर्ष का वनवास···

यहां कल मूवी देखने गया था। डॉ० जिवागो—बड़ी अच्छी मूवी थी। तुम्हें तो पिक्चरों का बहुत शौक है। लगता है इन दिनों कोई मूवी नहीं देखी है वरना जरूर लिखती।

अपना अध्ययन बराबर चालू रखना। दिल लगाकर पढ़ना। फर्स्ट क्लास लाना है तुम्हें।

उपमा और बिंदु दोनों को मेरी शुभ भावनाएं। घर पर सभी को मेरा प्रिय अभिवादन।

सुंदर यादों की भेंट और सुखद स्वप्नों की शुभ कामना के साथ—

तुम्हारा—
जो इतनी दूर भी तुम्हारा है

मेरे अपने अनु,

सादर श्रद्धा के सुमन। आपका पत्र मेरी आंखों के सामने अभी भी पड़ा हुआ है। आपकी प्रिय अनुमति से संबोधन···झिझक होते हुए भी कर ही रही हूं···लज्जा ने एक पल आकर पकड़ लिया है···

अभी रात की खामोशियों में सारे सुनसान वातावरण में बस मैं ही जाग रही हूं और मेरे सामने पड़ी आपकी यह तस्वीर खामोश होकर भी मुझसे बात कर रही है। अभी चांद चरम सीमा पर पहुंचकर थोड़ा ढला है···एक बज चुका है—नींद ही नहीं आती है पलकों में···थोड़ी देर कविताएं सुनीं फिर यह खत लिखने बैठ गयी हूं।

सोच रही हूं अभी वहां दोपहर होगी···आप यूनिवर्सिटी में अपनी पढ़ाई में लीन होंगे—शोध कार्य बिना तन्मयता के होता कहां है, मगर आप तो ज्ञान के सागर हैं, तभी तो भेजा है सरकार ने आगे पढ़ने के लिए। मैं तो पहले ही दिन प्रभावित हो गयी थी आपके ज्ञान की अपार राशि से··· धारावाहिक आपका लेक्चर, भाषा का ऐसा सम्मोहन—सभी साथी तारीफ

कवि, साहित्यकार और इन सबसे अधिक एक भावनाशील, दयालु इंसान। नि.स्वार्थ भावनाओं से भरा आपका यह व्यक्तित्व ही तो है जो सबको अपना बना लेता है। घर में भी तब सब आपकी तारीफ करते थे। पड़ोसी सब आपको अब भी याद करते हैं।

अमरीका तो बहुत समृद्ध देश है। मेरे लिए तो वह कल्पनालोक ही है। वहां आप भाषाविज्ञान की दिशा साधने गये हैं। प्रभु से प्रार्थना करती हूं कि वह आपको महान् सफलता दे। अपने ज्ञान की छाप वहां भी अंकित कर दें और सिद्धि प्राप्त करके लौटें।

वहां कितने वर्ष रहेंगे ? कब लौटेंगे ? लौटने के बाद इसी यूनिवर्सिटी में रहेंगे या और कहीं ?

विवाह तो वहां से आने के बाद ही करेंगे अब। आपने भाभी की तस्वीर अभी तक नहीं भेजी। सोचते होंगे सुंदर भाभी को नजर न लग जाये। लेकिन कब तक छिपाओगे।

मेरी तो पढ़ाई पर फुलस्टाप लग गया है। दो साल और पिताजी शादी के लिए रुक जाते तो एम० ए० कर ही लेती। कभी-कभी सोचती हूं एम० ए० करके भी करना तो यही था जो अब करती हूं'''वैसे कुछ-न-कुछ पढ़ती रहती हूं। प्रेमचंदजी, भारतबाबू, बंकिम आदि की रचनाएं पढ़ डाली हैं'''। इससे जीवनपरक दृष्टि तो मिलती है। सुख-दुख के अथाह सागर में निराशा से घिरे मनुष्य को आशा का कितना बड़ा संबल दिया है साहित्यकारों ने। डूबते हुए को तिनके का सहारा ही तो चाहिए।

मेरी गिरस्ती बड़ी अच्छी चल रही है। हमारे विचार एक जैसे होने से विरोध नहीं जन्मता। और फिर भारतीय नारी के लिए अपने पति को आनंद प्रदान करना ही उसके कर्मक्षेत्र की मुख्य भूमिका है। मैं सदैव अपने आपको उनके लिए समर्पित कर देती हूं इससे मुझे भी सुख मिलता है उन्हें भी। वैसे भी प्रकृति ने नारी के रूप में ही तो अवतार लिया है। और प्रकृति का काम है दूसरों के लिए अपने को समर्पित करना, त्याग करना, सेवा करना। मैं सोचती हूं प्रकृति की उन्मुक्तता अगर नारी छोड़ दे तो जीवन कितना दु.खी हो जाये। नारी का दूसरा अर्थ ही है त्याग तभी तो कामायनी की श्रद्धा 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' के रूप में व्यक्त हुई है। साहित्य

पुरानी और आत्मीय सहेली है मगर सीधी-सादी।

मम्मी तो पूजापाठ में ही डूबी रहती हे। और डैडी का तो व्यापार ही व्यापार मार्ग है। कई बार पूछती हू इतना पैसा किसके लिए इकट्ठा कर रहे है तो कहते है—बिटिया पैसे की दुनिया में पैसा ही सब कुछ है। बिना पैसे जीना भी कोई जीना है। पैसा ही भगवान, पैसा ही ईमान, पैसा ही मान। अगर ये न हो तो कोई नाम तक न जाने'''। घर पर थोड़ी देर रहते हैं उसमें भी पच्चीसों फोन आ जाते है। मैं तो सुनते-सुनते ऊब जाती हूं।

कभी-कभी कुछ रिश्तेदार मिलने आ जाते है या बाहर से आने वालो मे डैडी के दोस्त जो एक-दो रोज रुककर चले जाते है। घर में तो सब हमी होते है—मम्मी और मैं और ये नौकर-चाकर।

रात बहुत ढल चुकी है'''ढाई बजा चाहता है और इस खामोशी में यादें इस तरह घर किये बैठी है कि आखे छलक आने को तैयार है''' आंसू'''प्यार के आंसू'''।

शब्बाखैर'''आपके सुदर कल्पनातीत भविष्य की तमन्ना मे'''आपकी प्रतीक्षा में'''

मात्र आपकी ही
निशा

प्रिय अनु दा,

सादर प्रणाम। अखबार मे एक दिन पढ़ा था कि आप उच्च अध्ययन के लिए विदेश जा रहे है और सरकार ने आपको छात्रवृत्ति पर चुना है तब से बधाई देने को आतुर हो रही थी। आज वो पल आया है'''अनु दा बधाई। हार्दिक बधाई।

आप जीवन के उन्नत शिखरों पर निरतर चढ़ते जायें'''जिस जगत मे भी आप रहें वहां चाद-सूरज की तरह चमकें मेरी सदा से यही आरजू रही है। आपकी प्रतिभा महान है—यह तभी जानती थी जब छोटी थी''' और आप मुझे पढ़ाते थे। आप क्या नही है। अच्छे खिलाड़ी, अच्छे लेखक,

गलती के लिए क्षमा मांग लूं।

तुम्हारे पत्रों मे जीवन की आशा बड़ी तीव्र होती है और प्रसन्न होती है जब तुम्हारी भौतिक सफलता और आनंद की बात पढ़ता। जीवन के साथ तुम एडजस्टमेंट करती हो'''बड़ी ही बुद्धिमानी से। हं यह नहीं कर पाता। कुछ करने मे असमर्थ होते होंगे, कुछ का भाग्य नहीं देता होगा। इसीलिए तो जीवन जीना भी एक कला है और तुम सफल कलाकार हो साथ ही तुम्हारे 'वो' अर्थात् प्रिय 'सुयश'। अगर आशीष इसमें कुछ सहयोग दे सकते है तो ढेर सारे आशीर्वाद।

नैनीताल की तुम्हारी यात्रा का विवरण पढ़कर मैं भी नैनीताल पहु गया। एक बार मैं पंतनगर गया था तो वहीं से नैनीताल चला गया थ मुझे भी इतना ही घुमाया था नैनीताल ने वहां की प्राकृतिक सुषमा और इस वैभव ने पंत प्रसाद को कितना स्पष्ट कर दिया था। कवियों प्रेरणास्थली रही है हिमालय की गोद। महान दर्शन का केंद्र रही है यह' वसुधिका। आज भी मेरी याददाश्त मे साकार खड़ा है हिमालय, उस शुभ्रता मन की मलिनता को धो देती है।

तुम्हारा व्यक्तित्व साहित्यमय है। साहित्य की मधुमति भूमिका साकार करती हो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है। पढ़ती रहती कुछ-न-कुछ, इससे जीवन सरिता का जल सदैव प्रवाहित रहता है, क शुष्कता नहीं आती। सदा सरस, सरल प्रवाहमान रहे तुम्हारा जीवन।

यहां दो वर्ष रहना है। इस बीच भारत नहीं आ सकूंगा। कार्य समा करने के बाद ही लौटूंगा भारत'''तुम सब लोगों के बीच। भाषा-विज्ञ में डी० लिट्० का कार्य कर रहा हूं। यहां इस क्षेत्र में बड़ी सुविधायें प्रयोगशालाएं, एपरेटस, विभिन्न भाषाओं की टेप, लाइब्रेरी, सभी से क बड़ा आसान हो जाता है। तुलनात्मक अध्ययन मे बड़ी मदद मिलती मेरे शोधकार्य मे यहीं पर कर रहे मास्टर्स डिग्री के विद्यार्थी मेरी पू सहायता करते है। इस वजह से कार्य आसानी से और जल्दी होता है। शि की यूं भी यहां बड़ी सुविधायें हैं। पुस्तकालय और उनकी व्यवस्था तो दे ही बनती है। पेपर्स तैयार करके उनकी प्रतियां तत्काल निकल जाती है प्रोफेसर होने के नाते सम्मान भी पूरा मिलता है। केवल विद्यार्थी के न

मे जो पढ़ा आपके आशीर्वाद से मैं वही जीवन में उतार रही हूं। मेरा ये संसार बड़ा ही आनदमय है।

काफी लंबे समय से मैके नही गयी हूं। पत्रो से कुशलता मालूम पड़ती है। 'उन्हे' इस बार छुट्टियां होगी तभी जाऊंगी। पिछली बार दीपावली से पहले नैनीताल गये थे। पहाड़ों की गोद में बसी यह झील किसी नायिका के सजल नेत्रों का स्मरण करा देती है। उसमे तैरती कश्तियां आंखों मे झूलते स्वप्नों की तरह दिखायी देती है और इन कश्तियों मे बैठे असख्य संसार···।

नैनीताल कितनी सुदर जगह है। यहां की सुदर घुमावदार सडकें और घोड़े की पीठ पर यहा के गहन वनो मे भटकना···यहा से हिमालय की ऊंची-ऊंची सफेद स्फटिक-सी चोटियों का दर्शन कर मन आत्मविभोर हो गया। प्रकृति कितनी सुंदर और मनमोहक है इसका दर्शन पहली बार हुआ। इसके दर्शन जो रोज करता हो वो तो धन्य ही है। हिमालय का यह अद्वितीय सौदर्य, यहां के लंबे-लबे देवदारु के वृक्ष, जड़ी-बूटी-वनस्पतियो से लदी इसकी उपत्यकाएं जिसने सदियो से कवियो को आकर्षित किया है वह कितना सत्य है। कभी फिर अवसर मिले तो नैनीताल जाऊं···और आस्वाद लू वहां के प्राकृतिक वैभव का।

अपने अमरीका प्रवास के बारे में समय निकालकर लिखना। आपके पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी।

सभी बड़ों की ओर से आशीर्वाद और हम दोनों को आपके आशीर्वाद···!

आपकी
मीना

प्रिय मीना,

सस्नेह। तुम्हारा पत्र मिला। बधाइयां मिलीं। तुम्हारी शुभ कामनाएं तो हरदम साथ हैं। हां मैं इतनी जल्दी और अचानक चला आया कि सबको पत्र नही लिख सका। हालांकि तुमने इसकी शिकायत नही की फिर भी इस

में सफल होने के लिए इन दोनों एलीमेंट्स का होना जरूरी है। मीना के पति सुयश इंजीनियर हैं और दोनों का स्नेह मेरे प्रति अगाध है। 'अनुदा' का संबोधन वह तभी से करती है जब मैं उनके मकान में रहता था। एक अच्छा परिवार।

निशा तुम्हारा यह संबोधन बहुत ही अच्छा लगा। मात्र संबोधन में कितनी गहराइयां होती हैं···अगर कोई प्यार से पुकार ले तो मझधार में भी कश्ती को सहारा मिल जाता है। यह संबोधन पहली बार तुमसे मिला है। और इसने मुझे प्रणय कथा का नायक बना दिया है। इसमें तुम्हारे प्यार और लज्जा की लालिमा छा गयी है जिसमें मैं दस हजार मील दूर बैठा हुआ भी बंधा हुआ हूं।

निशा तुम्हारे नाम में एक मंत्रमुग्ध आलिंगन है। मनुष्य जब दिवस पर्यन्त के संघर्षों से थक-हार जाता है तो निशा के दामन में जगमगाते सितारे उसे कितनी आशा बधाते हैं। ऐसा लगता है जैसे उसे जीवन का बहुत बड़ा सबल मिल गया हो। तुम्हारे दामन में भी मेरे जीवन की आशाओं के दीप झिलमिला रहे हैं जो निराशा के बीहड़ वन में भी मेरे साथ पदप्रशस्तक बने हुए हैं। मनु जब जीवन में विपथगामी होता तो श्रद्धा उसका हाथ थामे उसे रहस्यलोक में ले जाती जहां दर्शन और आनंद की उसे प्राप्ति होती। वही श्रद्धा हो तुम निशा।

प्रणय की अनुभूति भी कितनी मादक होती है। अथाह और अनंत सागर की तरह है यह। मगर यह प्रणय सागर के तल-प्रदेश में किसी सीपी में बंद मोती है, जो इसे पा लेता है वह इस जीवन में ही नहीं सौ-सौ जीवन में तर जाता है। प्रणय में एक-दूसरे को समर्पित कर देना, एक-दूसरे की स्मृतियों में खो जाना, कैसा जुनूपन है ये। ये भी एक दैवी इलहाम है। इसे ही कबीर ने सच्चा प्रेम कहा है। यही भक्ति है, यही कर्मक्षेत्र है। इसमें आराध्य के दोनों रूप होते हैं आराध्य और आराधक। और इसी-लिए वह पूर्ण बन जाता है। गालिब का निकम्मापन यही तो था। इसमें रात-दिन आठों पहर एक हो जाते हैं। इसे वही जान सकता है जिसने इसके सूक्ष्म रूप को जाना हो। तभी तो मीरा कहती है—'अरी री मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय।' मेरे सामने आलम और शेख की

मुझे नही देखते। विश्वविद्यालय की बिल्डिंग, यहां के होस्टल, लाइब्रेरी, सब आधुनिक सुविधाओं से संपन्न है। मैं कैंपस मे ही रहता हूं।

कई से पहचान और मैत्री हो गयी है। कभी काम से थक जाता हूं तो इन लोगों के साथ वातचीत, घूमना, फिरना हो जाता है। कुछ परिवार वाले जिनमें यहां के प्रोफेसर्स है, मुझे बुलाते है और उनके साथ रहकर काफी सीखने को मिलता है। इनका परिवार बड़ा ही आदर्श परिवार है। पति-पत्नी, दो-तीन बच्चे। मकान तो सुदर होते ही हैं।

खानपान में मेरी तो वेजीटेरियन हेब्टिस हैं इसलिए ब्रेड, बटर, फल आदि ही लेता हूं। कभी-कभी मैक्सिकन खाना खाने या भारतीय होटल जो एक है वहां चला जाता हूं। मैक्सिकन खाना अपने खाने से काफी मिलता है।

तुम्हारी फोटो की शिकायत सही है। नही भेज पाया। निशा को पत्र में लिखूंगा कि अपनी एक तस्वीर तुम्हें भेज दे। सुदर तो निशा है ही मगर तुम्हारी नजर कैसे लग सकती है···

मैं यहां से जब भी आऊंगा उसकी सूचना तुम्हें दूंगा···। सभी को मेरा अभिवादन। तुम्हें व सुयश को स्नेह।

तुम्हारा
'अनुराग'

हमसफर निशा,

सस्नेह सुमिलन। तुम्हारा और मीना का दोनो पत्र एक साथ मिले। आज रविवार होने से दोनों पत्रो के उत्तर लिखने बैठ गया। मीना के पत्र मे शिकवा था कि उसको अभी तक तुम्हारा फोटो नहीं भेजा। अचानक ही यहां आने में भूल गया। अब तुम बुरा ना मानो तो अपना एक फोटो उसे भेज देना। मीना मेरी वहन है। सगी नही पर उससे भी बढ़कर। क्योंकि उसमें बहन के साथ मित्र भाव भी है और फिर बड़ी दार्शनिक है। विवाहित होने के कारण मुझसे ज्यादा अनुभवी और प्रेक्टिकल है। वह अपने जीवन मे बहुत सफल है क्योंकि भावुक होने के साथ-साथ रेशनल भी उतनी ही। जीवन

जल उठी है···किसी आराधना में लीन हो गया है यह मन। कैसी अदम्य चाहना जागी है मन में।

निशा ! तपन का नाम ही जिंदगी है। और इसमें जो तपता है उसे खुद खुदा आकर चूम लेता है। तुम्हें अपने अध्ययन के लक्ष्य को अवश्य पूरा करना है। फर्स्ट क्लास क्यों नहीं आयेगा ? भाषा जिसकी दासी हो, भाव जिसका मर्म हो, अनुभूति जिसकी मांस हो, उसके लिए यह मंजिल निश्चित ही है। मैं नहीं हूं तो क्या, मेरी दुआ, मेरा स्नेह सभी तो है। तुम अब यूनिवर्सिटी जाने लगी होगी।

उपमा तो अलंकार है और वह वही कार्य कर रही है। उसमें तुम्हें एक अच्छा हमजोली मिला। जो तुम्हारी भावनाओं को समझती है उस उपमा को और बिंदु जो नासमझ है दोनों को स्नेह। तुम्हारी उस तमन्ना में दोनों का कितना योगदान है। यह तमन्ना कौन-सी है···लिखोगी नहीं ? सबको बताओगी और हमें ही नहीं।

कविताओं का टेप तैयार हो गया और अब कल उसे रवाना करूंगा। कुछ डालर्स बचे थे उनसे एक टेप रेकार्डर और कैमरा ले लिया है। दोनों ही मन की खूबसूरती को अपने में बंद कर लेते हैं और संभालकर रख लेते हैं भविष्य के लिए। एक चीज तुम्हारे लिए भी ली है···इसी आशा से कि पसंद तो आ ही जायेगी।

आज डॉ० राइट, अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं, उनके यहां लंच पर जाना है। लगभग एक बजे जाऊंगा। डॉ० राइट बहुत ही विद्वान और सज्जन व्यक्ति हैं। श्रीमती राइट बड़ी ही भद्र महिला है। डॉ० राइट को पिछले वर्ष ही डाक्टरेट की पदवी मिली है। उम्र यही होगी चालीस की। दो शिशु हैं इनके—लड़की बड़ी ही सुंदर है लुभावनी। भूरे बाल, नीली आंखें···।

उन यादों के साथ जिनमें तुम समायी हो···
मधुर पत्रों व पलों की शुभभावना और 'जो तुम चाहो'

तुम्हारा—
जिसे तुमने अपने में बांधा

तस्वीर नये रंग भर जाती है।

तुम बंबई जाओगी तो अरविंद और भाभी को मेरी ओर से खूब-खूब याद कहना। तुम्हारा अब वहां जाना मेरी अनुपस्थिति में भी उपस्थिति का ही संकेत होगा। शशि भाभी जिक्र न छेड़ें हो ही नहीं सकता। बंबई जाने में कोई और बात तो नहीं है न ? वहां या वहां से लौटने पर लिखना सब बातें, तब तक बेचैनी रहेगी।

तुम्हारे डैडी को पैसे से प्यार होना स्वाभाविक है। पैसे से नफरत सिर्फ उसे ही होती है जिसके दिल में ढाई अक्षर प्रेम का अंकुरित होता है। उसमें उनका प्रेम बाहरी है, भौतिक है। चंद मुलाकातों में मैं बहुत निकट पहुंचा हूं उनके और छू आया हूं उनकी जिंदगी के व्यक्तिगत किनारों को। वहीदा दीदी और नजीर हुसैन भी उसी नाव के यात्री हैं। उनके दिल में क्या है यह बहुत अधिक तो नहीं समझा जा सकता मगर पैसे की हवस जरूर है जो मैं समझ पाया हूं। उनकी दृष्टि में व्यक्ति की कम और चांदी के रुपहले कलदारों की कीमत ज्यादा है जो आज हर धनिक वर्ग की विचारधारा है। निशा तुम्हारा चांदी की दीवारों में रहते-रहते ऊब जाना मुमकिन है जबकि मैं तो इन दीवारों को देखते-देखते ही ऊब गया हूं। न जाने कैसी गंध आती है इनमें। एक बेगानापन लगता है। बनावटीपन की खाल जैसे ओढ़ रखी है इन लोगों ने। भावुकता इन छलछद्मों से सहमती ही है। मनुष्य की जिंदगी हिसाब का एक अंग बन गयी है···व्यापार बन गयी है। उन्हें हमारी बातें निरर्थक और बेबात लगती हैं हमें उनके जीवन में रसहीनता दिखायी देती है। दोनों दृष्टियों में कितना बड़ा अंतर है···।

मेरे स्वप्न भूल जाओ इन थोथी बातों को। इनको याद करके उन लम्हों को क्यों वीरान बना दें। प्रेम जहर भी है तो वो भी पीना है···जब जहर का प्याला हाथ में ले ही लिया तो उसे ही अमृत बनाना है···जो पी लेता है उसके लिए वह अमृत बन जाता है।

निशा ! जीवन के ये सुहाने पल···इन्हें मैं पिंजरे में बंद कर लेना चाहता हूं। ये ही तो स्पंदन है हमारे जीवन के। ये इस जहां में भी जिंदा रखेंगे हमें और उस जहां में भी। जीवन यात्रा का कैसा स्थल आ गया है··· एक संगम जहां काशी और काबा दोनों मिल गये हैं, कैसी ज्योति मन में

डैडी के बारे में मै तो कभी और कुछ जानने की कोशिश ही नही करती। कभी-कभी सब साथ बैठते है तो थोड़ी-बहुत हंसी-मजाक में समय कट जाता है। हां इतना जरूर मालूम पड़ता है कि इस बार मिल में नफा कम हुआ है या ज्यादा। अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए अपनी पार्टी को चुनाव के लिए इतना रुपया देना पड़ा। ये बातें भी जाने-अनजाने होती है वरना घर मे मम्मी मम्मी का काम करती है। काम क्या बस घर की व्यवस्था आदि की देखभाल करती है और मैं मेरा काम। डैडी के सामने कभी पोस्टमैन आता है और पत्रो मे आपका पत्र होता है तो कहते हैं—लो भाई तुम्हारे प्रोफेसर का लेटर आया है। कभी-कभी तो मैं सोचती हू किसी-किसी व्यक्ति के अपने-अपने कैसे दायरे होते है जिनमे अपने ही नही पहुच पाते। यू जरूरत भी नही होती जब तक कोई कठिनाई न हो। वहीदा दीदी भी तो पार्टनर है मिल मे। वो भी सोचती रहती है व्यवस्था के बारे मे।

उपमा रोज ही आपके बारे मे पूछ लेती है। जिस दिन पत्र आता है उस दिन तो वह चैन ही नही लेने देती। जरा मेरा ध्यान इधर-उधर होता है और तुरंत कह देती है—खो गयी यादों मे। और झट से चुटकी भर लेती है। दोनों को आपका पत्र मे भेजा गया स्नेह दे दिया है। बिंदु को तो जैसे सहसा आनंदप्रद वस्तु मिल गयी हो।

ये समय जल्दी बीत जाये और आने वाला कभी न बीते···रतनारे बंधनो की उम्र लंबी हो···

सुमधुर यादों के साथ—

आपकी,
कविता भी, कल्पना भी

× × ×

मैं अमरीकी जीवन में अब तक घुल-मिल गया था। यहां का खान-पान यद्यपि भारतीय भोजन से भिन्न था फिर भी किसी प्रकार की कठिनाई नही महसूस हुई थी। शाकाहारी प्रवृत्ति के कारण फल-फूल आदि ही अधिक भाते थे। ड्रिंक्स का यहां जीवन में आवश्यक और महत्वपूर्ण स्थान है। मैं कभी-कभी बीयर जैसे लाइट ड्रिंक का आनंद ले लिया करता था।

मेरे स्पंदन, मेरे अनु,

आपका स्नेहासिक्त पत्र मिला। आपके पत्रों को पढ़ने मे जितना आनंद आता है उसका बयां करना बड़ा कठिन है। ऐसे जीते-जागते पत्र, एक-एक शब्दा इसका मन को छू जाता है। वीणा वादिनी तो आपकी लेखनी और आपके कंठ मे ही बसी हुई है। एक मधुर कल्पना लोक में पहुंचा देते हैं ये पत्र। रोम-रोम पुलकित हो जाता है और इच्छा होती है कि प्रेम के भी पंख होते तो उड़कर आ जाती।

गीतों का कैसेट समय पर मिल गया बिना कस्टम आदि की कठिनाइयों के। और अब तक दो बार सुन चुकी हूं। बहुत ही मनमोहक स्वर, कविता का स्वर, गीतकार का कंठ और उसमे जड़ी हुई कोमल, मादक और स्वप्न-लोक में पहुंचा देने वाली अनुभूति। कितने अनुपम गीत है, कितना 'अनुराग' है इनमें। इन गीतों के अनुराग में जो बंधा वो बंधा—मुक्त हो ही नहीं सकता। भला मुक्त होना चाहेगा भी कौन। लबों पर आकर बस जाती हैं पंक्तियां, गुनगुनाती रहती हूं इनके बोल। इस गीत ने तो कितना लुभाया है—'तुमने साथ दिया है मेरा, सौ-सौ जीवन सफल हो गये।' सच अनु! मेरे तो सफल हो ही गये। मेरे मन के भावों को प्रश्रय मिला है आपके गीतों में, साकार हो गये है। कितनी कोशिश करती हू लिखने की, मगर कहां लिख पाती हूं।

आपने लिखा है सो मीनाजी को अपना फोटो भेज दूगी। आप कहें और न भेजूं ऐसा कभी हो सकता है। कल ही पोस्ट कर दूगी।

आपका काम बहुत अच्छी तरह चल रहा होगा। जल्दी ही पूरा करके लौट आयें यही आरजू मन मे समायी हुई है। मैंने यूनिवर्सिटी जाना शुरू कर दिया है। आपके प्रेरणात्मक पत्र से पढ़ाई में मन लगा रही हूं लेकिन जब भी कविता-कहानियों में कोई ऐसा प्रसंग आता है तो व्यथित हो जाती हूं और यह जुदाई रुला-रुला जाती है। मन पर उदासी छा जाती है। ऐसे क्षणों में मेरा साथ मेरी अनमोल संपत्ति आपके गीत देते है।

बंबई जाना तो पड़ेगा ही। वहां से आते ही अवश्य ही लिखूंगी खत। वैसे ऐसी-वैसी कोई बात नही है अभी तक तो। खुदा न करे कभी कुछ हो। आप ऐसे विचारों को मत लाइये अपने दिल में।

जीवन के इन पृष्ठों को और इन्हे पढ़ता रहा।

जीवन संबंधी चर्चाएं मुझे आनंद प्रदान करती है। सामाजिक अध्ययन ज्ञान ततुओं की पिपासा शात करता है। इन चर्चाओं में अक्सर यूनिवर्सिटी के छात्र एवं छात्राएं होते जो बढ़े तर्कों के साथ अपने विचार व्यक्त करते थे। विद्यार्थी वर्ग अभिव्यक्ति मे बड़ा सशक्त लगा। उनका आपसी उन्मुक्त मिलक ग्रथिरहित जीवन के निर्माण मे सहायक हो सकता है, ऐसा मैंने महसूस किया।

यहा कुछ नीग्रो परिवारों से भी मैत्री सबध बन गये। वे लोग भी अपने विकास और अस्तित्व मे बराबर लगे हुए है। उनकी अलग कॉलोनीज द्वद्व का भाव तो स्पष्ट करती है मगर वे अमरीकी जीवन मे अपना स्थान बनाते जा रहे है। मिस एण्डर्सन मेरी काफी घनिष्ठ मित्र हो गयी थी। उन्ही के साथ समय मिलने पर मैं उनके साथ चला जाता था। इन्ही परिवारो में न नीग्रो न अमरीकन मगर रंग की दृष्टि से आकर्षक और सुदर नस्ल को देखकर फी सेक्स का चित्र उभर आता था। और मैं सोचने लगता कि आखिर कुदरत के शासन मे तो पति-पत्नी का अस्तित्व नर और मादा का ही है। बाकी संबंध तो मानवीय पैदाइश ही है।

× × ×

मेरे आने से हालाकि घरवाले खुश नही थे मगर आ ही गया तो उन्होंने इसे एक नैसर्गिक घटना के रूप मे ले लिया है। बेटा हजारों मील दूर जा रहा है—माता-पिता के लिए यह दूरी घलनायक जैसा ही कार्य करती है इसे मैं जानता था अतः उनकी अस्वीकृतिया बड़ी स्वाभाविक थी। यह सतान के प्रति ऐसा प्रेम भाव भारतीय जीवन की ही विशेषता है। यहा आने के साथ ही मैंने पत्र लिखने का कार्य अनवरत प्रवाह के रूप मे चालू रखा था क्योंकि मेरा आलस अनेक प्रकार की आशंकाएं पैदा कर सकता था। और अक्सर अपने प्रियजन के प्रति ये आशकाएं बुरे विचारों मे ही फसी होती हैं जैसे कहीं बीमार तो नही पड़ गया, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी—ऐसी ही वे सिर-पैर की कल्पनाएं मन मे उठा करती है। मेरे पत्रों के उत्तर भी घर से बराबर आते रहते उनमें खाने-पीने की व्यवस्था ठीक रखने, स्वास्थ्य के बारे मे ध्यान रखने के नोट्स हर पत्र मे होते थे। कुछेक

मेरा उद्देश्य मेरा अध्ययन था। इस अध्ययन को मैं समय में पूरा करने के उद्देश्य से इधर-उधर कम ही भटकता था और यहां के जीवन में अधिक प्रवेश नहीं किया परंतु यहां की सामाजिक व्यवस्था कुछ दृष्टियों से ठीक लगी। एक मुक्त समाज। व्यक्ति पर किसी प्रकार के थोथे बंधन नहीं है जिनके नीचे व्यक्ति दब जाये और उसके जीवन की अनुभूति समाप्त हो जाये। समाज बिलकुल छोटा और निजी होता है। अपनी पत्नी, अपनी संतान और स्वयं। माता-पिता भी अपने जीवन-बसर की व्यवस्था के लिए अपनी संतान पर आधारित नहीं रहते। संतान के भरण-पोषण की चिंता भी 18 वर्ष के बाद कम हो जाती है। विवाह या विवाहोपरांत सामाजिक दायित्व तो वहां है ही नहीं। विवाह भी स्वतंत्र और जातीय मामला है। माता-पिता इसमें किसी प्रकार की दखलअंदाजी नहीं करते। विवाह के साथ-साथ वहां विवाह विच्छेद भी बहुत ही आसान है। इस प्रथा से जीवन में अस्थिरता आती है लेकिन मनोवैज्ञानिक कुंठाओं से व्यक्ति बचता है। विरोध जीवन में उत्पन्न हो और उससे विद्वेष पैदा हो इससे तो अच्छा है अलग ही हो जायें।

अमरीकी परिवारों से मेरी मैत्री घनिष्ठ हो गयी थी। अतः उनके साथ अवसर में इन सब विषयों की चर्चा कर लिया करता था। इससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान वैचारिक स्तर पर होता था। मैंने महसूस किया कि अमरीकन महिलाएं भारतीय समाज और वैवाहिक परंपराओं से काफी प्रभावित हुई थी और हैं, भारतीय पुरुषों को चाहती थी क्योंकि उनको जीवन की उसमें निश्चितता दिखायी देती थी।

अमरीका भौतिक दृष्टि से बड़ा समृद्ध देश है। जीवन का खुलकर उपभोग वे लोग करते हैं। पांच दिन काम करने के बाद सप्ताहांत में दो दिन निकल जाते हैं घरों से दूर होटेल्स, मोटेल्स में और खो जाते है आनंद के क्षणों में। उसके बाद फिर वही दैनिकी। सुरा सुंदरी नाइट क्लब्स, उनमें नृत्य करती हुई कंवरे सुंदरियां, जाझ पर धुन पीटते हुए हृष्ट-पुष्ट नीग्रो, उन धुनों पर थिरकते हुए बदन, झूमते हुए नवयुवक, नवयुवतियां, ऐसा लगता है कि जीवन की अनिश्चितता के साज पर मस्ती का गीत छेड़ने में लगे हुए हैं सब। कुछ पाने को कुछ भूलने को। मैं भी कभी-कभी देख आया

में देखने की तीव्रता को रोकना असभव था और अपने अमरीकी मित्र के साथ ही 'डिजनीलैंड' चला गया।

कितना सुदर स्थल है डिजनीलैंड—एक छोटी-सी दुनिया हूबहू दुनिया। डिजनी ने अपने मन मस्तिष्क मे जागी हुई कल्पना को कैसा सुदर रूप दिया है—इसे देखकर मनुष्य की उपलब्धियो का अंदाज लग जाता है। तरह-तरह के अजूबे, जगल, जगल के जानवर, पानी, सागर, सागर की गोद में पड़े असंख्य प्राणी, वस्तुएं, आदिम मानव, गुड्डे-गुड्डियो के घर, मोनोरेल्स, कठपुतलियां, स्वर्ग-नरक, अजीब-अजीब इस प्राणी जगत के प्राणी एक साथ सब कुछ सिमट आया है यहा। इसे देखकर दुनिया में कुछ भी देखने को नही बचता। जिसे इस दुनिया के एक-एक कोने से परिचित होना हो वो डिजनीलैंड देख ले। उसकी जिज्ञासा के एक-एक ततु सतुष्ट हो जायेंगे।

काश! निशा—मुझे ऐसा लगा कि अगर तुम साथ होती तो इस डिजनीलैंड का मजा कुछ और ही होता। जब तक घूमता रहा यानी कि दोनों दिन मेरी आखो मे तुम छाई रही। हर जगह जहां नजर पड़ती स्मृतियां तुम्हें उन नजारों में ला बिठाती और विह्वलता दिल में जाग उठती। यहा एक स्टाल पर एक अमरीकन लड़की को देखा जो साड़ी पहने हुए सेल्सगर्ल का कार्य कर रही थी। उसके साथ एक फोटोग्राफ लिया है। बहुत कुछ तुमसे मिलती-जुलती। इसे देखकर तो तुम्हारी याद एकदम साल गयी। डिजनीलैंड के फोटोग्राफ्स लिए है कुछ रंगीन और कुछ ब्लैक एड व्हाइट। अगर तुम चाहोगी तो पहले भेज दूगा नही तो अपने साथ ही लाऊंगा।

यहीं से 'लास एजल्स' और 'हालीवुड' भी गया हू। लास एंजल्स सागर के किनारे सचमुच परियों का नगर है। एक हसीन नगर जहा सौंदर्य की देवी—अनेको रूपों मे जन्म लेकर अवतरित हुई है। बिकनीज के लिए प्रसिद्ध यह नगर प्राकृतिक सौंदर्य से भरापूरा है। उस नैसर्गिक सुषमा मे सजीव सौदर्य किसी भी सैलानी को लुभा लेता है। सौदर्य के पुजारियों के लिए तो यह जगह स्वर्ग है। 'हालीवुड' तो यहा के कलाकारों की नगरी है। 'मूवी ससार' है यह। एलिजाबेथ टेलर, रिचर्ड बर्टन, मर्लिन मनरो, एक से एक बढ़कर कलाकार—। सिनेमा जगत की सपूर्ण कला यहां आकर बस

पत्रों में कभी-कभी भिन्नता होती थी।

मित्रों के पत्र आते उनके विषय कुछ अलग ही होते थे। कुछेक पत्र जिनमें यहां से कुछ लाने के लिए उनकी इच्छनीय वस्तुओं की सूची होती थी, कुछ यही सोचते थे मैं परीलोक में पहुंच गया हूं और भौतिक उपभोग का रसामृत ले रहा हूं। मनुष्य के जीवन में 'सेक्स' का कितना महत्वपूर्ण स्थान है तथा हर व्यक्ति के व्यवहार में यह कही न कही किसी न किसी रूप में व्यक्त होता है, इसका अंदाज इन पत्रों से सही-सही लग जाता है। यह मनुष्य की आदिम, मूल और प्राकृतिक प्रवृत्ति है इसे नकारा नही जा सकता। पाश्चात्य ने इसे स्वाभाविक रूप में लिया है। इसलिए इसके प्रति कोई अश्लील आकर्षण नही रहा। जबकि हमारे यहा इसे चरित्र के दायरें में समेटकर जिज्ञासा को विस्तार दे दिया है। फलस्वरूप कई दोष मनोवैज्ञानिक स्तर पर उत्पन्न हो गये हैं।

× × ×

यहां आकर मैं जहां अपने अध्ययन की छाप लगा देना चाहता था वही अवसर मिलने पर संपूर्ण राष्ट्र को भी देख लेना चाहता था। एक अकल्पनीय अवसर जो मिला था उसका पूरा लाभ ज्ञान-विकास की दृष्टि से कर लेने की इच्छा भी उतनी ही बलवती थी। यू तो अमरीकी परिवार में किसी दूसरे का खर्च उठाना बड़ा मुश्किल है मगर मित्रों का अपनापन कि वे मुझे इधर-उधर घुमाने ले जाते थे। और कुछ बचत व कुछ उनकी मदद से अमरीका के महत्वपूर्ण हिस्सों को देखकर अपने अमरीकी ज्ञान को सजीव बना लिया।

प्रिय निशा,

तुम्हारा पत्र इस बार मेरी प्रतीक्षा में मेरी टेबल पर बड़े संतोष से ट्रे में रखा हुआ था। और तुम बड़ी बेताबी से इंतजार कर रही होगी प्रत्युत्तर का। इस देरी ने तुम्हें उदासी भेंट में दी होगी। इन दिनों मुझे एक सप्ताह के लिए केलिफोर्निया जाना था और वहां गया तो मेरे मन में 'वाल्टडिजनी' की छोटी-सी दुनिया का जो स्वप्न आसीन था उसे सादृश्य रूप

सपनों की भेंट के साथ···

तुम्हारा—
जिसे तुमने प्रेरणा दी

श्रद्धेय अनु दा,

बहुत-बहुत धन्यवाद आपका और निशाजी का। बहुत-बहुत बधाई ऐसी सुंदर भाभी ढूढ़ लाने के लिए। फोटो देखकर तो ऐसा लगा जैसे किसी परी की तस्वीर हो। बड़ी-बड़ी कजरारी आंखें, चाद-सा गोल मुखड़ा, अर्द्ध विधु-सा भाल, घनी काली अलकें, रसीले होंठ और उस पर कुदरती डिठौना। बस अब आप अमरीका से आते ही जल्दी से बारात सजा लें···और हां मैं भी आऊंगी शादी में और चलूंगी बारात में। अभी से सोच लेना कि मुझे बारात में चलना है।

फोटो के साथ-साथ पत्र भी था···छोटा मगर मन को मोहने वाला। एकदम आपकी छाप दिखती है। वैसी ही मनोहारी भाषा, वैसे ही संबोधन, वैसे ही भाव—सब कुछ तो एक जैसा है।

घर पर सबको पता है या नहीं आपकी इस खोज का? मांजी तो बहुत प्रसन्न होंगी देखकर। ऐसी सुंदर बहू को जब वो देखेंगी तो मन ही मन लड्डू फूटेंगे उनके। बरसों के बहू लाने और अनु दा को ब्याहने के अरमान एक साथ पूरे हो जायेंगे। मैं तो कहती हूं मेहमानों की लाइन लग जायेगी देखने को और अनु दा आप···अब तो आपको अपने भाग्यवान होने पर विश्वास हो जायेगा न। यूं भी जब आप पढ़ते थे तो मैं तो आपको भाग्यवान ही मानती थी। कितनी लड़कियां मरती थी आप पर। कॉलेज में जिन कुछ लड़कों की चर्चा होती थी उनमें आपका नंबर पहला था। हमारे गर्ल्स कॉलेज की लड़कियां भी तो करती थी बातें। और अब···अब तो प्रोफेसर हो गये हो फिर भला ऐसा सुंदर, भावुक और बहुमुखी व्यक्तित्व किसे प्रभावित नहीं कर पायेगा। हम दोनों रात को डिनर के बाद बैठे-बैठे आपकी चर्चा में पड़ गये और सोते-सोते यही वाक्य उनकी जबान पर था ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति विरले ही होते हैं। आपकी बहिन होने का गर्व और

जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, मिलने की इच्छा और भी अधिक बलवती होती जा रही है। दो वर्ष के दीर्घ अंतराल के बाद इस मिलन में कैसी आतुरता होगी! ये नयन जो अपने में उस मूरत को बिठाये हुए हैं, किस तरह उस रूप का पान करेंगे! मिलन के क्षण की कल्पना कैसे अनंत सागर में ले जाकर डुबो देती है।

मेरा कार्य ठीक प्रकार से चल रहा है। तुम्हारी प्रेरणा सदा प्रेरित किया करती है और अपनी मंजिल पर बढ़ा जाता हूं उत्साह के साथ। हर काम के पीछे प्रेरणा का कितना महत्व है। व्यक्ति को जीवन के बीहड़ वन में से निकालकर उज्ज्वल मार्ग पर लाकर रख देने का काम यह प्रेरणा ही तो करती है। मेरा मारग भी जगमगा गया है तुमसे। तुम्हारे त्याग की नींव पर मेरी सफलता का महल बन रहा है—कैसा अनोखा रंग होगा इसका, कितनी सुंदरता होगी इसमें। मुझे याद आती है ये पंक्तियां—

यह जीवन तो संघर्षों का संगम है,
किस-किस से भागोगे तुम जीवन में,
अगर प्रेरणा हार गयी यदि तुम जीवन,
कौन बनेगा प्रेरक मानव जीवन का।

तुम्हारा और मेरा ये बंधन जो अदृश्य है सदा अमर रहेगा। इस बंधन की याद रोमांचित कर जाती है। सुबह और शाम सजी हुई हैं इन स्मृतियों से।

तुम परीक्षा की तैयारी पूरी लगन के साथ करना। मुझे पूरी उम्मीद है तुम्हारी उस सफलता की जो तुम्हारी तमन्ना है। अगर फर्स्ट क्लास तुम्हारा नहीं आया तो शायद किसी का नहीं आये। बिंदु और उपमा भी अपनी पढ़ाई में लगी होंगी। मेरी शुभकामनायें उनके साथ हैं।

गीत तुम्हें पसंद आये तो गीत रचने का श्रम सार्थक हुआ। एकाकीपन के साथी ये गीत ही तो हैं जो अपना सुख देते हैं सारा गम लेकर। हर बार दूर करते हैं मन की उदासी ये गीत और दे जाते हैं एक रोमिलता। अगर ये गीत न होते तो विरहीजनों के विरही मन को कहां सहारा मिलता। ये सदैव अपने रहते हैं, हर पल अपने।

इन्हीं गीतों के साथी—गीतों के प्राण···शुभ रात्रि के साथ···मधुर

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

देती। मैं उसके अलंकारों को सार्थक करने का प्रयास करता। इन अलंकारों ने मेरे मन के यथार्थ पर आदर्श की मूर्ति गढ़ दी'''मैं सामान्य से कुछ अलग हूं ऐसा लगने लगा और एक नियति—निर्धारित प्रतिभा उभरती रही।

मीना के मन मे मेरी 'अनुजा' बैठी हुई थी जो हर समय पथ प्रदर्शक का काम करती थी। बहिन का अधिकार उसने पूरा पा लिया था इस कारण दूसरों को न कहने का अधिकार उसका अधिकार बन गया था जिसे वह अपना कर्तव्य मानती थी। बड़े भाई का दायित्व मैं अब तक किस रूप में निभा पाया कह नही सकता। मगर उसे मैंने बचपन मे पढ़ाया, उसकी चोटी खींची, कभी काम न करने पर धमकाया, उसकी सगाई के वक्त बाजार से मिठाई लाया और विवाह के समय बरबस ही विदाई के क्षणों मे अश्रु प्रवाहित हुए थे। इन्ही घटनाओं ने आत्मीय बना दिया था। गैर-रिश्ते जो अपने हो जाते है उनमें यही निश्छलता रहती होगी। मीना भी इसी तरह अपनों मे आ गयी थी। उसका सारा परिवार ही घर-सा हो गया था। मीना के माता-पिता, भाई-बहिन, सभी से ऐसा ही नाता बन गया था।

मैं सोचता था दुनिया ऐसे ही रिश्तो में बदल जाये तो कितना अच्छा हो। सारे द्वेष-भाव की जगह आकर बस जायें ये दिली जजबात। कितनी सुंदर हो जाय दुनिया उस दिन। आधा द्वंद्व तो उसी दिन समाप्त हो जाय इस संसार का। मगर सोचने से क्या होता है। यह जगत तो हिसाबी है। तौल-तौल कर कायम करता है रिश्ते। इसके व्यवहार में समाया हुआ है एक अभिनय। पहन रखे है मुखौटे इस जगत ने। उसकी असली सूरत कुछ और नकली कुछ और। निशा के पिताजी को ही लो न। घरवालों द्वारा वह कितने जाने जाते हैं, उतना भी नही जितना मैं जान पाया हूं और मैं भी कहां दावा कर सकता हूं उन्हें पूरा जानने का। इतनी मुलाकातों के बाद भी अभी तक दूरी नहीं मिटी। उम्र की भले ही न मिटे दिलों की तो मिट ही सकती है। यही हाल, यही संबंध था नजीर भाई से। औपचारिकता मगर वो भी ऐसी कि जिस पर 'नो एडमीशन' की तख्ती लटकी हो और अंदर जाने के लिए आज्ञा देने वाला प्रवेश द्वार पर कोई न हो। न

भी बढ़ गया।

अनु दा ! आपकी ख्याति सर्वत्र फैले। आपके हृदय में छिपा हुआ अनुराग कण-कण पर छा जाये। विद्वान प्रोफेसर, जगप्रसिद्ध लेखक के रूप में आप सदैव प्रतिष्ठापित हों, आपके सुमधुर कंठ से गाये गये गीत जन-जन के होठों पर झूलें—यह इच्छा तो तब से है, कितनी सच और साकार हो रही है। आपकी कविता का संग्रह देखकर, पढ़कर, कैसी अद्वितीय मानवतावादी भावना जाग जाती है। कैसी क्रांतिकारी ज्वाला आपके सरल से व्यक्तित्व में समायी हुई है। राष्ट्र को चेतित कर देने वाली, मंगल भावनायें मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो जाती है जब आपके इस संग्रह को पढ़ने लगती हू।

आप तो सचमुच सरस्वती पुत्र है। साहित्य का आंगन आप जैसे पुत्रों *से ही पुष्पित और सुरभित हुआ है। कॉलेज के दिनों में आपका काव्य रंग-*मंच पर प्रतिष्ठा पाना ही भविष्य की उन्नतता का प्रतीक था। अब नये संग्रह कब छपवा रहे हो ? अब तक तो कई सौ काव्य लिख डाले होंगे। जिसमें होगा राष्ट्रप्रेम, मानव-प्रेम, हृदयासिक्त प्रेम और महान राष्ट्र का चित्रण। और क्या-क्या लिख रहे हो, इसकी कभी-कभी जानकारी मुझे भी दे दिया करो।

आपका शोध कार्य अब तो पूरा होने वाला होगा। क्या काम समाप्त होते ही लौट आओगे या वहीं से कहीं और विश्व-भ्रमण जाने का इरादा है। अपना आने का कार्यक्रम लिखना। यहां आयेंगे—बंबई या दिल्ली। एयरपोर्ट पर स्वागत करने को जी चाहता है।

और सब यथावत् है। नवीन कुछ नहीं।

हम दोनों की ओर से सादर प्रणाम।

आपकी बहिन
'मीना'

× × ×

मीना के पत्र जब भी आते उसमें एक विशेष मनोवैज्ञानिक शैली होती। महान न हो तो भी महान बनने की पौध अंकुरित हो जाये ऐसा ही उसकी लेखनी का जादू था। मैं यही नहीं सोच पाता कि मेरा दुनिया के नजारों में क्या अस्तित्व है मगर मीना मुझे थोड़ा बहुत इसका परिचय करा

नाटकीय वस्त्र···दुनिया जो चाहे कहे मैं···अपने दिल को धोखा नहीं दे सकता···निशा···निशा···।

मन में तूफान का अनुभव किया मैंने और इस तूफान मे घिरी डूबती-उतराती कश्ती मुझे दिखायी देने लगी···। रात के सन्नाटे में मेरी चेतना के तार शब्दों की पाल बांधने लगे···

मेरे हमसफर दोस्त···

पावन संबंधों का प्यार ! अभी सहसा तुम्हारी याद आने लगी। न जाने क्यों मन में अजीब-सा तूफान उठा जिससे मैं सहम-सा गया। ऐसा लगा जैसे किसी भीषण परिस्थिति में घिर गया हूं। सब एक तरफ हो गये हैं और उनसे मैं अकेला जूझ रहा हूं। संसार के चौराहे पर मैं खड़ा हूं। हर आने-जाने वाला खिलवाड़ करके उन्हीं कहकहे करने वालों की पंक्ति में जाकर खड़ा हो जाता है। मेरे साथ किया जाने वाला व्यवहार मात्र अभिनय था। मैं अभिनय को वास्तविकता समझकर अपना सब कुछ लुटाता रहा। और अंत में सब कोई चले गये···रह गया बस मैं अकेला।

कैसा विचार है निशा ! आज इन बातों का घर बनाना किस अदृष्ट का संकेत है ? कंपित कर दिया है इस खयाल ने। जैसे आशा की किरण पर निराशा के बादलों का गहरा शासन छा गया हो। इन क्षणों में बस एक तुम्हारी ही तुम्हारी याद आ रही है। मन करता है कि कोई इन पलों में साथ हो तो उसके मुंह से दिलासा के दो शब्द सुनूं ताकि मन को धीरज बंधे। कितना परवश हो जाता है मनुष्य परिस्थितियों के। कितना बेबस है इंसान कि जब वो चाहता है तब कुछ नहीं हो पाता।

काश ! निशा तुम मेरे पास होतीं ! कैसा नाता है तुमसे ये कि आज एक छोटे से खयाल ने इतना व्यथित कर दिया है। हर संघर्ष से अकेला जूझने वाला तुम्हारा अनुराग थरथरा गया है। जैसे-जैसे वहां आने का समय निकट आ रहा है वैसे-वैसे मन कमजोरियों से घिरता जा रहा है। क्या तुम्हें भी ऐसा ही होता है ?

पत्र का उत्तर शीघ्र देना। यूं भी तुम्हारा खत आये काफी समय हो

होगा बांस तो न बजेगी बांसुरी वाली बात थी वहां। ऐसे व्यक्तियों के चेहरे भी विशिष्ट प्रकार के हो जाते है। ऐसी एक गंभीरता, जहां से काफूर हो गयी हों सलवटें, आंखों में सिकुड़न जिनमें दिल के दागों की परछाईं दिखती हो, और होठों पर एक झूठी मुस्कान जो एरोप्लेन मे प्रवेश करते समय एयर होस्टेस के लबों पर दिखायी देती है। होंठ खुलते हैं और दांत दिखते हैं···ऐसा लगता है जैसे उसने अपने पर दिल फेंक दिया है मगर एक···दो···तीन हर पैसेंजर के साथ वही अदा। एक ही पेटेंट की मुस्कान, एक ही पेटेंट का अभिवादन···रजिस्टर्ड पेटेंट की तरह।

इस रंग-बिरंगी दुनिया में अलग-अलग रंग यही तो है। मगर मुश्किल तो उसे पड़ती है जो अपना खालिस दिल लेकर निकलता है और आकर खड़ा हो जाता है चौपड़ में। हर आने जाने वाला खेलता है उस दिल से और चला जाता है···आता है···जाता है···आता है···जाता है···और इसी आशा में कि कोई तो अपना होगा, दिल की दुकान खोलकर खड़ा रहता है मगर एक पल ऐसा आता है कि उस चौपड़ पर कोई नहीं होता···दिल होता है···गम होते हैं···और आस-पास वातावरण में होते हैं चर्चे दिल की नादानी के···दिल से खेल करने वालों के कहकहे।

मैं समझकर भी नहीं समझ पाता कि ये सब नाटकीय रंगमंच है और मुझे भी नाटक करना है। मगर मेरा अभिनय, मेरा रोल तो संजीदगी से भरा हुआ है। मैं कैसे करूं ये नाटक? किस तरह वफाई के संवादों को बेवफाई में बदल लूं? किस तरह नायक में खलनायक उतार लूं और वही शुरू कर दूं जो ये लोग कर रहे है? हर चौपड़ पर खड़े दिल से दो पल का रास रचा लूं और फिर दूसरी चौपड़···तीसरी···और फिर नये-नये···।

मैं व्यथित-सा बिस्तर पर लेटा तकिये में मुंह ढांप लेता हूं जहां चुपके से आंसू बहने लगते हैं। तकिये के साथ को पाकर आंखें उसकी हमदर्दी भरी ऊष्मा में सजल हो उठती हैं। मन सोचने लगता है यह क्या? दुनिया देखेगी तो क्या कहेगी? तुम्हारी आंखों में आंसू···इस पर अट्टहास करेगा यह जग···अब तुम बड़े हो गये हो···दुनिया में एक प्रतिष्ठित आसन पर बैठे हो···नहीं। नहीं। ये झूठी प्रतिष्ठा ही तो अभिनय है···नहीं चाहिए ये

नाटकीय वस्त्र···दुनिया जो चाहे कहे मैं···अपने दिल को धोखा नहीं दे सकता···निशा···निशा···।

मन में तूफान का अनुभव किया मैंने और इस तूफान मे घिरी डूबती-उतराती कश्ती मुझे दिखायी देने लगी···। रात के सन्नाटे में मेरी चेतना के तार शब्दों की पाल बांधने लगे···

मेरे हमसफर दोस्त···

पावन संबंधों का प्यार ! अभी सहसा तुम्हारी याद आने लगी। न जाने क्यों मन में अजीब-सा तूफान उठा जिससे मैं सहम-सा गया। ऐसा लगा जैसे किसी भीषण परिस्थिति मे घिर गया हूं। सब एक तरफ हो गये हैं और उनसे मैं अकेला जूझ रहा हूं। संसार के चौराहे पर मैं खड़ा हूं। हर आने-जाने वाला खिलवाड़ करके उन्हीं कहकहे करने वालों की पंक्ति मे जाकर खड़ा हो जाता है। मेरे साथ किया जाने वाला व्यवहार मात्र अभिनय था। मैं अभिनय को वास्तविकता समझकर अपना सब कुछ लुटाता रहा। और अंत में सब कोई चले गये···रह गया बस मैं अकेला।

कैसा विचार है निशा ! आज इन बातों का घर बनाना किस अदृष्ट का संकेत है ? कंपित कर दिया है इस खयाल ने। जैसे आशा की किरण पर निराशा के बादलों का गहरा शासन छा गया हो। इन क्षणों में बस एक तुम्हारी ही तुम्हारी याद आ रही है। मन करता है कि कोई इन पलों में साथ हो तो उसके मुंह से दिलासा के दो शब्द सुनूं ताकि मन को धीरज बंधे। कितना परवश हो जाता है मनुष्य परिस्थितियों के। कितना बेबस है इंसान कि जब वो चाहता है तब कुछ नहीं हो पाता।

काश ! निशा तुम मेरे पास होती ! कैसा नाता है तुमसे ये कि आज एक छोटे से खयाल ने इतना व्यथित कर दिया है। हर संघर्ष से अकेला जूझने वाला तुम्हारा अनुराग थरथरा गया है। जैसे-जैसे वहां आने का समय निकट आ रहा है वैसे-वैसे मन कमजोरियों से घिरता जा रहा है। क्या तुम्हें भी ऐसा ही होता है ?

पत्र का उत्तर शीघ्र देना। यूं भी तुम्हारा खत आये काफी समय हो

होगा बांस तो न बजेगी बांसुरी वाली बात थी वहां। ऐसे व्यक्तियों के चेहरे भी विशिष्ट प्रकार के हो जाते हैं। ऐसी एक गंभीरता, जहां से काफूर हो गयी हों सलवटें, आंखों में सिकुड़न जिनमें दिल के दागों की परछाईं दिखती हो, और होठों पर एक झूठी मुस्कान जो एरोप्लेन में प्रवेश करते समय एयर होस्टेस के लबों पर दिखायी देती है। होंठ खुलते हैं और दांत दिखते हैं…ऐसा लगता है जैसे उसने अपने पर दिल फेंक दिया है मगर एक…दो…तीन हर पैसेंजर के साथ वही अदा। एक ही पेटेंट की मुस्कान, एक ही पेटेंट का अभिवादन…रजिस्टर्ड पेटेंट की तरह।

इस रंग-बिरंगी दुनिया में अलग-अलग रंग यही तो है। मगर मुश्किल तो उसे पड़ती है जो अपना खालिस दिल लेकर निकलता है और आकर खड़ा हो जाता है चौपड़ में। हर आने जाने वाला खेलता है उस दिल से और चला जाता है…आता है…जाता है…आता है…जाता है…और इसी आशा में कि कोई तो अपना होगा, दिल की दुकान खोलकर खड़ा रहता है मगर एक पल ऐसा आता है कि उस चौपड़ पर कोई नहीं होता…दिल होता है…गम होते हैं…और आस-पास वातावरण में होते हैं चर्चे दिल की नादानी के…दिल से खेल करने वालों के कहकहे।

मैं समझकर भी नहीं समझ पाता कि ये सब नाटकीय रंगमंच है और मुझे भी नाटक करना है। मगर मेरा अभिनय, मेरा रोल तो संजीदगी से भरा हुआ है। मैं कैसे करूं ये नाटक? किस तरह वफाई के संवादों को बेवफाई में बदल लूं? किस तरह नायक में खलनायक उतार लूं और वही शुरू कर दूं जो ये लोग कर रहे हैं? हर चौपड़ पर खड़े दिल से दो पल का रास रचा लूं और फिर दूसरी चौपड़…तीसरी…और फिर नये-नये…।

मैं व्यथित-सा बिस्तर पर लेटा तकिये में मुंह ढांप लेता हूं जहां चुपके से आंसू बहने लगते हैं। तकिये के साथ को पाकर आंखें उसकी हमदर्दी भरी ऊष्मा में सजल हो उठती हैं। मन सोचने लगता है यह क्या? दुनिया देखेगी तो क्या कहेगी? तुम्हारी आंखों में आंसू…इस पर अट्टहास करेगा यह जग…अब तुम बड़े हो गये हो…दुनिया में एक प्रतिष्ठित आसन पर बैठे हो…नहीं। नहीं। ये झूठी प्रतिष्ठा ही तो अभिनय है…नहीं चाहिए ये

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बड़ा अच्छा है। नीना के पिता एरोनेटिक कंपनी में इंजीनियर हैं। नीना की मां कोई नौकरी नहीं करती। बातचीत के दौरान लगा कि उनका छः-सात महिलाओं का क्लब है। हर रोज वे मिलते हैं तथा कुछ-न-कुछ नयी क्राफ्ट आदि की चीजें बनाते हैं और कभी विभिन्न डिशेज बनाती हैं।

नीना ने आते ही मुझे अपने ही हाथ से बनाया हुआ केक खिलाया और फिर थोड़ी ह्विस्की मिलाकर बीयर पिलायी। यहां आने के बाद तीसरी बार ड्रिंक्स लिया। पहले दो बार पार्टी में लेकिन आज के ड्रिंक्स ने मेरा खूब साथ दिया। शायद नीना ने इसीलिए पिलायी हो कि मेरे मन पर छायी उदासी मिट जाये। एक हमदर्द के रूप में सही मदद की नीना ने और मुझ पर छाये गम को धीरे-धीरे करके पी गयी वह काकटेल बीयर जैसे-जैसे मैं उसे पीता गया। नीना भी मेरे साथ पीती रही। और सुनाती रही इधर-उधर की कई बातें। कितने संस्मरण सहेज रखे हैं इसने भी। डिनर लेने के बाद नीना ही छोड़ गयी मुझे। उस समय तक मेरे मानस पटल पर छाये हुए निराशा के बादल छंट चुके थे।

दूसरे दिन मैं सोचता रहा 'नीना' निशा के ही रूप में आ गयी थी। जैसे नियति ने उसे मेरे पास भेजा हो। एक हमदर्द की तरह उसका आना, सच्चे दोस्त की तरह चेहरे के भावों को पढ़ना, हठ करके अपने साथ ले जाना, मदिरा के घूंट पिलाकर मुझे प्रकृतिस्थ बना देना—इतना सब कोई करेगा यहां यह अनुभव, यह घटना भी जीवन के अलबम में चित्र बनकर सज गयी है। भावनाओं का सागर सारी दुनिया में एक जैसा है। लहू के रंग की तरह गमों का रंग भी एक ही है तभी तो बिना कुछ कहे समझ गयी थी नीना ठीक उसी तरह जिस तरह तुमने यहां आने से पहले घर में कदम रखते ही पूछा था—आज आप उदास क्यों हैं? नीना और निशा, निशा और नीना—अलग-अलग चेहरे, अलग-अलग देश, अलग-अलग संस्कृति, एक-दूसरे के लिए अपरिचित मगर मेरे लिए दोनों ही परिचित, दोनों में कितनी साम्यता, कितनी हमदर्दी, कितना समर्पण। अमरीकी मित्रावली में सचमुच निशा यह नीना अपना अपूर्व स्थान रखती है। यहां रहूंगा तब भी, यहां से तुम्हारे पास लौट आऊंगा तब भी।

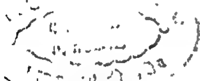
यह अक्सर बातें किया करती है तुम्हारी जब भी तुम्हारा पत्र लाकर

गया है। परीक्षायें निकट आ रही हैं इसलिए अध्ययन में व्यस्त होगी मगर दो पत्रों के बीच का अंतराल अब चुभने लगा है। शोध कार्य लगभग पूरा होने को है। पंद्रह रोज में काम समाप्त करके शेष औपचारिकतायें पूरी करने लगूंगा।

मीना का पत्र आया था। फोटो पाकर वह बेहद प्रसन्न है। कितनी तारीफ लिखी है तुम्हारी। पता नहीं देखेगी तो तुम्हें छोड़ेगी भी या नहीं। खूब सराहना की है मेरे भाग्य की जैसे उसने मेरे भाग के अंक देख रखे हैं।

परीक्षायें कब से शुरू होंगी लिखना। बंबई आयी होगी। बंबई में अगर ये देश पास होता तो कहता एक-दो रोज के लिए चली आओ या फिर मैं ही आ जाता मगर दूरी'''दूरी भी कैसी एक पूरब दूसरा पश्चिम।

उपमा और बिंदु को सस्नेह शुभकामनायें। और घर पर सभी को मेरा हार्दिक अभिवादन'''। तुम्हें मधुर-मधुर यादों के चिनार वन में प्या'''र!



तुम्हारा—
जिसे इन पलों में तुम्हारी जरूरत है

मेरे प्रिय स्वप्निल-साथी,

कल जैसे ही तुम्हारा पत्र समाप्त करके बैठा था इतने में मिस नीना आ गयी। मिस नीना जो यूनिवर्सिटी में सेक्रेटरी का कार्य करती है और जितने भी फॉरन स्टूडेंट्स आते हैं उनकी संपूर्ण व्यवस्था मिस नीना ही करती है। अक्सर भारतीय फेलोज यहां आते हैं इसलिए यहां रहते हुए भी नीना ने थोड़ी हिंदी सीख ली है और धीरे-धीरे बोलती है। यही अक्सर पूछती है 'हाउ इज यूअर फियांस' और जब भी तुम्हारा पत्र आता है खुद ही देने आती है। मेरे चेहरे की उदासी देखकर एकदम पूछ बैठी'''आज अनुराग उदास क्यों हैं? कोई बात? और फिर मुझे अपने साथ ले गयी। पहले तो वो शापिंग करने गयी और उसकी मदद करता रहा खरीददारी में उसके बाद घूमते-फिरते नीना के घर पहुंचे। नीना के घर में उसके माता-पिता और एक छोटी बहन व एक भाई है। सभी बड़े मस्त हैं। घर

पत्र लेकर मैं वापस अपने कमरे में आ गयी। पत्र ने आपके दर्द को मेरे सामने रखा तो उसी समय रला गया वो पत्र और खो गयी आपकी यादों में।

मेरे जीवन के सुंदर स्वप्न ऐसा कुछ भी तो नहीं। आप क्यों व्यर्थ चिंता में खो गये? मेरे अनु! मत सोचना कभी भी ऐसा। ऐसा कभी नहीं हो सकता। कौन-सा विचार था जो मेरे प्रिय को झकझोर गया? अनु! जीवन के ऐसे क्षणों के लिए ही हमदम होता है। दोनों में से जब भी कोई वेदना के सागर में डूबता है तो एक नाविक बनकर उसे उबार लेता है। काश! इन क्षणों में मैं आपके पास होती तो वेदना के आंसुओं को अपने होंठों से पीकर मुस्कान बिखेरने में लग जाती। मगर ये देश और काल की दूरियां भी कैसा बंधन हैं! मनुष्य यहीं आकर नियति से परास्त हो जाता है। मैं भले ही यहां हूं मगर मेरे प्यार मेरा मन, मेरी आत्मा तो आपके साथ है और सदा रहेगी। आपने प्रथम मिलन में ही मेरे दिल पर कैसी मुहर लगा दी थी कि उस क्षण के बाद इन नयनों में एक ही छवि छायी रहती है। दुबारा न मिलते तो जीवन भर यह स्मृति तो रहने वाली ही थी। भाग्य ही कहूं कि यह मिलन नजदीकियों में और निरंतर आत्मीयता में बदलता गया। और अब, अब ये हाल है कि दो तन एक मन की स्थिति आ गयी है। मैं आपके साथ के कैसे सपने सजाने लगी हूं, क्या हो गया है मुझे, कैसे जहां में खो गयी हूं? ·

प्यार की भी कैसी सुहानी दुनिया होती है। जहां प्रिय-ही-प्रिय की स्मृतियां छायी रहती हैं। मन हरदम अपने हमसफर की यादों में खोया रहता है। हर पल उसकी ही मूरत देखा करता है। किसी से न बात करने को जी चाहता है न कहीं जाने को। दिल यही सोचता है कि कोई उसके प्रिय की ही बात किया करे। कान एकटक से वो मधुर मीठी बातें सुनते रहें और आंखें मनमीन को देखती रहें। कैसा पागलपन है यह। कान्हा के प्यार में राधा और गोपियां जो खोयी रहती थीं वो सच ही तो है। इसी प्रेम की मस्ती में ही तो मीरा विष का प्याला पी गयी थी। कैसी शक्ति है इस प्रेम में जो अपने को भुला देता है और इस को 'वह' बना देता है। मेरे मन को अपने साथ ले जाने वाले मेरे जीवन मेरा यह प्यार कबूल हो।

देती है मुझे। मैं कहता हूं पढ़ लो न नीना तुम ही यह पत्र। पढ़ती है मगर बार-बार पूछती है अर्थ और फिर मैं अंग्रेजी में जब समझाता हूं तो वह उठती है 'हाउ स्वीट्स' 'हाउ नाइस' और चिन्ह कर लेती है तुम्हारे पत्रों को। तुम देखना होठों पर लगी लिपस्टिक ने नीना के लबों की मुहर तुम्हारे कुछेक पत्रों पर लगा दी है। बिलकुल भोले भाव से। अनजाने।

निशा आज मैं वैसा ही हूं जैसा घटा घिरने से पहले था। इतने पत्रों की संख्या में कम वाला पत्र पढ़कर तुम निराश मत होना। अगर उसी समय पत्र न डालता तो शायद आज वह मेरे ही पास मेरे बदले हुए इरादे के कारण पड़ा रहता और फिर जब एक दिन इस दिन की घटना सुनाता तो वह पत्र निकालकर बताता और इस पर तुम शायद खफा होती कि तुम्हें ही खत लिखा और तुम्हें ही नहीं भेजा। आशंकाओं से घिरा चित्र तुम्हें कैसा लगा होगा जैसे कैक्टस के बीच में फंसा हुआ कोई निरीह प्राणी। मगर कैक्टस तो आजकल ड्राइंग रूम में लगाये जाते हैं। प्रतीकों का युग जो है।

और तुम लिखना क्या कुछ कर रही हो? कैसी चल रही है पढ़ाई? अब तो परीक्षा की पूरी मानसिक तैयारी करनी होगी। तुम्हें प्रथम श्रेणी मिले यही कामना यही आशा।

मेरी ओर से सभी को अभिवादन कह दिया करो हर बार न लिखूं तो भी।

मधुर स्वप्नों वाली मधुर रात तुम्हें मिले और हर नयी मुस्कान के साथ हर प्रातः हो।

मुग्ध कर देने वाला स्मरण···

तुम्हारा
जो तुम्हारी स्मृतियों में है

मेरे अपने, मेरे गीतकार,

आपका पत्र अभी-अभी मिला। यूनिवर्सिटी जाने के लिए देहरी पर पैर रखा था कि पोस्टमैन के हाथ में बढ़ा हुआ लिफाफा मेरे सामने था।

मन फूला नहीं समाता। लैंड तो आप बंबई ही करेंगे न। मैं एक दिन पहले ही पहुंच जाऊंगी बंबई और सीधे अरविंद के पास ही जाऊंगी, वहीं रहूंगी। मेरा एम० ए० आपकी डी० लिट्० एक साथ पूरे हो रहे हैं और फिर इसके बाद…

खत लिखना जल्दी ही…आशा है अब तक उदासी के बादल छंट गये होंगे और मशगूल होंगे अपने काम में। आपकी सफलता की खुदा से दुआ करती हूं…

शीघ्र मिलने की आरजू लिए मादक कल्पना के साथ,

आपकी निशा

जिसके जीवन में जगमगाते चांद बनकर आप आये

समय अनवरत गति से बहा जा रहा था। मनुष्य चले या न चले समय तो निरंतर चलता ही रहता है और मनुष्य को आकर दस्तक देता रहता है। जिसने समय को पहचान लिया समझ लो उसने दुनिया के दर्शन को जान लिया। समय की चाल ऐसी विचित्र होती है कि अच्छे-अच्छे ज्ञानी इसकी चपेट में आ जाते हैं। समय का थप्पड़ मनुष्य कभी नहीं भूलता। यह कब करवट बदलता है, कब हंसाता है, कब रुलाता है, कुछ पता नहीं चलता। मैं अपने कार्य को समय में पूरा करके डिग्री लेकर वापस लौटने की तैयारी में था। इससे पहले कि वापस अपनी जन्मभूमि पर चरण रखता अमरीका को अपनी स्मृतियों में बसाने निकल पड़ा और न्यूयार्क, वाशिंगटन, शिकागो, कनाडा आदि समेट लिए अपने जीवन के पृष्ठों में। 15 सितंबर को मैं बंबई लैंड करने वाला था जिसकी सूचना घर, मीना और निशा को दे चुका था। खयालों की दुनिया सजाता हुआ प्लेन में बैठ चुका था। सोच रहा था दो साल के बाद फिर अपनी भूमि, अपना देश—निशा बंबई आ गयी होगी। सुबह जब प्लेन सांताक्रुज पर उतरेगा—निशा बड़ी उत्सुकता से आकाश में उड़ते हुए और धीरे-धीरे उतरते हवाई जहाज पर और फिर उसके दरवाजे पर नजरें टिकाकर देखेगी…देखते ही हाथ हिलाकर स्वागत करेगी…हाथों में उसके पुष्प होंगे उसी तरह जिस तरह विदा

मां पूछती है कि आजकल तू अपनी सहेलियों के यहां-वहां कहीं नहीं जाती है? क्या बात है? तुझे तो घूमना-फिरना अच्छा लगता था ये अब क्या हो गया है? दिन भर अपने कमरे में गुमसुम रहती है। मैं क्या कहूं मां को कि मुझे दिल का रोग हो गया है और इस दर्द की दवा बहुत दूर है। अभी तक तो किसी को भी नहीं मालूम यह प्रणय की कहानी। न डैडी जानते है न मम्मी। अच्छा ही है जानकर करेंगे भी क्या। मौका आने पर बता ही दूंगी। अभी से इस मधुर डगर का राज क्यों खोला जाये। रहस्य मे प्रेम में अधिक रोशनाई आ जाती है। संसार हकीकत जान लेगा तो अच्छा-खासा अफसाना बन जायेगा। प्रेम की मदिरा का नशा शायद चोरी छुपके पीने में अधिक बढ़ जाता है। और आपने तो यह मदिरा इस कदर पिला दी है कि इसकी खुमारी हरदम छायी रहती है।

कल बिंदु मुझसे पूछती थी कि सर तुमसे मैरिज करने वाले हैं। मैं सोचती थी उसे ये कभी मालूम नही पड़ेगा मगर इस प्रश्न से मैं चौंक गयी।

'तुझे किसने कहा बिंदु ?' मैंने पूछा।

और वह मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बजाय बोली, 'यदि तेरी जगह मैं होती तो कब की 'हां' कर देती और सबसे कहती फिरती। एक तू है कि कुछ कहती ही नही।'

'क्या कहूं तू ही बता न बिंदु।'

'कहना क्या है एक ही तो अक्षर कहना है—'हां' और डैडी-मम्मी को बतला देना है। और फिर घरवाले मना भी क्यों करेंगे। किसी ऐसे-वैसे से तो तू कर नही रही है ब्याह। फिर डरने की बात ही क्या है? और क्यूं री निशा वो जो चिट्ठी थी वो इसीलिए थी न।' बिंदु बोल उठी।

मुझे उसके साहस ने परास्त कर दिया। मन ही मन सोचने लगी बिंदु तो गजब की सहेली निकली। धीरे-धीरे अनुमान से सब अर्थ निकाल लिया और वो भी बिलकुल सही। मगर इतना जरूर है ये बातें उसके मन में ही हैं। किसी से नही कहा है उसने। इतने दिनों बाद कल ही उसने ये बातें की मुझसे। बड़ी डेरिंग नेचर की है बिंदु और बड़ी मददगार। उपमा चुलबुली है, बिंदु गंभीर। दोनों अपनी-अपनी जगह।

आपका काम अब समाप्ति पर है और जल्दी ही आ जायेंगे यह जानकर

के लिए 1 बजे जैसे ही पहुंचा···साथियों की बधाइयां, उपकुलपति द्वारा स्वागत, विद्यार्थियों में मेरे आ जाने का चर्चा···एक के बाद एक अनेक साथियों विद्यार्थियों के अनेक प्रश्न···किंतु आज न उपमा, न बिंदु और न ही निशा···

मन उलझ गया। विषम परिस्थितियां आंखों के सामने आकर नाचने लगीं। मैंने उपमा से मिलना उचित समझा और उसे शाम को घर आने की सूचना भिजवा दी।

लगभग 8 बजे जबकि कुदरत अपना सुरमई आंचल फैलाये हुए थी उपमा दरवाजे पर दस्तक देती हुई अंदर चली आयी और विदेश यात्रा की सफलता पर मुस्कराते हुए बधाई देती हुई बैठ गयी···

'आओ आओ···उपमा !'

उपमा मेरे मन की वेदना समझ गयी···

'क्यूं, आज कॉलेज में कोई दिखायी नहीं दिया···न ही तुम···न बिंदु···न···'

'मैं तो सर इसलिए नहीं आयी कि सुबह से सिर दर्द हो रहा था—बिंदु का पता नहीं क्यों नहीं आयी···और···'

'और क्या···?'

'और निशा···उसका तो सब जगह आना-जाना बंद है।'

'क्यूं ?'

'पता नहीं सर, किसी ने उसके डैडी को एक पत्र लिखा है और उसमें न जाने कितनी ऊलजलूल बातें···आप सोच भी नहीं सकते और मैं तो सर···पत्र पढ़कर डैडी खूब गरम हुए। निशा जिसको आज तक कुछ नहीं कहा उसे बुरी तरह डांटा और उसका घूमना-फिरना बंद हो गया और वह एक कैदी की तरह नजरकैद है। दिन-रात अपने कमरे में अकेली बैठी रहती है···रो-रोकर तो आंखें सूज गयी हैं···कल शाम मैं गयी तो पूछती थी, 'सर आ गये' और बस मुझसे लिपटकर फूट-फूटकर रोती रही···'

'पत्र किसने लिखा ? तुमने पढ़ा···?'

'किसी का नाम नहीं है सर उस पर। जिस दिन वह चिट्ठी आयी मैं भी वहीं थी···उन्होंने वो चिट्ठी मुझे पढ़ने को दी तो मैं भी चौंक

किनारे से दूसरे किनारे तक आंखें देख गयी सबको मगर कोई दिखायी नही दिया···घड़ी की सुइयां टिक-टिक कर घूमती रहीं···एक-एक मिनट कर 1 घंटा बीत गया···कस्टम की औपचारिकताएं भी पूरी हो गयी···मैं एयर-पोर्ट के ही लाउंज में बैठ गया, और नेक्स्ट फ्लाइट जिससे मैं अपने नगर पहुंच सकूं की पूछताछ करने लगा। बंबई मे रुकने की कोई इच्छा नही रह गयी थी। पांच बजे फ्लाइट मिलने वाली थी···मैंने अपनी सीट बुक करा ली।

सात बजे एयर होस्टेस ने घोषणा की कि बेल्ट बांध ले, प्लेन लैंड करने वाला है तो मेरी चिंताओं का तांता टूटा। बाहर निकलते ही टैक्सी करके घर पहुंचा जहां और कोई नही इंतजार कर रहा था सिर्फ मेरा नौकर···

टैक्सी रुकते ही वह दौड़कर आया—'नमस्ते सा'ब' कहकर दरवाजा खोला और सामान उतारने लगा···।

टैक्सी वाला किराये के पैसे लेकर रवाना हो गया था। रामू ने तब तक सामान अंदर पहुंचा दिया था।

'तुझे कैसे मालूम पड़ी रामू कि मैं आ गया हू···।'

'कल उपमा बीवीजी आयी थी सा'ब, मुझे कहा कि कल या परसों प्रोफेसर साहब आ रहे है और घर की सफाई-वफाई करनी है। वो बताती गयी और मैं सफाई करता रहा···और उसके बाद उन्होंने इधर-उधर सामान जमाया और दो बजे चली गयी। मैं तभी से आपका इतजार कर रहा हूं···।'

'और भी कोई था या उपमा बहनजी अकेली थी···?'

'कोई नही था सा'ब बस वो ही अकेली थी।' रामू बोल उठा।

कुछ समझ नही आ रहा था···बंबई की प्रतीक्षा···यहां भी प्रतीक्षा··· ही बनी हुई है। निशा···कुछ न कुछ बात अवश्य है। वह क्यों नहीं आयी! बंबई नही तो यहां तो···उपमा को क्यू भेजा···एक के बाद अनेक आशंकाओं से मन घिर गया···।

× × ×

दूसरे दिन यूनिवर्सिटी में रिपोर्ट करना था और ड्यूटी रिज्यूम करने

आया अभी परीक्षा के वक्त मिलना ठीक नहीं…कहीं वह परीक्षा ही न दे पाये। मेरे सामने एक गहन समस्या हरदम नाचने लगी। जिसका हल ढूढ़ते हुए भी नहीं ढूढ़ पा रहा था।

परीक्षा समाप्त होने के बाद उपमा आयी थी और बता गयी कि पेपर्स ठीक हो गये हैं लेकिन प्रथम श्रेणी आ जाये ऐसे नहीं।

काश! ये परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती तो निशा की साध पूरी हो जाती…और अमरीका से लौटने के बाद ये मंजर मुझे भी नहीं देखना पड़ता। मगर कुदरत के खेल को कौन जानता है। नियति कब कौन-सा पासा फेंकेगी अगर मालूम पड़ जाय तो फिर बात ही क्या?

'उपमा, ये सब फ्राड कहीं उन्हीं के किसी घरवाले ने तो नहीं किया! मुझे तो संदेह होता है इसमें किसी ऐसे ही व्यक्ति का हाथ हो सकता है।'

'लेकिन सर, ये सब कैसे मालूम पड़े? निशा खुद नहीं समझ पायी कि आखिर ये सब कैसे और किसने किया? क्यों किया? कितने ख्वाब सजाती थी…कहती रहती थी…सर आने वाले हैं…अपन बंबई चलेंगे…वहां से फिर से आ जायेंगे…उनका जोरदार स्वागत करेंगे सब लोग यूनिवर्सिटी में…अपन भी करेंगे अलग से…और बात करते-करते डूब जाती थी यादों में…अब तो इच्छा होती है तो भी किसी से बात नहीं कर सकती…।'

'उपमा, मैं एक पत्र लिख देता हूं…तुम उसे पहुंचा तो दोगी न…। अब उसके और मेरे बीच में एक तुम ही हो जो यह संदेशा ला-ले जा सकती हो…।'

'पहुंचा दूंगी, सर। पर पता नहीं वो जवाब देगी या नहीं। वह नहीं चाहती कि उसकी वजह से आपकी बदनामी हो, कोई तकलीफ हो।'

मैंने पत्र लिखकर उपमा को दे दिया यही सोचकर कि इससे मझधार में पड़ी कश्ती को थोड़ा सहारा मिल सके। मन में दबे हुए अरमान उस तक पहुंच सकें। उसके वीरानेपन में समाज की आंधी से टिमटिमाता हुआ प्रेम का दीपक बुझने न पाये और जब शमा जल रही है तो पतंगे का तो काम ही जलना है।

गयी···कितने गलत लांछन लगाये गये है···'

मेरा सर घूम-सा गया। मै कशमकश मे पड़ गया। आखिर ये पत्र किसने लिखा होगा ? क्यों लिखा ? ऐसा कौन दुश्मन है ? अवश्य ही कोई बड़े दिनों से इसी प्रतीक्षा में होगा।

'लेकिन निशा के डैडी तो बड़े आधुनिक विचारो के है। उन्होंने एकदम, बिना सोचे-विचारे उस गुमनाम पत्र पर विश्वास कैसे कर लिया। आखिर कोई पूछताछ तो करते।'

'शक के भी कोई दिमाग होता है, सर। उस दिन कितना बोले थे वे। बिचारी निशा कुछ कहने को होती और चुप कर देते उसे। जरा भी तो उसकी बात सुनने को तैयार नही थे। मैंने भी कितना कहा मगर अपनी ही बात सब कुछ सही मानकर डांट-डपट करते रहे। आंटी बीच मे बोलने लगी तो और ज्यादा गुस्से हो गये···कहने लगे, 'तुम चुप रहो··· और मैं जो कहता हूं वही होगा।' उसके बाद से निशा ने तो यूनिवर्सिटी आना भी बंद कर दिया है। पता नही परीक्षा भी देगी या नही।'

'लेकिन समझ मे नहीं आता उपमा कि कासम भाई इतना फार्वर्ड, इतनी पहचान, सब कुछ। थोड़ी तहकीकात तो करते। लगता है किसी ने बहुत ज्यादा भड़का दिया है। मै उनसे बात करूंगा।'

'आप इस सबंध मे बात न करें तो ही अच्छा है, सर। मिले भी तो इस तरह कि उन्हें मालूम ही न हो कि आप यह सब जानते है। अजनबी बने रहें तो ही ठीक है।'

'लेकिन कब तक उपमा···आखिर कोई रास्ता तो निकालना ही होगा। मै मौका मिलने पर कासम भाई को सारी स्थिति समझाऊंगा···'

× × ×

परीक्षाएं शुरू हो गयी। निशा आती और बिना किसी से बोले-चाले परीक्षा देकर चली जाती। हां उसकी झलक देखी जिसमे एक ऐसी निशा दिखायी दी जो मानो बरसों से बीमार हो, जिसके चेहरे के वासतिक रग सब उड़ गये थे···हंसी कारागृह मे बंद हो गयी थी, आंखों मे निराशा के बादल उमड़ आये थे···और पतझड़ से भी गयी-बीती जिंदगी ने उसे अपने दामन मे समेट लिया था···मैं उससे मिलने को बेचैन हो गया मगर खयाल

पल बसे हुए है। तुम्हें न देखकर इस नगर मे कितना बेगानापन लगता है। ऐसा लगता है जैसे बिलकुल रिक्त हो गया हूं मैं। आनंद जैसे छिन गया है। गीत जैसे रूठ गये है।

मैंने कभी इस मधुर कहानी के ऐसे मोड़ की कल्पना भी नही की थी। सोच भी नही सकता था कि कोई इस प्रकार का व्यवहार करेगा। कासम भाई—तुम्हारे डैडी भी इस तरह बिना सोचे-विचारे इस प्रकार का कदम उठा लेंगे, अपनी इकलौती, लाड़ली बेटी पर ऐसा जुल्म गुजारेंगे इसकी कल्पना तक नही की थी। कितना अजीब लगता है उनका यह व्यवहार। कभी मुझसे मिले तो मैं समझाऊं उन्हें। तुम्हारे और मेरे पावन-रिश्ते के पहलू मे ले जाकर दिखाऊं उन्हें कि जीवन का एक ही नहीं दूसरा पहलू भी है जिसमें है स्निग्धता, मधुरता और निश्छल समर्पण। मैं उनसे तब ही मिलूंगा जब तुम कहोगी।

मेरी प्रेरणा ! उदास मत होना। मैं अपनी मंजिल को पाने के लिए कुछ भी उठा न रखूंगा। जीवन के चौराहे पर जो राह मुझे मिली है उसे मैं अंधकार मे नही खोने दूंगा। तुम्हारे प्रेम की ज्योति से ही तो अनुराग का घर-चौबारा प्रकाशित हुआ है। आशा का सुहाना नीड़ ही तुम से बना है। अगर तुम नही मिली तो क्या यह आशियाना बस पायेगा। अब यह दिल किसी का भी नही हो सकेगा।

उस दिन परीक्षा हाल मे जाते हुए तुम्हें देखा था। जैसे चंद्र को ग्रहण लग गया हो। जी तो चाहता था दौड़कर अपनी बाहों मे भरकर सबको बता दूं कि तुम मेरी हो मगर नियति ने न जाने कौन से अनजाने बंधन डाल रखे हैं।

पत्र का उत्तर शीघ्र लिख भेजना। कहीं ऐसा न हो कि इंतजार के पल ही समाप्त न हों।

असमाप्त प्यार के साथ—

तुम्हारा ही तुम्हारा
अनुराग

प्रिय निशा,

सुमधुर प्यार। यह पत्र इसलिए लिख रहा हूं कि लिखना जरूरी था। मिलने के अभाव में एक यही रास्ता है जो उपमा के द्वारा अपनाना पड़ रहा है। उपमा न होती तो शायद यह मारग भी नहीं मिलता।

अमरीका से चलते और हवाई जहाज में बैठे-बैठे जो कल्पनाएं की थीं वो सब कल्पनाएं ही रह गयीं और उनकी जगह आ गयीं अनजानी घटनाएं। उपमा ने जब ये सब बातें सुनायीं तो जी में हुआ कि इसी वक्त आऊं और समझाऊं कि हकीकत क्या है। मगर दूसरे ही क्षण पैरों में बंधन पड़ गये और सोचने लगा कहीं इससे तुम पर और अधिक मुश्किल न आ जाये। कहीं मेरी सफाई से मन पर पड़े अफवाहों के छींटे और अधिक गहरे न हो जायें। कहीं मेरी जबान से सफेदी में छिपे सफेद इंसानों की काली करतूतों की कहानी न निकल जाये। मुझे तो कुछ नहीं कहेंगे मगर तुम पर और अधिक सितम न गुजारने लगें।

मेरे प्यार ! जिंदगी संघर्ष का नाम है। इससे तुम घबराना मत। समाज भले ही बाहरी दीवारें बना दे मगर आत्मा का नैसर्गिक प्यार कभी इन पिंजरों में बंधने वाला नहीं है। प्रेम की पवित्रता इसी में है। जीवन के अंधेरों में जब सारे साधन प्रकाश करने में हार जाते हैं तो प्रेम ही उसमें ज्योति डालता है। तुम्हारा और हमारा प्रेम कोई सांसारिक और वासनात्मक प्रेम तो है ही नहीं जो किसी से डर जाये या मर जाये। जरा और मरण के बंधनों से दूर अमर, अजर प्रेम हमारे बीच पनपा है, यह ऐसा ही रहेगा जन्म जन्मातर तक, युग युगों तक।

मेरे साथी ! इन्हीं संघर्षों को पार कर हमें एक होना है। समाज से, संसार से जूझकर इस कश्ती को इस पार से उस पार ले जाना है। तुम अगर हिम्मत न हारो तो इन सबसे टक्कर ले लूंगा मैं। बस तुम्हारी मुस्कान मुझे साहस दिलाती रहे, तुम्हारा आंचल मेरे हाथों में रहे, तुम्हारे दु:ख-दर्द में उत्साह भर देने वाले मादक शब्द मेरे कानों में गूंजते रहें।

यहां आने के पल से आज तक मन की आंखें तुम्हें ढूंढ़ती रही हैं, तुम्हारी बाट जोहती रही हैं। थोड़ी-सी आहट से भी लगता है तुम आ गयीं…और निगाहें, दूर तक झांककर देखने लगती हैं जहां बस के मधुर

देखकर मुझसे जल उठा है।

आप मुझे बंबई, यहां एरोड्रम पर, यूनिवर्सिटी में न पाकर उदास हो गये होंगे, मगर मेरे देव ! मैं कैसे बताऊं कि मेरे पैरों में मजबूरियों की कैसी बेड़ियां पड़ी हैं। कैसी घड़ी आ गयी है कि आज एकदम परवश हो गयी हूं और चारों ओर समाज के झूठे रिश्ते-रस्मो-रिवाजों के कैक्टस की बाड़ उग आयी है।

समझ में नहीं आता डैडी का मानस एकदम कैसे बदल गया। जिन्होंने हमेशा मेरी इच्छा पूरी की आज वो अचानक मेरे विरोधी हो गये। मेरी एक भी सुनने को तैयार नहीं। मुझे कितना विश्वास था अपने डैडी पर। मुझे आशा थी कि वे कभी मेरी इच्छा को नहीं ठुकरायेंगे और अपने जीवनसाथी को चुनने के बारे में भी अड़चन नहीं डालेंगे, तभी तो निःसंकोच बढ़ी थी, इस मारग पर'''तभी तो प्रेम का जो अंकुर आपको देखकर प्रस्फुटित हुआ था उसे पल्लवित करती रही थी और आपके प्रेम से सिंचित करती रही थी। क्या पता था कि भाग्य ऐसी करवट बदलेगा और स्वच्छंद उड़ने वाली निशा पिंजरे में बंद परिंदे की तरह मन मसोसकर चारदीवारी में अपने आराध्य से मिल भी नहीं सकेगी। उसके चारों ओर ऐसे अदृश्य राक्षस आकर खड़े हो जायेंगे यह सोचा भी नहीं था।

मन में दुख तो बार-बार इस बात का होता है कि डैडी आपको अच्छी तरह जानते हैं फिर भी गुमनाम चिट्ठी पर इतना विश्वास कर बैठे। और मम्मी जरा-सी बात भी छेड़ती है तो क्रोध के अंगारे बरसाने लगते हैं। कहते हैं तुम नहीं समझती हो। जान-पहचान और चीज है रिश्तेदारी और। न जाने क्या हो गया है डैडी को'''न जाने कैसे एकदम भावनाहीन हो गये हैं।

किंतु मेरे अनु ! आप उदास मत होना। और न ही कोई गलत कदम उठा लेना। यह क्या कम है कि उपमा के द्वारा आपकी सारी बातें सुनती रहती हू और मन को दिलासा देती रहती हूं कि जब यह पल आया है तो सुहाना समय फिर आयेगा और तब एक पल भी ओझल नहीं होने दूंगी अपने जीवन के प्यार को। कुछ समय में जब यह ज्वार मिट जायेगा डैडी को मैं ही समझाऊंगी। आपके मिलने पर कभी कुछ कह बैठेंगे तो मुझसे सहन

उपमा निशा के प्रति वफादार थी या मेरे प्रति परंतु दो छोरों को अदृश्य तारों से मिलाने में एक यही चरित्र था जो प्रेम की पीर को समझ कर असंगतताओं के बीच भी प्रकाश स्तंभ बनकर खड़ी थी। अगर उपमा न होती तो सब कुछ अनदेखा अस्पष्ट रहता। उसने तीसरे दिन पत्र का उत्तर लाकर दिया। एक क्षण तो मन स्तंभित रह गया···देखता रहा··· और उपमा मेरे भावों के ज्वार जो चेहरे पर उमड़ रहे थे उन्हें देखती रही फिर बोल उठी, 'सर ! आपकी चिट्ठी पढ़कर घंटों रोयी···कहने लगी क्या लिखूं, उत्तर नहीं दूंगी तो क्या समझेंगे···फिर किसी तरह रात को उसने यह ख़त लिखा। मुझे समझ में नहीं आता कि क्या करूं। उसकी ऐसी हालत मुझसे तो नहीं देखी जाती···।'

'तुम्हीं बताओ उपमा कौन-सा रास्ता निकालूं ! जाकर कासम भाई से पूछूं कि आखिर यह सब क्या है ? अगर मेरे यहां रहने से निशा पर प्रतिबंध है तो मैं यहां से चला जाऊं। नौकरी तो मुझे वहां भी मिल रही थी···और अभी भी रास्ते खुले हैं···मगर मधुर कहानी का ऐसा करुण अंत···।'

मेरी आत्मा मेरे अनु,

सुमधुर प्रेम। कितने दिनों से अरमान सजाये बैठी थी कि मेरे प्रणय-देव का स्वागत करने बंबई जाना है···दो वर्षों के बाद देखूंगी तो देखती रहूंगी। सामने बिठाकर···और अपलक आंखों में बिठा लूंगी···दो वर्ष की जुदाई की कहानी कहूंगी···सुनूंगी। बताऊंगी किस तरह बीते हैं ये वर्ष। जैसे दो जिंदगियां गुजर गयी हैं। अब ऐसी जुदाई न आये कभी भी। खुदा से यही मिन्नत करती रही हूं और मांगती रही हूं तुम्हें हर कीमत पर। बातें करती थी रात-रात भर तुम्हारी तस्वीर से···नींद आ जाती थी और सीने पर पड़ी रह जाती थी तस्वीर और स्वप्न में पहुंच जाती थी ऐसे लोक में जहां आपके साथ सितारों से पार किसी अदृश्य लोक में चली गयी हूं··· एक ऐसा जहां जहां प्रेम ही प्रेम है···मिलन ही मिलन है। शायद खुदा को भी मेरे इस भाग्य पर रश्क आ गया है। वो भी इतना प्रेम मेरे आंचल में

का प्रोग्राम है ? घर कब जायेंगे ? मीना की चिट्ठी आयी क्या ?

नये गीत लिखें तो जरूर किसी भी हालत में भिजवा दिया करें। डायरी के पृष्ठों में उनकी और उनकी अनुभूति की मुझे बड़ी जरूरत है। मेरी तस्वीर जो आपने डायरी में लगा रखी है उसमें से निकाल लीजियेगा। कहीं कोई देख न ले।

अपना पूरा ध्यान रखना।

आपकी निशा इस वक्त आपको और क्या दे···मधुर यादों, मधुर सपनों, मधुर जीवन की शुभकामनाओं के अतिरिक्त···

प्यार और शुभाशीष,

आपकी स्मृति में
निशा

निशा के खत ने मुझे कुछ भी करने को मना कर दिया और प्रतीक्षा करता रहा आने वाले सुखद पलों की। यद्यपि मिलने की इच्छा प्रतिक्षण बढ़ती रही मगर काल के क्षण कहीं अधिक बलवती थे। वे एक-एक कर द्वीप बनते रहे। पत्रों का क्रम भी हालांकि समाप्त नहीं हुआ किंतु कभी कभार में बदलता रहा।

× × ×

समय की रफ्तार कितनी तेज होती है, इसका अहसास होने लगा—वेकेशन—वर्ष, वेकेशन किस गति से आते-जाते रहे। बिंदु का विवाह हो गया, उपमा पिताजी के स्थानांतर के कारण चली गयी। एक माध्यम था वह भी टूट गया। प्रेम की परीक्षा में एक और ऐसी दशा आ गयी जिसमें बरबसता ही बरबसता थी। परेवे के जैसे पंख कट गये हों और सामने आकाश उसे निमंत्रण देता हो—आओ, देखो मैं कितना असीम हूं। अपनी ताकत से मापो मुझे। पंछी उसका निमंत्रण सुनता हो और मन मसोसकर रह जाता हो। सोचता हो यह कैसा निमंत्रण है। एक क्षण मेरी ओर नजर तो डालो···तुम निस्सीम हो तो क्या ? मेरे तो पंख ही कट गये···।

किंतु फिर से पंख लगेंगे, फिर से उड़ूंगा इसी कल्पना में मैं काटता

नही होगा वह अपमान। मैं नही चाहती कोई आपको एक शब्द भी कहे।

मैं जानती हूं आप मेरे लिए सब कुछ कर गुजरेंगे मगर मैं खुदा से यही मांगती हूं कि वो मुझे इतनी शक्ति दे कि इन झूठी बातों को समझा सकूं, समय आने पर विरोध कर सकूं और अपने स्वप्न को साकार कर सकूं। उपमा ही आपको सब सूचना देती रहेगी।

मन तो इतना करता है कि सब कुछ छोड़कर डैडी को कह दूं कि जा रही हूं—संभालो अपनी ममता, मगर फिर सोचती हूं कि कुछ दिन बाद जब शांत हो जायेंगे तो सब कहूंगी। कहूंगी पता लगाने को कि ऐसा झूठा असत्य पत्र किसने लिखा है। पता लगाकर पूछूं कि आखिर क्यों लिखा ऐसा पत्र'''ईश्वर करे वह जल्दी ही आ जाये कि उनका मन स्वस्थ हो जाये।

आप अपने मन मे दुःख मत लगाना। प्रतिकूल परिस्थितियां हमेशा तो रहने वाली नही हैं। आपके कविता-गीत की सरिता हमेशा प्रवाहित होती रहे। इन गीतों से तो प्रेरणा मिलती है मुझे जीवन की। अभी भी आपके रेकार्ड किये गीत ही हैं जो मेरे साथी हैं। जब भी जी घबराता है, हताशा के बादल मंडराते हैं, सुन लेती हूं इन गीतों को। आप साहित्य के मंच पर जगमगाते रत्नदीप के समान आसीन हों'''ये तमन्ना हमेशा दिल मे रहती है। आप साहित्य की सेवा के लिए अवतरित हुए हैं'''साहित्य के महान तपस्वी।

मेरे दिव्य प्रेम ! आपका प्रेम मुझे मिला यह मेरा कितना सौभाग्य है। इस प्रेम की ज्योति मेरे मन मंदिर मे सदा जगमगायेगी। आपकी अर्चना मे यह सदा ज्योतित रहेगी। मन की एक ही साध है अब, आपको पाने की।

कभी आपको डैडी मिलें भी तो मेरी चर्चा मत छेड़ियेगा। ऐसे जैसे कि मैं बिलकुल अजनबी हूं। अरविंद को भी कुछ मत लिखना।

परीक्षा न देने का इरादा हो गया था, किंतु फिर सोचा आपकी दी हुई प्रेरणा अधूरी रह जायेगी। परीक्षा दे ही दी। फर्स्ट क्लास आने की बात तो स्वप्न ही है। आ जायेगा तो वो आपका ही आशीर्वाद होगा''' आपकी ही प्रेरणा। आपने मुझे देखा'''मैं तो इतने समय बाद एक झलक भी नही देख सकी'''दीदार की तमन्ना किस तरह कसक पैदा करती है।

आपका वेकेशन का क्या कार्यक्रम है? यही रहेंगे या कही और जाने

जीवन में कुछ नहीं चाहिए। इसी प्रेम की अनमोल संपत्ति को अपने सीने में छिपाकर जी लूंगी और खो जाऊंगी मृत्यु की गोद में एक यही आरजू लेकर कि जन्म-जन्म तक आपका यह प्रेम मुझे मिलता रहे। मेरा मन, मेरी आत्मा सदैव मेरी आखिरी सांस तक आपके प्रेम के रंग में डूबी रहेगी। वियोग ने इसे और भी अधिक तीव्र बना दिया है। आपकी मूरत इस मन-मंदिर में सदा वैसी ही प्रतिष्ठापित रहेगी और यह नयनांजलि सदा अश्रु के अर्घ चढ़ाती रहेगी।

आप जीवन में कभी दुःखी मत होना। मेरी याद में कभी आंसू मत बहाना। मैं अपना सौभाग्य समझूंगी यदि आप मुझे अपने मन के किसी कोने में बिठाये रखेंगे। मेरी बात मानो तो आप अपना जीवनसाथी चुन लेना। आपको पाकर तो कोई भी अपने आपको धन्य मानेगी।

आप लेखनी के धनी हैं। आपके पास प्रतिभा की अनमोल संपत्ति है। आप तो युग-युग तक जीवित रहेंगे इस धन के कारण और ये लोग जो धन से इंसान को तोलते हैं, क्षणजीवी हैं। दुनिया ऐसे लोगों को कभी स्मृत भी नहीं रखेगी। आपकी लेखनी में अमाप शक्ति है। आप ऐसे ही अनुपम साहित्य की रचना करते रहना जिससे मेरे जैसे असंख्य हताशों को जीने की प्रेरणा मिलती रहे। मैं चाहे दुनिया के किसी भी कोने में रहूं आपकी रचनाएं मुझे आपसे मिलाती रहेंगी। उस दिव्य आनंद को मैं छिपा लूंगी अपने आंचल में।

मैं तो हार चुकी हूं, टूट चुकी हूं। अब प्रतिकार करने की शक्ति नहीं रही। और अब समय भी नहीं रहा···आपकी भौतिक दुनिया से जा रही हूं···दूर···दूर अपनी आत्मा का अर्पण आपको करके। मुझे प्रेरणा देने वाले मेरे मीत मुझे विदा दो।

आप जहां भी रहें सदा सुखी रहें। यश आपका दास बनकर रहे। आप प्रेम की पावन मूर्ति हैं—इससे समाज जगमगा जाये। आप निरंतर सफलता के सोपान पर चढ़ते रहें और उस कीर्ति की सुगंध मेरे कानों को मेरी देह को स्पर्श करती रहे···।

मेरे प्यार, मेरे मीत, मेरे जीवन! आपके चरणों में आपकी प्रीति का प्रणाम। मुझे अपने आप में इस तरह छिपा लेना कि कभी कोई देख न

रहा जीवन के क्षण। मैं प्रतीक्षा में रहता शायद कोई संदेशा आयेगा निशा का।

और एक दिन एक अजनबी ढूंढता हुआ आया।

'प्रोफेसर अनुराग आप ही हैं…'

'हां…मैं ही…'

उसने एक लिफाफा मेरी ओर बढ़ा दिया। मेरे हाथ उस लिफाफे को खोलने में कांपने लगे। वह व्यक्ति मौन खड़ा रहा…बूढ़ा, लंबी दाढ़ी और चेहरे पर वफादारी की रेखाएं…माथे पर साफा…

मैंने पूछा भी नहीं तुम कौन हो? किसने भेजा है? और प्रकंपित मन से लिफाफा खोला…

'तुम बैठो।' और उसे बिठाकर अंदर कमरे में चला गया…चलते-चलते तह खोल चुका था…आंखें पढ़ने में लीन हो गयीं…

मेरे आराध्य,

आपके चरणों में मेरे प्रेमपुष्पों का अर्पण। एक अरसा गुजर गया और इस अरसे में मिलने की तमन्नाएं तिल-तिल कर घुटती रहीं। आशाओं के सुमन मुर्झा गये। सारे प्रयास थक गये। भाग्य जैसे करवट बदलना ही नहीं चाहता।

इस बीच मन में कितने तूफान उठे। कई बार बिना बताये बिना कहे यहां से भाग जाने को जी में आया, कई बार आत्महत्या कर लेने के विचार हुए किंतु बदनामी के भय से और इससे भी अधिक आपके खयालों ने ऐसा करने से रोका। अगर ऐसा कर लेती तो प्रेम की पावनता में कैसा दाग लग जाता।

प्रिय क्या आपका और मेरा इतना ही साथ था? कुदरत ने यह कैसा मिलन रचाया था! कौन से पुण्य का फल था कि आप मिले थे, कौन से पाप थे कि इतनी दूरियां—अनंत की दूरियां जीवन में व्याप गयीं। और आप मेरे होकर भी मेरे नहीं रह पाये।

आपने जो प्रीति मुझे दी है उससे मेरा जीवन कंचन बन गया है। अब

अनु ! मेरे अनु !

मैं देखता हूं चारों ओर—कोई नहीं। कोई नहीं।

और मेरी आंख से एक आंसू पैर में पड़ी सीप में जा टपकता है…और सागर की लहर आकर उस सीप को बहा ले जाती है…।

●●●

सके···इसी तरह प्यार करते रहना जिस तरह आज तक किया है···
अलविदा मेरे अनु !

आपकी—
जो आपकी होकर भी परायी हो गयी
निशा

कब पत्र समाप्त हुआ, कब अश्रु बहे, कब उस बूढ़े को विदा किया··· सब कुछ घट गया। जो घटना था वह रह गया जो नहीं घटना था वह घट गया।

× × ×

निशा प्रथम आयी···बधाई का तार लिखा मगर पता···

निशा जीवन में आयी, चली गयी···और छोड़ गयी यादों के उजाले··· बिछुड़े हुए आज वर्षों बीत गये···आज भी उसे ढूंढ़ता हूं···आज भी यही सोचता हूं वह अभी आयेगी···अभी उसे अपने प्यार के सागर में डुबो लूंगा···मैं अभी भी वैसा ही हूं···प्रेम में अभी भी वही प्रतीक्षा है···मन उसी आतुरता में डूबा हुआ है···।

समाज बदला मगर कितना। वही मठघरे, वही चौखाने, वही दायरे। इंसान कल भी बिकता था, आज भी बिकता है। प्रेम कल भी बदनाम था, आज भी। धन-दौलत की चमक कल भी वही थी और आज भी वही। बदले भी कैसे—

सागर वह भी ऐसा ही है—खारा।
सीपी वह भी ऐसी ही है—खाली···

मैं इसी तरह आता रहा हूं—जाता रहा हूं। हर बार इन सागर के किनारे आकर खड़ा देखता हूं तो असख्य सीपियां पैरों में पड़ी हैं···सागर की लहरें इन सीपियों को लाकर किनारे डाल जाती हैं।

वर्षों के बाद इसी किनारे मेरे मन में बरसों पहले की स्मृति आ जाती हैं···अपने दाहिने हाथ की रेखाएं देखने लगता हूं···अनबूझा प्रश्न—बूझा या अनबूझा !

अचानक मेरे कानों में कोई स्वर आता है—जैसे निशा ने पुकारा—



नाम : घनश्याम अग्रवाल

शिक्षा : एम. ए. पी-एच. डी. साहित्यरत्न
पी. जी. डी. (जर्नलिज्म)

प्रकाशन—

मौलिक—धरती गाए रे (काव्य), विष्णुप्रिया और उसका कवि, महाकवि कालिदास और अभिज्ञान शाकुन्तलम, पचवटी एक अध्ययन, तलसीदास और कवितावली (समीक्षा) अभ्युत्थान (नाटक)

सम्पादन—युगाकन (काव्य) नूतन कहानी संग्रह, गुरुनानक व्यक्तित्व अनेप्रदान (गुजराती में) आधुनिक श्रेष्ठ व्यग्य

पुरस्कार—'अभ्युत्थान' (नाटक) पुरस्कृत

सम्प्रति—अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
बहाउद्दीन आर्ट्स कॉलेज, जूनागढ़